अंबपाली

अंबपाली

कक्षा 11 की ऐच्छिक हिंदी की पूरक पाठ्यपुस्तक

लेखक

रामवृक्ष बेनीपुरी

संयोजक

चन्द्रा सदायत

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण

सितंबर 2002

भाद्रपद 1924

ISBN 81-7450-077-4

PD 150T MK

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन विभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस	108, 100 फीट रोड, होस्डाकेरे	नवजीवन ट्रस्ट भवन	सी.डब्लू.सी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग	हेली एक्सटेंशन बनाशंकरी III स्टेज	डाकघर नवजीवन	32, बी.टी. रोड, सुखचर
नई दिल्ली 110016	बैंगलूर 560085	अहमदाबाद 380014	24 परगना 743179

प्रकाशन सहयोग

संपादन : मीरा कांत

उत्पादन : प्रमोद रावत

राजेंद्र चौहान

सज्जा एवं आवरण

कल्याण बैनर्जी

रु. 21.00

एन.सी.ई.आर.टी. [illegible] 70 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

[illegible] विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली 110[illegible]
[illegible] प्रिंटिंग प्रेस, [illegible] नगर 7, विहारी कालोनी शाहदरा, दिल्ली 110032 द्वारा मुद्रि[illegible]

आमुख

शिक्षा एक निरंतर विकासशील प्रक्रिया है इसलिए नवीन सामाजिक, सांस्कृतिक और शैक्षिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर नए पाठ्यक्रम के विकास और नई पाठ्यपुस्तकों के निर्माण का कार्य सतत् चलता रहता है। सन 2000 में परिषद् ने **विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा** तैयार की और उसके आधार पर विभिन्न पाठ्यक्रमों में संशोधन एवं परिवर्तन किए गए। नवनिर्मित पाठ्यक्रमों के अनुरूप ही परिषद् ने नवीन पाठ्यपुस्तकें तैयार करने का निश्चय किया।

उच्चतर माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थी विषय का व्यवस्थित अध्ययन प्रारंभ करते हैं और विषय की गहराई से भी परिचित होते हैं। विषय के गहन एवं विशद अध्ययन के साथ विद्यार्थियों में पठन रुचि के विकास के लिए पूरक पाठ्यपुस्तकों का निर्माण भी परिषद् द्वारा किया जाता रहा है। ऐच्छिक हिंदी पढ़ने वाले विद्यार्थियों में विकसित होती हुई साहित्यिक अभिरुचि को सजग बनाने और उनकी पढ़ने की गति को तेज़ करने में पूरक पाठ्यपुस्तकों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। विद्यार्थियों की स्वतंत्र पठन की प्रवृत्ति को जाग्रत करने और उनकी भाषिक तथा साहित्यिक योग्यताओं के विकास के उद्देश्य से कक्षा ग्यारह में पूरक पाठ्यपुस्तक के रूप में रामवृक्ष बेनीपुरी का नाटक **अंबपाली** प्रस्तावित किया जा रहा है।

ऐच्छिक हिंदी का पाठ्यक्रम बनाते समय यह सोचा गया था कि हिंदी साहित्य की किसी एक महत्त्वपूर्ण और लोकप्रिय विधा का परिचय पूरक पाठ्यपुस्तक के माध्यम से विद्यार्थियों को कराया जाए। नाटक अत्यंत लोकप्रिय साहित्यिक विधा है जिससे पाठक सीधे जुड़ता है और उसमें सहभागी बनता है। **अंबपाली** के अध्ययन द्वारा विद्यार्थी नाटक की कथावस्तु,

संवाद योजना और अभिनय के तत्त्वों को समझेंगे, उनमें सृजनात्मक प्रतिभा का विकास होगा और वे अन्य लेखकों की महत्त्वपूर्ण कृतियों को पढ़ने की ओर भी प्रेरित होंगे।

बौद्धकालीन ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित यह नाटक आज भी बहुत प्रासंगिक है। यह नाटक देशप्रेम, राष्ट्रीय एकता और जनतांत्रिक मूल्यों के प्रति पाठकों को निष्ठावान बनाता है और उन्हें भारत की मूल्यवान सांस्कृतिक विरासत से भी परिचित कराता है। विद्यार्थियों की वय, रुचि और योग्यता को ध्यान में रखकर इस पुस्तक का चयन किया गया है। रोचकता और साहित्यिकता की दृष्टि से भी यह एक महत्त्वपूर्ण नाटक है।

हम स्वर्गीय रामवृक्ष बेनीपुरी के परिवारजनों के प्रति आभारी हैं जिन्होंने इस नाटक को पाठ्यक्रम में सम्मिलित करने तथा उसे संक्षिप्त और संपादित करने की अनुमति प्रदान की है।

अंबपाली की संस्तुति और संपादन में हमें राष्ट्रीय स्तर के विषय-विशेषज्ञों, अधिकारी विद्वानों और शिक्षकों का सहयोग प्राप्त हुआ है। परिषद् उनके प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करती है।

आशा है हिंदी साहित्य तथा भाषा का स्तर ऊँचा उठाने में तथा विद्यार्थियों की साहित्यिक चेतना को विकसित करने में यह पुस्तक उपादेय सिद्ध होगी।

इस पुस्तक के विषय में अध्यापकों और विद्यार्थियों के सुझावों का परिषद् सदैव स्वागत करेगी।

जगमोहन सिंह राजपूत

निदेशक

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

मई *2002*

नई दिल्ली

भूमिका

रामवृक्ष बेनीपुरी का जन्म सन 1899 में गाँव बेनीपुर, ज़िला-मुज़फ़्फ़रपुर (बिहार) में हुआ था। बचपन में ही उनके माता-पिता का निधन हो गया था, इसलिए उनका बचपन बड़ी कठिनाइयों में बीता। अनेक कष्ट सहकर उन्होंने किसी तरह से मैट्रिक तक शिक्षा प्राप्त की। सन 1920 में असहयोग आंदोलन के प्रारंभ होते ही वे अध्ययन छोड़कर राष्ट्रसेवा में जुट गए। उन्होंने राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भागीदारी निभाई तथा वे कई बार जेल भी गए। उनका निधन सन 1968 में हुआ।

रामवृक्ष बेनीपुरी एक प्रतिभाशाली पत्रकार थे। उन्होंने **तरुण भारत, किसान मित्र, बालक, युवक, योगी, जनता, जनवाणी, नई धारा** आदि दैनिक, साप्ताहिक एवं मासिक पत्र-पत्रिकाओं का संपादन किया। बिहार हिंदी साहित्य सम्मेलन की स्थापना में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। अपने लेखन और संगठनात्मक कार्यों द्वारा वे निरंतर हिंदी की सेवा करते रहे।

बेनीपुरी बहुमुखी प्रतिभा के लेखक थे। उन्होंने उपन्यास, नाटक, कहानी, यात्रा-वृत्तांत, संस्मरण, रेखाचित्र, शब्दचित्र, निबंध आदि सभी गद्य विधाओं में महत्त्वपूर्ण लेखन किया है। उनका रचनाकर्म इतना व्यापक और वैविध्यपूर्ण है कि उन्हें किसी एक विधा के रचनाकार के रूप में सीमित नहीं किया जा सकता। वे अपने रेखाचित्रों, निबंधों और नाटकों के लिए विशेष प्रसिद्ध हैं। उनका साहित्य पाठकों का ज्ञानवर्धन करता है और उन्हें आनंद भी देता है। बेनीपुरी ने भारत के इतिहास, वर्तमान और भविष्य को अपने नाटकों का विषय बनाया

है और उनकी नई व्याख्याएं प्रस्तुत की हैं। उनकी रचनाओं में राष्ट्रीय-चेतना, मानव-प्रेम और जनजीवन के उत्थान की कामना है। उनकी भाषा शैली में चित्रात्मकता, सहजता और प्रवाहमयता मिलती है। वे हिंदी गद्य के विशिष्ट शैलीकार हैं, इसलिए उन्हें कलम का जादूगर भी कहा जाता है।

उनकी महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं – **माटी की मूरतें, गेहूँ और गुलाब** (शब्दचित्र), **चिता के फूल** (कहानी संग्रह), **पतितों के देश में** (उपन्यास); **हवा पर, नई नारी, सतरंगा इंद्रधनुष** (निबंध), **अंबपाली, विजेता, तथागत, नेत्रदान, संघमित्रा** (नाटक) आदि। बेनीपुरी ने प्रचुर मात्रा में बाल साहित्य की रचना भी की है। उनकी सभी रचनाएँ **बेनीपुरी रचनावली** के नाम से आठ खंडों में प्रकाशित हैं।

अंबपाली नाटक, नाटककार बेनीपुरी का सर्वश्रेष्ठ नाटक माना जाता है। हिंदी नाटक साहित्य में जयशंकर प्रसाद के बाद बेनीपुरी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आधुनिक हिंदी नाटक की जो यथार्थवादी परंपरा भारतेंदु से प्रारंभ हुई, रामवृक्ष बेनीपुरी ने उसे आगे बढ़ाया। **अंबपाली** उनका पहला नाटक है, जिसकी रचना उन्होंने हज़ारीबाग सेंट्रल जेल में सन 1940-45 के बीच की। वैशाली गणतंत्र की स्मृति और इस गणतंत्र की राजनर्तकी आम्रपाली जिसे लेखक ने अंबपाली कहा है, के व्यक्तित्व के आकर्षण ने लेखक को **अंबपाली** की रचना के लिए प्रेरित किया। बेनीपुरी ने जितने ऐतिहासिक नाटक लिखे हैं उनमें से अधिकांश नाटकों का संबंध बौद्ध काल से है। विश्व इतिहास के प्राचीनतम गणराज्य वैशाली के आधार पर इस नाटक की कथावस्तु तैयार की गई है। आम्रपाली वैशाली गणराज्य की एक अतिप्रसिद्ध नारी रही है। उसके चरित्र को आधार बनाकर हिंदी में अनेक कृतियों की रचना हुई है। जयशंकर प्रसाद का **अजातशत्रु** नाटक और आचार्य चतुरसेन शास्त्री का **वैशाली की नगरवधू** उपन्यास आम्रपाली के चरित्र पर आधारित महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं।

प्रस्तुत नाटक **अंबपाली** की रचना स्वतंत्रता से पूर्व ही स्वतंत्र देश के ज़िम्मेदार नागरिक तैयार करने की कोशिश के रूप में हुई है। ऐतिहासिक चरित्रों को अपने अनुकूल बनाकर नाटककार बेनीपुरी अपने समय की विसंगतियों से मुठभेड़ करते हैं। **अंबपाली** उसका एक

प्रत्यक्ष उदाहरण है। उनकी **अंबपाली** बौद्ध युग की आम्रपाली के आधार पर खड़ी एक कलाकार की स्वतंत्र अंबपाली है।

स्वाधीनता आंदोलन के काल में ऐतिहासिक नाटकों के लेखन का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य भारतीय इतिहास के प्रेरक चरित्रों और प्रसंगों द्वारा भारतीयों के विस्मृत आत्मगौरव से उनका परिचय कराना और आत्महीनता से मुक्त करना था। रामवृक्ष बेनीपुरी ने अपने ऐतिहासिक नाटकों में यह ध्यान रखा है कि इतिहास के ऐसे ही प्रसंगों और चरित्रों पर नाटक लिखे जाएँ जो वर्तमान काल की स्थितियों और समस्याओं से जुड़ते हों तथा शिक्षाप्रद हों। बौद्धकालीन आम्रपाली को नाटककार बेनीपुरी ने आधुनिक भारत की स्वाधीनता की चेतना के मूर्त रूप में प्रतिष्ठित किया है, जिसमें सौंदर्य और शौर्य का, प्रवृत्ति और निवृत्ति का, संघर्ष और समर्पण का, राष्ट्रनिष्ठा और आत्मदान का अद्भुत संयोग है। यह चरित्र आज भी अत्यंत प्रासंगिक है। इस नाटक में ऐतिहासिक तथ्यों से अधिक महत्त्वपूर्ण है ऐतिहासिक कल्पना की सृजनशीलता जो अतीत को वर्तमान से जोड़ती है और भविष्य की ओर सार्थक संकेत करती है। नाटककार ने इस नाटक की कथावस्तु में स्वतंत्रता को स्थायित्व प्रदान करनेवाले तत्त्वों के साथ-साथ पराधीनता की परिस्थितियों को पैदा करनेवाले तत्त्वों की भी प्रसंगानुसार चर्चा की है। संगठन, एकता, अनुशासन, सुव्यवस्था, सत्यनिष्ठ श्रेष्ठजनों और स्त्रियों का सम्मान आदि तत्त्व जहाँ राष्ट्र को सबल बनाते हैं वहीं विद्वेष, संशय, विभेद, कर्त्तव्यहीनता, भ्रष्टआचरण आदि तत्त्व राष्ट्र को विघटित और पराधीन बनाते हैं। इतना ही नहीं बेनीपुरी ने इस नाटक में लोकतांत्रिक चेतना के विकास और लोकतंत्र के सामने आने वाले खतरों की ओर सार्थक संकेत भी किया है। वैशाली गणतंत्र के विघटन और उसके नष्ट होने के कारणों द्वारा उन्होंने भारत को मिलने वाली स्वतंत्रता और भविष्य में उस स्वतंत्रता की रक्षा के दायित्व के लिए भी भारतवासियों को सावधान किया है। नाटककार का मानना है कि लोकतंत्र की रक्षा के लिए साधारण नागरिकों में व्यापक सामाजिक सजगता और राजनीतिक जागृति ज़रूरी है। साथ ही इसके लिए स्त्री-शक्ति की विशेषताओं की पहचान और उसका विकास भी आवश्यक है।

भारतीय स्त्री की स्थिति और उसकी स्वाधीनता की चिंता बेनीपुरी के विचार और लेखन की महत्त्वपूर्ण विशेषता रही है। **नई नारी** नामक पुस्तक और उनके अन्य निबंधों में भी यह चिंता व्यक्त हुई है। **अंबपाली** की रचना के पीछे यह भी एक प्रमुख उद्देश्य रहा है। **अंबपाली** एक नायिका प्रधान नाटक है, जिसमें दबी-कुचली भारतीय नारी को भव्य और विराट व्यक्तित्व प्रदान किया गया है। नाटककार बेनीपुरी ने **अंबपाली** के व्यक्तित्व के द्वारा स्त्री-शक्ति का एक ऐसा रूप सामने रखा है जो समाज, संस्कृति और धर्म की संकीर्णताओं और रूढ़ियों को तोड़ने में सक्षम है। अंबपाली किसी से भी अभिभूत नहीं होती। वह कर्त्तव्य पूरा करने के लिए निजी इच्छाओं का परित्याग करती है। इतना ही नही, वह राष्ट्रीय संकट के समय योद्धा-वेश भी धारण करती है। वास्तव में **अंबपाली** पूर्ण स्वतंत्रता का प्रतिनिधि चरित्र है। उसके व्यक्तित्व का ही प्रभाव था कि विजयी अजातशत्रु को भी उसके सामने पराजित होना पड़ा और भगवान बुद्ध को भी बौद्ध संघ की चली आ रही व्यवस्था में स्त्रियों को स्थान देने के लिए परिवर्तन करना पड़ा। आज नारी सशक्तीकरण, नारी जागरण, नारी स्वतंत्रता आदि की बातें हो रही हैं। इस दृष्टि से बेनीपुरी की **अंबपाली** के चरित्र को देखें तो केवल इस नाट्यकृति की प्रासंगिता ही सिद्ध नहीं होती है अपितु इससे आज विकृत उपभोक्तावाद को बढ़ावा देने के लिए विज्ञापनों और सौंदर्य प्रतियोगिताओं के द्वारा नारी शरीर के उपयोग के प्रयासों के प्रति भी सावधान रहने के संकेत मिलते हैं।

नाट्य शिल्प की दृष्टि से विचार करने पर यह स्पष्ट होता है कि लगभग 55 वर्ष पूर्व जब **अंबपाली** नाटक की रचना पूरी हुई थी तब नाटक की तकनीक का पर्याप्त विकास नहीं हुआ था। इस बात को स्वयं लेखक ने भी स्वीकार किया है। शिल्प और भाषा के स्तर पर इस नाटक में कोई जटिलता नहीं है। लेखक ने नाटक और दर्शकों/पाठकों के बीच सहज संबंध स्थापित करने के लिए अपने समय की बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है। नाटक के संवादों में नाटककार की अद्भुत क्षमता प्रकट हुई है। एक-एक संवाद दर्शक और पाठक के मन को गहराई तक प्रभावित करता है। मंचन की दृष्टि से भी यह एक सफल नाटक सिद्ध हुआ है। रचना काल से लेकर अब तक इस नाटक के अनेक सफल मंचन हो चुके हैं।

रामवृक्ष बेनीपुरी का यह नाटक ग्यारहवीं कक्षा के ऐच्छिक हिंदी के पाठ्यक्रम में प्रस्तावित किया गया है, ताकि विद्यार्थी नाटक जैसी लोकप्रिय साहित्यिक विधा से भली-भाँति परिचित हो सकें। साथ ही इतिहास के प्रेरणादायी चरित्र अंबपाली को समझ सकें और उसकी विगत अर्थवत्ता और समकालीन प्रासंगिकता को जान सकें। विद्यार्थियों की वय, रुचि और योग्यता को ध्यान में रखकर इस नाटक को उपयोगी बनाने हेतु लेखक की मूल संवेदना की रक्षा करते हुए नाटक को आवश्यकतानुसार संक्षिप्त और संपादित किया गया है। इस नाटक की भाषा पर प्रादेशिकता का प्रभाव है और वाक्य-संरचना भी आज की वाक्य-संरचना से थोड़ी भिन्न है और कहीं-कहीं सहायक क्रिया का प्रयोग नहीं है। परंतु इसे संपादित करते हुए लेखक की मूलकृति की भाषा के साथ कोई छेड़छाड़ नहीं की गई है। कुल मिलाकर **अंबपाली** नाटक अपने उद्‌देश्य और साहित्यिक स्वरूप की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण और प्रेरणादायी कृति है।

पांडुलिपि समीक्षा-संशोधन कार्यगोष्ठी के सदस्य

1. श्री निरंजन कुमार सिंह
   अवकाश प्राप्त रीडर
   सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग
   एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली
2. डॉ. कृष्ण कुमार गोस्वामी
   प्रोफेसर, केंद्रीय हिंदी संस्थान
   नई दिल्ली
3. डॉ. विजयबहादुर सिंह
   अध्यक्ष, हिंदी विभाग
   उच्च शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान, भोपाल
4. डॉ. सुरेश शर्मा
   सहायक संपादक
   नवभारत टाइम्स, नई दिल्ली
5. डॉ. सत्यकाम
   रीडर, हिंदी विभाग
   इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
   नई दिल्ली
6. डॉ. दिनेश कुमार गुप्ता
   रीडर, हिंदी विभाग
   पत्राचार पाठ्यक्रम संस्थान
   दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
7. डॉ. रामकरण डबास
   वरिष्ठ हिंदी प्राध्यापक
   राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
   नई दिल्ली
8. डॉ. कमल सत्यार्थी
   अवकाश प्राप्त वरिष्ठ हिंदी अध्यापक
   सरदार पटेल विद्यालय, नई दिल्ली
9. श्रीमती मंजुरानी सिंह
   वरिष्ठ हिंदी अध्यापिका, केंद्रीय विद्यालय
   जे.एन.यू.,नई दिल्ली
10. डॉ.राधिका शर्मा
   वरिष्ठ हिंदी अध्यापिका
   केंद्रीय विद्यालय न. 1, दिल्ली कैंट
11. श्रीमती हरजीत कौर गिल
   वरिष्ठ हिंदी अध्यापिका, सर्वोदय कन्या विद्यालय
   मालवीय नगर, नई दिल्ली
12. डॉ. अनिरुद्ध राय
   प्रोफेसर, सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा
   विभाग,एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली
13. श्री लालचंद राम
   प्राध्यापक, सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा
   विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली
14. डॉ. प्रमोद दूबे
   प्राध्यापक, सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा
   विभाग, एन.सी.ई.आर.टी.
   नई दिल्ली
15. डॉ. चन्द्रा सदायत **(संयोजक)**
   रीडर, सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा
   विभाग,एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली

मेरी अंबपाली

अपनी यह पहली नाट्यकृति हिंदी-पाठकों के निकट रखते हुए मुझे संकोच नहीं हो रहा है क्योंकि पुस्तकाकार प्रकाशन के पूर्व ही इसे इतनी प्रशंसा और प्रसिद्धि प्राप्त हो चुकी है कि स्वयं आश्चर्यचकित हूँ।

अंबपाली बौद्धयुग की एक अतिप्रसिद्ध नारी है। उसको लेकर भारतीय भाषाओं में कितनी ही रचनाएँ हुई हैं – काव्य, कहानी, नाटक, उपन्यास के रूप में। किंतु मैंने इस रचना द्वारा अपना नाम सात सवारों में लिखाने की कोशिश नहीं की है। क्योंकि, यह मेरी आदत में शामिल नहीं है। अपने पैरों का वज़न और वक़्त मुझे मालूम है, लेकिन, किसी के पदचिह्न मात्र पर चलना मैं कलाकार की मौत मानता हूँ।

बचपन में ही मेरा झुकाव नाटक-रचना की ओर हुआ था। हाई स्कूल के चौथे या तीसरे वर्ग में ही मैंने एक नाटक लिखा था, लँगोटिया यारों को सुनाया था, उन्हें पसंद आया, उसके खेलने का आयोजन भी हुआ और एक मारवाड़ी दोस्त ने उसे छपवाने के लिए चार रुपये चंदा भी उगाहा था।

लेकिन, बाद में मैं कवि बन गया, तब लेखक हुआ, फिर पत्रकार बनकर रह गया। किंतु हज़ारीबाग सेंट्रल जेल के निश्चिंत एकांत में जब एक दिन बादल घिर आए कि अचानक मेरा नाटककार जग उठा!

और, अपने लिए पात्र के रूप में अंबपाली का चुनाव भी मेरे लिए स्वाभाविक ही था। जहाँ अंबपाली का जन्म हुआ था, उसी भूमि ने मुझे भी उत्पन्न किया है और एक पुरातत्वज्ञ ने तो यहाँ तक कह डाला है कि वृज्जियों के आठ कुलों में शायद मेरा वंश है, जिनकी संघशक्ति ने वैशाली को महानता और अमरता प्रदान की थी।

किंतु, क्या मेरी यह अंबपाली पच्चीस सौ साल पहले रची गई विधाता की अंबपाली का पूर्ण प्रतिनिधित्व करने का दावा कर सकती है?

विधाता की किसी कृति को जब कलाकार अपनी कलाकृति के लिए चुनता है, तब उसके कलात्मक रूप देने की प्रक्रिया में एक अजीब बात हो जाती है। विधाता की कृति धीरे-धीरे विलीन होने लगती है और समाप्त करते-न-करते कलाकार आश्चर्य से देखता है, एक दूसरी ही नवीन आकृति उसके सामने आ खड़ी है!

और, यह कौन कहे कि सुंदर कृति किसकी – विधाता की या कलाकार की? वह, जो पचास या सौ साल जीकर धूल में मिल गई, विधाता की वह शकुंतला अच्छी या दो हज़ार साल के बाद भी जो जीवित है, कालिदास की वह शकुंतला अच्छी!

पुरातत्वज्ञ मेरी इस अंबपाली को इतिहास के पन्नों में अंकित अंबपाली से मिलाएँ, घटनाओं के तारतम्य में कुछ त्रुटियाँ पाएँ और मुझे गालियाँ भी दे लें, किंतु मैं कहूँ, मुझे तो मेरी अंबपाली ही सच्ची अंबपाली प्रतीत हुई है। सच्ची और अच्छी भी – क्योंकि सत्य ही सुंदर और सुंदर ही सत्य है न!

अब भी वे दिन भूले नहीं हैं, जब हज़ारीबाग सेंट्रल जेल के वार्ड नं. 1 के सामने सघन पत्तियोंवाली एक आम्र-विटपी के तने से उठँगकर मैं अपनी अंबपाली की रचना किया करता था – सामने फूलों से लदे मोतिए और गुलाब के झाड़ थे, ऊपर आसमान पर बादलों की घुड़दौड़ होती थी और इधर मेरी लेखनी कागज़ पर घुड़दौड़ करती थी। दिन भर मैं जो कुछ रचता, शाम को मित्रों को सोल्लास सुनाता। उस पाषाणपुरी में मेरी इस कुसुम तनया की अलौकिक चरितावली उनके शुष्क हृदयों को हरा-भरा और रंगीन बना देती और वे मुझ पर और मेरी इस कृति पर प्रशंसा की पुष्प-वृष्टि करने लगते! बेचारे विधाता को ऐतिहासिक अंबपाली की सृष्टि करने में ऐसा सुंदर वातावरण और ऐसा निराला प्रोत्साहन कहाँ प्राप्त हुआ होगा!

अपनी अंबपाली की सुंदरता और पूर्णता पर मुझे पूर्णतः संतोष है, अंबपाली और वैशाली की आत्मा के चित्रण में – अपने जानते, मैंने कोई त्रुटि नहीं आने दी है। हाँ, प्रथम नाट्य-रचना होने के

कारण इसमें टेकनीक की त्रुटियाँ हो सकती हैं – जिनके लिए क्षमा माँगने की ज़रूरत भी मैं महसूस नहीं करता, क्योंकि मेरे सहकर्मियों ने क्षमाप्रार्थना को भी एक बाज़ारू माल बना रखा है।

आशीर्वाद दीजिए, कुछ ऐसी ही नाट्य-कृतियाँ मैं आपके सामने उपस्थित करने में समर्थ हो सकूँ।

रामवृक्ष बेनीपुरी

बेनीपुर
उमड़ते सावन की एक बरसती अधरतिया
सन 1947

पुनश्च – मेरी यह **अंबपाली** कितनी सौभाग्यशालिनी निकली! सात वर्षों में इसके कई संस्करण निकल चुके। इस नए संस्करण में एक छोटा-सा परिवर्धन – कुल पाँच पंक्तियों का – किया गया है। इसकी आवश्यकता थी। अजातशत्रु से मिलने पर, जब बात बहुत बढ़ रही थी, अंबपाली ने उसे एक छोटी-सी तसवीर दिखाई। वह तसवीर किसकी थी? उस समय का साहित्य कहता है, अंबपाली के रूप-सौंदर्य पर मुग्ध होकर अजातशत्रु का पिता बिंबसार भी उसकी रंगशाला में चुपचोरी प्रणय की भीख लेने गया था । पिता की इस तसवीर को देखकर भी क्या अजातशत्रु वहाँ टिक सकता था?

रामवृक्ष बेनीपुरी

सन 1954

भारत का संविधान

भाग 4अ

नागरिकों के मूल कर्त्तव्य

अनुच्छेद 51अ

मूल कर्त्तव्य – भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह –

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे,

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे,

(ग) भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण बनाए रखे,

(घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे,

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभावों से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो महिलाओं के सम्मान के विरुद्ध हों,

(च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करे,

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्रणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे,

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे,

(झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे, और

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत् प्रयास करे, जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊंचाइयों को छू सके।

अंबपाली



पात्र-परिचय

स्त्री पात्र

अंबपाली	वैशाली की राजनर्तकी
मधूलिका	अंबपाली की सहेली
सुमना	अंबपाली की मौसी
पुष्पगंधा	वैशाली की भूतपूर्व राजनर्तकी
चयनिका	अंबपाली की परिचारिका



पुरुष पात्र

अरुणध्वज	अंबपाली का ग्रामीण प्रेमी
भगवान बुद्ध	संसार के प्रसिद्ध धर्म प्रवर्तक
आनंद	बुद्ध के प्रधान शिष्य
चेतक	वैशाली के महामात्य
अजातशत्रु	मगध के सम्राट
सुनीध	मगध-सम्राट का सखा-मंत्री
वस्सकार	मगध का प्रधानमंत्री
अश्वसेन	वैशाली का नागरिक
वसुबंधु	वैशाली का नागरिक

पहला अंक

1

[एक विस्तृत सघन अमराई — आम की डाल-डाल मंजरियों से लदीं, झुकीं; भौंरे जिन पर गुंजार कर रहे, वसंती हवा जिनसे खेलवाड़ कर रही है।

अमराई का मध्य — एक फैला हुआ आम का वृक्ष — उसकी एक मोटी डाल से एक झूला लटक रहा —

एक किशोरी झूलेवाले वृक्ष की ओर आती दिखाई पड़ती है, झुकी डाली की मंजरियों को चूमती है — उसे देखते ही पिंजड़ों से पंछी चहचहा उठते हैं — उन पिंजरबद्ध पंछियों के निकट जाकर उन्हें दुलराती है — मुँह से सीटी देती हुई एक श्यामा के पिंजड़े को लेती झूले के नज़दीक आती है — धीरे-धीरे झूलती हुई, श्यामा की ओर देखती, वह गाती है—]

मेरी श्यामा ने वंशी फूँकी,
कोइलिया क्यों कूकी?
कोइलिया कूकी,
मेरी श्यामा ने वंशी फूँकी।

[जब किशोरी गा रही, उसी रंगरूप वेशभूषा की दूसरी किशोरी बगल से आती है — पहली किशोरी गाने की तन्मयता में उसे नहीं देखती — वह धीरे-धीरे, दबे पाँव आम के पेड़ के नज़दीक आती और उसकी डाल पर चढ़ जाती है — ज्योंही गाना खत्म होता है, वह कोयल की बोली का अनुकरण कर कुहू-कुहू बोल उठती है — संगीतमग्ना किशोरी

चकित होकर पेड़ की ओर देखती है — फिर झूले से उठकर आगे बढ़ती है — सहसा डाल की ओर देखकर हँस पड़ती है।]

पहली किशोरी : ओहो, मधु! उतर पगली! वही मैं कह रही थी, यह कोयल तो हो नही सकती। उतर, उतरती है या...

दूसरी किशोरी : या! क्या? गा, गा — 'मेरी श्यामा ने वंशी'...वाह री तेरी श्यामा!

पहली किशोरी : क्यों री, तू मुझे चिढ़ाती क्यों है?

दूसरी किशोरी : *(बिना जवाब दिए वह गाती जाती है)* 'कोइलिया क्यों कूकी, मेरी श्यामा ने वंशी फूँकी....'

पहली किशोरी : तू नहीं चुप होती!

दूसरी किशोरी : *(गाती जाती है)* 'क्यों कूकी, मेरी श्यामा ने...'

[दोनों, एक-दूसरी को, आँखें गड़ा-गड़ाकर देखती हैं — देखते-ही-देखते दोनों ठठाकर हँस पड़तीं और एक-दूसरी से लिपट जाती हैं। इनमें पहली किशारी है अंबपाली — दूसरी उसकी सखी मधूलिका और यह है आज से लगभग ढाई हज़ार वर्ष पहले की बात — आज जहाँ मुज़फ्फ़रपुर का ज़िला है, वहाँ, उत्तर-बिहार में तब वृज्जियों का प्रजातंत्र था, जो संघराज्य कहलाता था — ये दोनों वृज्जि-कुमारियाँ हैं —]

मधूलिका : अंबे, आज भोर-भोर तूने कुछ देखा है क्या या रात में कोई सपना देखा था?

अंबपाली : तेरा मतलब?

मधूलिका : मतलब है, तेरे इस गाने से।

अंबपाली : क्या बिना सपने देखे आदमी कुछ गा नहीं सकता? और, सच पूछ, तो ऐसी कोई भी रात होती है जिसमें आदमी सपने न देखे या ऐसी कोई भोर आती है जिसमें आदमी कोई रूप न देख पाए?

मधूलिका : लेकिन सपने-सपने में फ़र्क होता है और फ़र्क होता है रूप-रूप में, अंबे! एक सपना होता है जिसमें आदमी डरकर आँखें खोल देता है और एक सपना ऐसा होता है, जिसमें जग जाने के बाद भी आदमी आँखें मूँद लेता है कि एक बार फिर उसकी कड़ियाँ जोड़ सके! समझी?

अंबपाली : हूँ।

मधूलिका : यों ही एक रूप होता है जिसको देखकर आँखें मुड़ जातीं या मूँद जाती हैं और दूसरा रूप होता है, जिस पर नज़र पड़ते ही पलकें और बरौनियाँ काम करना छोड़ देती हैं, नज़रों में टकटकी बँध जाती है।

अंबपाली : हूँ।

मधूलिका : हूँ। हूँ क्या?

अंबपाली : यही कि रूप-रूप में फ़र्क होता है और फ़र्क होता है सपने-सपने में। यही न? लेकिन, एक बात कहूँ मधु, मुझे याद नहीं कि कभी बुरे सपने भी देखे होऊँ, और मेरी आँखों ने जिसे देखा, सुंदर ही पाया!

मधूलिका : *(आश्चर्यमयी मुद्रा से)* अच्छा!

अंबपाली : हाँ, हाँ, सच कहती हूँ सखि! न जाने क्या बात है, या तो कुरूप चीज़ें मेरी आँखों के सामने आती ही नहीं या मेरी नज़रें उनका प्रतिबिंब ग्रहण नहीं करतीं....

मधूलिका : *(बात काटकर किंचित मुसकान से)* या तेरी नज़र पड़ते ही कुरूप भी रूपवान हो उठते हैं?

अंबपाली : दिल्लगी की बात नहीं है, मधु! मैंने आज तक दुनिया में सिर्फ़ सौंदर्य-ही-सौंदर्य देखा है – निर्जीव प्रकृति से लेकर प्राणवान प्राणी तक... और, सपने? उनकी बात मत पूछ। मधु, आदमी जागना क्यों चाहता है? सोए रहो, सपने देखते रहो; क्या इससे भी कोई दूसरी अधिक सुंदर चीज़ हो सकती है? जागरण! *(उपेक्षा के शब्दों में)* जागरण आदमी का वरदान है या अभिशाप, रे!

मधूलिका : आज तुझे यह क्या हो गया है! तू किस सपने के लोक में है?

अंबपाली : रात जो देखा, उसकी मत पूछ! उफ़, बिलकुल अद्भुत, अपूर्व! उसकी याद से ही शर्म आती है, सखि!

मधूलिका : मेरी कल्पना की रानी! खैर, बता, तूने क्या देखा?

अंबपाली : तेरी ज़िद; अच्छा सुन *(वह चकित नेत्रों से इधर-उधर देखती है कि कोई दूसरा तो नहीं है और फिर धीमे स्वर में कहने लगती है)* रात देखा, कहीं अजीब देश में पहुँच गई हूँ, जहाँ चारों ओर फूल-ही-फूल हैं। जिन्हें हम गूलर-पाकर-पीपल कहते हैं, उनमें भी फूल लगे हैं – चंपा के, गुलाब के, पारिजात के। ज़मीन पर घास-फूस की जगह फूलों की पंखड़ियाँ बिछी हैं और धूल की जगह पीत पराग बिखरा है। हवा में अनहद संगीत, वातावरण में अजीब रंगामेज़ी। सामने एक तालाब देखा, जिसमें कमल के सहस्र-सहस्र फूल खिल रहे – लाल, श्वेत, पीत, नील। और, दर्पणोपम निर्मल नील जल!

मधूलिका : *(विस्मय में)* अजीब सपना!

अंबपाली : उसका अनोखापन तो अब आता है, रे। पानी में धँसकर मैं तैरने लगी और बढ़ी एक नील कमल की ओर। किंतु यह क्या? यह तो कलँगीवाला राजकुमार है और मुझे अपनी ओर आते देख वह मुसकरा रहा है। मैं चकित हुई। दूसरे कमलों की ओर देखा – वैसे ही कलँगीवाले राजकुमार, हज़ार-हज़ार! और, सब-के-सब मेरी ओर देखकर सिर्फ़ मुसकरा नहीं रहे, बल्कि ठठा-ठठाकर हँस रहे। मैं उफ़ क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, कैसे बाहर होऊँ? इससे तो डूब मरना अच्छा। एक डुबकी, दूसरी डुबकी, तीसरी डुबकी में मालूम हुआ, साँस घुट रही है। अच्छा हुआ, नींद टूट गई। जगी तो पाया, पसीने-पसीने थी।

मधूलिका : निस्संदेह विचित्र सपना देखा है तूने। लेकिन, समझती है, इसका मानी क्या है?

अंबपाली : क्या समझूँ? एक दिन का सपना हो तो, कुछ समझा जाए। जिसकी ज़िंदगी ही सपने की है, वह किस-किसका मानी लगाए!

मधूलिका : लेकिन इस सपने का तो खास महत्त्व है। वसंत के प्रथम दिन का यह सपना साधारण सपनों में नहीं है।

अंबपाली : तो क्या मानी है इसका?

मधूलिका : वही, जो उस दिन ज्योतिषीजी ने तेरे हाथ की रेखाएँ देखकर कहा था — 'तेरे चरणों पर हज़ार-हज़ार राजकुमारों के मुकुट लोटेंगे।'

अंबपाली : चुप, चुप! मैं तो उसकी कल्पना से ही सिहर उठती हूँ, मधु! 'हज़ार-हज़ार राजकुमार!' उफ़ वह भी कोई ज़िंदगी होगी। मेरा तो अकेला....

मधूलिका : 'मेरा तो अकेला अरुणध्वज!' क्यों, यही न कहना चाहती थी? *(रहस्यपूर्ण ढंग से मुसकराती है।)*

[एक कुंज की ओर से कुछ शब्द, किसी के आने की पदचाप-सी सुनाई पड़ती है — दोनों सखियाँ चौंककर उस ओर देखती हैं — पाती हैं, एक नौजवान चला आ रहा है — यह अरुणध्वज है — अंग-अंग गठा हुआ, सुपुष्ट, सुविकसित — कटि से घुटने तक का पीन वस्त्र — पीठ पर तूणीर, कंधे से धनुष लटक रहा, हाथ में एक बाण — सिर पर घुँघराले लंबे बाल जिन पर पीले पाटंबर की पट्टी जिससे कुछ फूल कलँगी की तरह झूल रहे — यौवन की साक्षात् प्रतिमा-सा दिखाई पड़ता है —

उसे देखते ही अंबपाली सिटपिट — मधूलिका उछल पड़ती है, जैसे उसे मुँहमाँगा वरदान मिला हो — 'अरुण, खूब आए, भले आए, अच्छे आए' *— कहती दौड़कर आगे बढ़ती है और उसे झूले के नज़दीक ले आती है — अरुण चकित-विस्मित उसका मुँह देखता है—]*

मधूलिका : *(अरुण से)* अच्छा, अब तुम दोनों इस पर बैठो *(झूले की ओर इशारा करती है)* मैं ज़रा झुलाऊँगी। *(अंबपाली से)* वह कौन-सा गाना है, अंबे, हाँ – हाँ *(सुर में)* 'मेरी श्यामा ने वंशी फूँकी। कोइलिया क्यों कूकी!' *(अपने चेहरे की ओर आश्चर्य से घूरते हुए अरुण से)* तुम बैठते क्यों नहीं जी?

अरुणध्वज : यह क्या शरारत सूझी है तुझे, मधु!

मधूलिका : हाँ, मेरी शरारत ही तो! ज़रूर मेरी शरारत है यह! अच्छा महाशयजी, प्रणाम! *(अंबपाली से)* देवीजी,नमस्ते! उभयमूर्ति इस अपराधिनी को क्षमा प्रदान कीजिए, मैं चली!

[बड़ी विनम्रता से दोनों को झुक-झुककर अभिवादन करती मधूलिका चलने का उपक्रम करती है – जब वह दो-तीन कदम आगे बढ़ती है, अंबपाली उसका हाथ पकड़ लेती है –]

अंबपाली : शैतानी मत कर, ठहर!

मधूलिका : पहले शरारत, अब शैतानी! राजा से सात गज़ बढ़कर रानी! *(बड़ी विद्रूपता से उँगली अपने मुँह पर ले जाती है!)*

अरुणध्वज : अच्छा, भाई तुम दोनों आपस में पीछे सुलझा लेना। मैं एक ज़रूरी बात कहने आया हूँ।

मधूलिका : किसी ज़रूरी बात से तो आप आए ही हैं। बिना ज़रूरत के आप यहाँ क्यों आते भला? कहाँ हमारा यह आनंदग्राम, कहाँ आपकी मधुगोष्ठी; बीच में वेगवती की धारा। तो भी आप रोज़-रोज़, बिला नागा, दोनों जून, जो यहाँ पैर थकाते, तकलीफ़ उठाते, पहुँच जाया करते हैं, सो क्या बिना किसी ज़रूरी बात के ही!

अरुणध्वज : अरी, तू दिन-दिन वाचाल होती जाती है! खैर, बोलो, तुम लोग चलती हो या नहीं?

मधूलिका : हाँ, हाँ, बोल अंबे, तू जाती है या नहीं? जा जा! *(अंबे को खोदती है।)*

अंबपाली : मैं पीटूँगी तुझे मधु। *(अरुण से)* चलें... कहाँ?

मधूलिका : *(सुर में)* 'कुंजकुटीरे, यमुनातीरे!' *(अलग हटकर खिलखिला पड़ती है।)*

अरुणध्वज : *(बनावटी गुस्से में)* फिर वही नटखटपन! *(अंबपाली से)* वैशाली चलना है।

अंबपाली : वैशाली? वैशाली में क्या है?

अरुणध्वज : फाल्गुनी उत्सव! हम वृज्जियों का प्यारा राष्ट्रीय त्योहार! किस वृज्जिकिशोरी और वृज्जिकुमार के मानस में इस उत्सव के नाम से ही भावनाएँ तरंग-पर-तरंग नहीं लेने लगतीं! और इस साल तो उसका विशेष महत्त्व है। वैशाली की राजनर्तकी देवी पुष्पगंधा अब अवकाश ग्रहण करने जा रही हैं, उनकी जगह इस साल नई राजनर्तकी का चुनाव....

[मधूलिका चुनाव का नाम सुनते ही इन दोनों के नज़दीक आती और आश्चर्य-भरे स्वर में कहती है —]

मधूलिका : चुनाव! इसी साल!

अरुणध्वज : हाँ, हाँ; इसी साल! देखें, वह कौन-सी सौभाग्यशालिनी वृज्जिकुमारी होती है, जिसके चरणों पर हज़ार-हज़ार राजकुमारों के मुकुट...

अंबपाली : *(अचानक चिल्ला उठती है)* ऐं! ऐं!

अरुणध्वज : क्यों? यों सहम क्यों उठी?

मधूलिका : मैं कहूँ, क्यों?

अंबपाली : मधु, मधु! *(हाथों से मना करती है।)*

अरुणध्वज : क्या बात है मधु?

मधूलिका : *(विनोद-भाव से अंबपाली को देखती)* क्यों?

अंबपाली : (गुस्सा दिखाती) तू चुप रहती है या...

मधूलिका : या तू पीट देगी, यही न! तो सुनिए, अरुणजी; उस दिन ज्योतिषीजी ने अंबपाली को कहा —

[अंबपाली मधूलिका की ओर लपकती है — अरुणध्वज उसका हाथ पकड़ लेता है — वह थोड़ी देर तक हाथ छुड़ाने की कोशिश करती है — फिर गंभीर होकर मधु से कहती है —]

अंबपाली : अच्छा, बोल, क्या ज्योतिषीजी ने कहा?

मधूलिका : ज्योतिषीजी ने अंबपाली से कहा — 'हज़ार-हज़ार राजकुमारों के मुकुट तुम्हारे चरणों पर लोटेंगे!' वह डरती है, कहीं वही न राजनर्तकी बना दी जाए!

अंबपाली : *(गुस्से में)* डरती है... डरूँ क्यों... डरे चुगलखोर!

अरुणध्वज : तुम दोनों पगली हो! वहाँ वैशाली की ही इतनी सुंदरियाँ होंगी कि तुम गाँव-गँवइयों को कौन पूछे! चलो, ज़रा देख आया जाए — नृत्य-गीत, खेल-तमाशे। ज़रा जी बहला आएँ!

मधूलिका : ज़रूर जाइए। खेल-तमाशे, नृत्य-गीत! नृत्य-गीत में आप दोनों की जोड़ी भी कैसी अच्छी रहेगी! मुझे काँटों में मत घसीटिए।

अरुणध्वज : फिर वही शरारत! तुझे चलना ही पड़ेगा, मधूलिके!

मधूलिका : अच्छा, शायद राधा की महत्ता के लिए कोई पिछलगी ललिता भी चाहिए ही।

अंबपाली : तू चुप नहीं होती रे!

[अंबपाली एक झटके में अरुणध्वज से हाथ छुड़ाकर मधूलिका को पीटने दौड़ती है — मधूलिका हँसती हुई भागती है — दोनों सखियों की भाग-दौड़ के पीछे-पीछे अरुणध्वज भी कुंज की ओट हो जाता है।]

2

[वेगवती नदी की पतली धारा के किनारे बसा आनंदग्राम — बाँस के बने और फूस के छाए छोटे-छोटे घर — हर घर के आगे बाँस के बनाए चौकोर बाड़े, जहाँ-तहाँ बच्चों के खेल और

कलरव – कुछ युवतियाँ घड़े लिए वेगवती की ओर जातीं – कई जगह बूढ़ियाँ चरखे कातती दिखाई पड़तीं –

आनंदग्राम के ठीक नदी-किनारे, एक घर वैसा ही बना, वैसी ही छाया, वैसे ही बाड़े, वैसे ही तोरण –

इस घर का आँगन – लिपा-पुता, स्वच्छ, निर्मल – आँगन के एक कोने में एक चबूतरा, जिस पर कुछ फूल और तुलसी के पौधे – बीच आँगन में – धूप में बैठी – एक बुढ़िया चरखा कात रही – सामने बरामदे में एक किशोरी फूलों की माला गूँथ रही और गुनगुना रही –

इस किशोरी को पहचाना आपने? यह अंबपाली है – और बुढ़िया उसकी पालिका सुमना – सुमना चरखा कातती-कातती कई बार उसकी ओर नज़र उठाकर देखती है, फिर जैसे चिढ़कर बोल उठती है –]

सुमना : बस फूल, फूल, फूल! दिन फूल, रात फूल, सुबह फूल, शाम फूल!

अंबपाली : *(सिर नीचा किए माला गूँथती-गूँथती)* दिन फूल, रात फूल, सुबह फूल, शाम फूल!

सुमना : उलटे मेरा मुँह चिढ़ाती है, चिढ़ा ले। बस, कुछ दिन और! फिर, जब किसी का घर बसाएगी तो आटे-दाल का भाव मालूम होगा।

अंबपाली : जब किसी का घर बसाएगी, तब आटे-दाल का भाव...*(अचानक सिर ऊँचाकर)* अच्छा, आटे-दाल का आजकल क्या भाव है मौसी?

सुमना : चुप नहीं होती, शोख लड़की! यह जानती तो उसी दिन तेरा गला...*(चरखे से एक हाथ छुड़ा गले पर ले जाती और इस तरह इशारा करती है, मानो गला घोंटना चाहती हो।)*

अंबपाली : किस दिन मौसी?

सुमना : जब तू छोटी बच्ची थी, तेरी माँ मर रही थी और तू कें-कें कर रही थी– कें-कें-कें!

अंबपाली : तो क्यों नहीं गला घोंट दिया? तुम घोंट ही नहीं सकतीं, मेरी अच्छी मौसी!

सुमना : तब न घोंटा, अब बिना घोंटे न छोड़ूँगी। जब देखती हूँ, गुनगुना रही है, थिरक रही है या फूल गूँथ रही है! तू घर-गिरस्ती की कोई बात तो सीखती ही नहीं। जहाँ जाएगी, आप जलेगी, मुझे गालियाँ सुनवाएगी।

अंबपाली : मैं तुम्हें छोड़कर कहीं नहीं जाती, मौसी! और किसकी मजाल जो तुम्हें गालियाँ दे? *(चेहरे पर अभिमान का स्पष्ट आभास)*

सुमना : *(तमककर)* हट, सब लड़कियाँ ऐसा ही कहती हैं (मुँह बनाकर) 'मैं तुम्हें – छोड़कर – कहीं – नहीं जाती!' लेकिन जब नए घर में जाती हैं, फिर...

[इसी समय सजी-धजी मधूलिका लपकती हुई पहुँचती है और सुमना की बात बीच ही में काटती हुई बोलती है –]

मधूलिका : नहीं, नहीं मौसी! अंबा सब लड़कियों जैसी नहीं है। यह किस के घर जाएगी? ऊहूँ! इसके चरणों पर तो हज़ार-हज़ार राजकुमार अपने मुकुट चढ़ाएँगे – हाँ!

सुमना : हाँ – हाँ, एक उम्र में सब लड़कियाँ राजकुमारों का ही सपना देखती हैं – हज़ार-हज़ार राजकुमार! लाख-लाख देवकुमार! लेकिन, जब एक दिन हाड़-मांस का एक साधारण मानव-पुतला हौले हाथ पकड़ता और अपनी गिरस्ती की चक्की में गाढ़े जोतता है तो उनके सारे सपने हवा हो जाते हैं।

अंबपाली : मैं नहीं जुतूँगी, नहीं जुतूँगी, नहीं जुतूँगी।

सुमना : यह भी कह, मैं ज़िंदगी-भर गाऊँगी, नाचूँगी, माला गूँथूँगी। कह ले, कह ले; जितने दिन कह ले। कह ले, मुझे जला ले। बस, एक वसंत और आने की देर है।

मधूलिका : लेकिन मौसी! क्या इस उम्र में आप ये सब नहीं करती थीं?

सुमना : करती थी क्यों नहीं रे! *(शांत होती)* मैं नाचने, गाने या फूल गूँथने से थोड़े मना करती हूँ। लेकिन, तुम लोगों को कुछ और भी तो सीखना चाहिए न।

जिस घर में जाओ, बोझ हो के नहीं जाओ। नारी जीवन की सार्थकता सिर्फ़ नाचने, गाने या फूल चुनने में नहीं है बल्कि अर्द्धांगिनी बनने में है।

[उधर बाहर घर्र-घर्र और टप-टप की आवाज़ होती – और तुरंत ही अरुणध्वज आँगन में हँसता हुआ घुसता है – सुमना को अभिवादन कर वह दोनों सखियों की ओर मुखातिब होकर कहता है –]

अरुणध्वज : वाह! तुम लोग अभी तैयार नहीं हुई?

सुमना : क्या है? कहाँ के लिए, अरुण?

मधूलिका : मौसी, उस दिन कहा था न तुम्हें, हम वैशाली जाना चाहते हैं। आज ही जाना है। *(अंबपाली से)* क्या तूने मौसी से नहीं कहा था अंबे?

सुमना : ओहो, तभी आज भोर से ही मालाएँ गूँथी जा रही हैं। *(अंबपाली की ठुड्डी पकड़ती हुई)* मेरी पगली, तूने मुझसे कहा क्यों नहीं?

अंबपाली : मैं नहीं जाती!

सुमना : नहीं जाती? क्यों नहीं जाएगी रे! जा – जा, ज़रा जी बहला आ । तेरी उम्र की थी, हम भी जाया करती थीं। फाल्गुनी उत्सव? यह तो हम वृज्जियों का महामेला है। जा, परिधान बदल ले, प्रसाधन कर ले। *(अरुण से)* और अरुण, देखना, मेरी अंबा बिलकुल बालिका है। ज़रा होशियारी से मेले में रखना!

अंबपाली : *(अनखाकर)* मेरी तबीयत अच्छी नहीं; मैं नहीं जाऊँगी।

सुमना : बस, फिर ज़िद। देखता है न तू अरुण, कैसी तुनकमिज़ाज... *(मधूलिका से)* मधु, क्या देखती है, जा, जल्द इसका परिधान ठीक कर दे। ओहो! *(मधूलिका को सिर से पैर तक निहारती हुई)* मैंने ध्यान ही नहीं दिया था, तू इसी से सज-सजाकर आई है।

[मधूलिका अंबपाली को घसीटकर घर में ले जाती है – अरुणध्वज सुमना के नज़दीक बैठ जाता है – सुमना फिर चरखा कातती हुई उससे बातें करती है –]

सुमना : तू कितने साल का हुआ रे, अरुण!

अरुणध्वज : माँ कहती थी, इक्कीसवाँ जा रहा है।

सुमना : मेरी अंबा का भी यह सोलहवाँ है।

अरुणध्वज : *(बड़ी सादगी से)* कवियों ने इसे ही न षोडशी कहा है, मौसी!

सुमना : हाँ – हाँ, यही षोडशी! – जब जवानी बचपन की खिड़की से बाहर की दुनिया को झाँकती है। अजीब उम्र है यह, अरुण! – जब संसार की सब चीज़ें चंचल, नृत्यशील, रंगीन और संगीतमय दिखाई पड़ती हैं। जब लड़कियाँ समझ नहीं पातीं वे क्या हैं! प्रदर्शन जब उनका एकमात्र मनोरथ होता है और प्रसाधन एकमात्र व्यवसाय।

अरुणध्वज : लेकिन अंबा को तो तुम्हीं ने अभी-अभी प्रसाधन के लिए प्रेरित किया है।

सुमना : किया है, क्यों? समझे? नारी अपने को नर से हीन अनुभव करती है। इस हीनता को छिपाने के लिए ही वह प्रसाधन की ओर प्रवृत्त होती है। हम नारियों की साज-सिंगार की प्रवृत्ति हमारी हीनता की सूचक है, अरुण! यह हीनता तब दूर होती है, जब नारी में मातृत्व आता है – वह बिलकुल बदल जाती है, महामहिमान्वित हो जाती है। मातृत्व नारीत्व का चरम उत्कर्ष है। *(कहते-कहते उसका चेहरा रक्ताभ हो उठता है, उसकी आँखें मुँदने-सी लगती हैं, थोड़ी देर के भावावेश के बाद –)* अच्छा, तेरी माँ अब कैसी है, अरुण!

अरुणध्वज : अच्छी ही हैं; हाँ, जब-तब तबीयत कुछ सुस्त हो जाया करती है।

सुमना : तो तू वधू क्यों नहीं लाता? बेचारी की सेवा वह करती। अब तो तू सयाना हुआ रे!

अरुणध्वज : वधू क्या यों ही मारी-मारी फिरती है मौसी?

सुमना : अरे, इसी फाल्गुनी उत्सव में देखना। कितने जोड़े लगते हैं वहाँ! मेरी लगन भी वहीं लगी थी। हाँ, हाँ, तू अब ब्याह कर ले। एक-दो साल में तो अंबा के लिए भी वर चाहिए ही।

[प्रसाधन-शृंगार से सज्जित अंबपाली को लिए-दिए मधूलिका आँगन में आती है — उसका रूप देखकर अरुण की टकटकी बँध जाती है — सुमना उसे देखते ही खिल पड़ती है; बोलती है —]

सुमना : अरुण बेटा, मेरी अंबा जैसी सुंदरी समूचे वृज्जिसंघ में नहीं मिल सकती! तू वैशाली के इस फाल्गुनी उत्सव में देख लेना।

मधूलिका : *(धीरे से)* तब तो यह ज़रूर ही राजनर्तकी चुनी जाएगी।

सुमना : यह तू क्या बोली, मधु!

अंबपाली : *(जो मधूलिका की बात सुन चुकी है, खीझ में)* मैं वैशाली नहीं जाती।

मधूलिका : वाह, नहीं जाती! चलना ही पड़ेगा, हाँ —

[मधूलिका अंबपाली की बाँह पकड़कर उसे घसीटती, घर के बाहर, तोरण के पास ले आती है — पीछे-पीछे सुमना और अरुण हैं — तोरण के सामने अरुण का रथ खड़ा है — वह आगे बढ़कर घोड़े की रास सँभालता है — अंबपाली को आगे ठेलकर मधूलिका भी रथ पर जा चढ़ती है — अरुण भी रथ पर आ रहता है — तीनों सुमना को अभिवादन करते हैं —]

सुमना : देखना, अरुण! मेरी अंबा भोली है; कहीं भीड़ में खो न जाए। *(घोड़े सर्राटे से आगे बढ़ते हैं — सुमना टकटकी लगाए रथ को देखती रहती है — उसके मुँह से निकल पड़ता है —)* भोली बच्ची!

3

[आदिकवि वाल्मीकि द्वारा प्रशंसित, अपनी विशालता और भव्यता से स्वर्ग की गरिमा को भी पराजित करने वाली विशाला वैशाली नगरी — उसमें वृज्जियों का वह भव्य दिव्य 'संघागार' जिसमें उनके संघ के 7,707 राजा एकत्र होकर समय-समय पर परामर्श और निर्णय करते—

संघागार के विशाल प्रासाद के ऊपर के तोरण पर एक विशाल सिंह की मूर्ति जो एक पैर उठाए, मानो झपट्टा मारना चाह रही – उसके दोनों ओर दो गज-मूर्तियाँ जिनकी सूँड़ उठकर ठीक सिंह-मूर्ति के ऊपर, आपस में जा मिलती हैं – सूँड़ के इस मिलने की जगह से एक लंबा स्तंभ जिस पर वृज्जियों की राष्ट्रीय पताका लहरा रही –

लाल रंग की वह पताका जिस पर उजली सिंह-मूर्ति अंकित –

संघागार पर पंक्ति से, तोरण से चार एक तरफ़, चार दूसरी तरफ़, कुल आठ गुंबद– इन गुंबदों के रंग क्रमशः नील, पीत, हरित, मंजिष्ठ, लोहित, श्वेत, अवदात और व्यायुत, जो वृज्जियों के आठ कुलों के सूचक हैं –

संघागार के नौबतखाने से तरह-तरह के बाजे बजकर दिग्दिगंत को मुखरित कर रहे हैं–

और, संघागार के सामने के विस्तृत मैदान में, पहले जहाँ वैशाली का बाज़ार लगा करता, आज फाल्गुनी उत्सव की तैयारियाँ है –

वृत्ताकार बनी है यह उत्सव-भूमि – वृत्त के बीच में ऊँची रंगभूमि है, जहाँ युवक-युवतियों के नृत्य-गान हो रहे – रंगभूमि को केंद्र मानकर समूचा वृत्त आठ भागों में विभक्त किया गया है – जहाँ की दुकानें, परिधान, रथ आदि उपर्युक्त आठ रंगों के ही –

फूलों और सोमरस की दुकानों पर सबसे अधिक भीड़ –

प्रसाधन-शृंगार से आभूषित युवक-युवतियों का अनुपम जमघट –

रंगभूमि से नृत्य-संगीत की धारा प्रवाहित हो आठों भागों को जैसे डुबो देना चाहती हो– सबके पैरों में नृत्य की गति, सबके स्वर में संगीत के सुर – एक मोहक-मादक उत्तेज से वायुमंडल व्याप्त –

अंबपाली : मैं अब नहीं देखना चाहती।

अरुणध्वज : क्यों?

अंबपाली : ये लोग अच्छे नहीं दिखाई देते। सब यों घूरते हैं, जैसे आँखों से निगल जाएँगे।

मधूलिका : *(चौंकती-सी)* आँखों से निगल जाएँगे?

अंबपाली : हाँ, हाँ, आँखों से निगल जाएँगे! मैं तो इन्हें देखते ही काँप उठती हूँ, मधु! ये आँखें हैं या... *(अरुण से)* नहीं-नहीं, अरुण, चलो। मैं बाज़ आई इस देखने से।

मधूलिका : *(व्यंग्य से)* या दिखाने से! मेरी रानी, अभी तू देखने-दिखाने से यों काँपती है और जब हज़ार-हज़ार राजकुमार...

अंबपाली : फिर वही शैतानी? *(भौंहें चढ़ाकर अरुण से)* अरुण, चलते हो? चलो।

अरुणध्वज : चलूँ? कहाँ? संसार में कोई ऐसी जगह बता दे, जहाँ आँखें न हों।

अंबपाली : लेकिन आँख-आँख में फ़र्क है।

मधूलिका : और, मैंने उस दिन कहा था, सपने-सपने में फ़र्क है और फ़र्क है रूप-रूप में, तब तू नहीं मानती थी। भला, मुझे कोई क्यों नहीं देखता, घूरता, या तेरे शब्दों में, निगलता।

अंबपाली : *(झुँझलाकर)* मैं क्या जानूँ!

मधूलिका : जानेगी, जानेगी। और जब जान जाएगी, मुझसे भर मुँह बातें भी नहीं करेगी।

अंबपाली : *(अरुण से रुखाई के शब्दों में)* तुम मुझे ले चलते हो या नहीं, अरुण?

अरुणध्वज : अच्छा चल, सोमरस की दुकान पर *(हाथ से बताते हुए)* थोड़ा पी ले, थकावट दूर हो जाएगी।

अंबपाली : *(चौंककर)* सोमरस! मौसी कहती थी, लड़कियों को सोमरस नहीं पीना चाहिए।

अरुणध्वज : हर मौसी मना करती है और हर लड़की पीती है -- यही होता आया है उस युग से, जब दुनिया में लड़कियाँ पैदा हुई और देवताओं ने सोमरस भेजा।

अंबपाली : देवताओं ने भेजा?

अरुणध्वज : हाँ, हाँ देवताओं ने भेजा! सुरों द्वारा सुर-लोक से भेजी गई होने के कारण ही तो यह अलौकिक पेय सुरा कहलाती है। शेषनाग को रस्सी बना, मंदराचल की मथानी से, क्षीर-सागर मथकर देवताओं ने इसे निकाला। सुधा नाम से उसे पीकर आप अमर हो गए और सुरा नाम से हमारे पास, इस मर्त्यभुवन में भेजा। हमने उसे सोमरस का सुंदर नाम दिया।

अंबपाली : इसे ही पीकर देवता अमर हुए?

अरुणध्वज : हाँ रे, इसे ही पीकर देवता अमर हुए और इसे ही पीकर हमारे ऋषियों ने ऋग्वेद की कविता की, सामवेद के गीत गाए और यजुर्वेद से यज्ञपूत हो अमृतपुत्र कहलाए।

अंबपाली : तो मौसी मना क्यों करती थीं?

मधूलिका : उस दिन वह फूल गूँथने से भी तो मना कर रही थीं न?

अंबपाली : ठीक रे मधु, बुढ़ियों की ऐसी ही बातें होती हैं। *(अरुण से)* लेकिन लगता है यह कैसा अरुण?

अरुणध्वज : कुछ मत पूछ, अंबे! जहाँ हलक के नीचे उतरा, सारी थकावट दूर, नस-नस में ताज़गी दौड़ने लगती है। थोड़ी देर में ही मालूम होता है, जैसे बाँहों के नीचे से पंख फूट निकले हैं और हम हवा में उड़े जा रहे हैं!

अंबपाली : जैसे सपने में लोग उड़ा करते हैं?

अरुणध्वज : बस, बस वैसे ही। कुछ क्षणों में ही यह हमें स्वर्गलोक में उड़ा ले जाता है! स्वर्गलोक में -- जहाँ अमरता है, शाश्वत यौवन है, संगीत है...

मधूलिका : *(बीच में ही बात काटकर)* और जहाँ सुनहले पंखोंवाले लाख-लाख देवकुमार हैं...

अंबपाली : *(झपटती हुई)* तू चुप नहीं होती!

अरुणध्वज : *(अंबपाली का हाथ पकड़े हुए)* चल-चल, ज़रा पी लें –

[एक हाथ से अंबपाली और दूसरे हाथ से मधूलिका को पकड़े अरुणध्वज हँसते हुए सोमरस की दुकान पर जाता है – युवक-युवतियों के रेल-पेल में तीनों घुस जाते हैं और एक मंच पर बैठकर सोमरस पीते हैं – एक-दूसरे को प्याले-पर-प्याले पिलाए जा रहे हैं –

उसी समय चार राजकुमारों के साथ पुष्पगंधा, वैशाली की आज तक की राजनर्तकी वहाँ पहुँचती है – संघ के प्रतिनिधित्व की हैसियत से ये पाँचों नई राजनर्तकी के लिए सर्वश्रेष्ठ सुंदरी का चुनाव करने को किशोरियों का निरीक्षण करते फिर रहे हैं – उनमें से एक राजकुमार की नज़र अंबपाली पर पड़ती है –]

पहला राजकुमार : *(पुष्पगंधा से)* भद्रे, ज़रा उस किशोरी को तो देखें।

पुष्पगंधा : कौन? वह? *(अंबपाली की ओर उँगली उठाती)*

दूसरा राजकुमार : *(उसी ओर उँगली करके)* वह? वही न?

पहला राजकुमार : हाँ, हाँ वही। कितनी अपूर्व सुंदरी! ऐसी सुंदरी इस उत्सव-मंडली में दूसरी नहीं है। क्यों भाई? *(तीसरे राजकुमार से)*

तीसरा राजकुमार : इतनी जल्दी मत कीजिए! हमें एक ऐसी सुंदरी को चुनना है जिसका जोड़ हमारे संघ की तरह ही संसार में न मिले। जो कीर्ति वृज्जिसंघ को प्राप्त है, उसके अनुरूप ही तो राजनर्तकी भी चुनी जानी चाहिए न? जिस गौरव को देवी पुष्पगंधा ने स्थापित किया है, उसकी रक्षा क्या हम इतनी जल्दबाज़ी करके कर पाएँगे?

पुष्पगंधा : कुमार, आपका कहना सही है, हमें जल्दबाज़ी नहीं करनी चाहिए। लेकिन, वह कोई साधारण रूपसी नहीं मालूम होती है, कुमारो!

पहला राजकुमार : आप ठीक कहती हैं, मुझे शक है, देवसभा की उर्वशी भी इतनी सुंदर नहीं होगी। *(राजकुमारों से)* ज़रा, इसके एक-एक अंग को देखो,

भाइयो! उफ़; यह तो साँचे की ढली मालूम होती है — सुंदरता, मानो, नारी का रूप धरकर हमारे सामने साक्षात् खड़ी है!

तीसरा राजकुमार : *(गौर से निरीक्षण करते)* लेकिन, कुछ गँवई-सी मालूम होती है। क्यों, आप क्या समझते हैं? (दूसरे से पूछता है।)

दूसरा राजकुमार : लेकिन वृज्जिसंघ नगर और ग्राम का कोई भेद नहीं करता। यहाँ सबकी समता है। अपने गुण से हर नागरिक राजा हो सकता है, अपने रूप से हर सुंदरी राजनर्तकी के गौरव को प्राप्त कर सकती है। *(चौथे से, जो सबमें वयस्क है)* क्यों, आप नहीं कुछ बोल रहे?

चौथा राजकुमार : इसमें संदेह नहीं कि हमने जितनी सुंदरियाँ देखी हैं, उनमें यह सर्वश्रेष्ठ है। किंतु मेरा खयाल है, अपनी उत्तराधिकारिणी पसंद करने की सबसे ज़्यादा जिम्मेवारी देवी पुष्पगंधा पर है। इसलिए, हम लोग इस पर ज़्यादा विवाद न कर अंतिम निर्णय इन्हीं पर छोड़ दें।

पुष्पगंधा : यह आपकी कृपा है, लेकिन इससे हममें से किसी की ज़िम्मेवारी कम नहीं होती। हाँ, अच्छी बात हो, हम थोड़ा और घूमकर देख लें।

[इन पाँचों का दल आगे बढ़ता है — उधर सोमरस पीकर मस्त बनी अंबपाली अरुणध्वज और मधूलिका के साथ निकलती है — वह खूब हँस रही है — पहले की शरमीली लड़की नहीं है — प्रगल्भतापूर्वक हँसती जा रही है —]

अरुणध्वज : तुझे क्या हो गया है अंबे? कहीं इतना भी हँसा जाता है?

अंबपाली : *(उसकी आवाज़ लटपटा रही है, बीच-बीच में रुक जाती है)* कहीं इतना भी...हँसा जाता है। ह-ह-ह-ह-!! क्यों मधु, कहीं — इतना भी— हँसा — जाता है!! हा-हा-हा-हा!!!

मधूलिका : *(डाँटती-सी)* यह क्या अंबे?

अंबपाली : ह-ह-ह-ह!...ही-ही-ही!! यह क्या अंबे? यह क्या??...अरे, यह क्या रे मधु!...मधु!!

मधूलिका : *(नाराज़ी और हुकूमत के स्वर में)* तू चुप नहीं होती।

अंबपाली : *(घूरकर देखती)* चुप नहीं होती। चुप नहीं...हा-हा-हा-हा-...हो... हो...हो... हो...मधु! मधु!!... अरी, मैं उड़ी जा रही हूँ, रे मधु...मधु, पकड़ रे! रे...ये मेरे पंख...*(हाथों को हवा में डैनों-से फटकारने लगती है।)*

मधूलिका : *(उसके हाथों को पकड़ लेती है, अरुण से नाराज़ी में कहती है)* अरुण, तुमने यह अच्छा नहीं किया...

अरुणध्वज : तू घबरा नहीं, मधु, मैं इसे तुरंत अच्छा कर देता हूँ। नशा थोड़ी हरारत खोजता है। *(अंबपाली से)* नाचेगी नहीं रे!

अंबपाली : नाचेगी नहीं रे! मैं नाच रही हूँ रे । मैं नाच रही हूँ...रे...मधु...छोड़ रे मधु...*(झटके से हाथ छुड़ा लेती है और गति से हाथ-पैर चलाने लगती है)* मैं नाच रही रे...मधु...नाच रे!...अरुण नाच रे *(वह दौड़कर अरुण का हाथ पकड़ लेती है)* नाच...रे...नाच...

[अरुण उसके हाथा में हाथ दिए उसे रंगभूमि में ले जाता है — मधूलिका भी पीछे-पीछे जाती है — अनेक युवक-युवतियों का नृत्य हो रहा है — अंबपाली और अरुण भी नाचने लगते हैं — अरुण थक जाता है, लेकिन अंबपाली अकेली नाचती ही रह जाती है। लोगों का ध्यान धीरे-धीरे उसके अपूर्व नृत्य की ओर जाता है — सब अपना-अपना नृत्य बंद कर उसी का नृत्य देखने लगते हैं — चारों ओर से हर्षवर्धन और पुष्पवर्षा हो रही है —

पुष्पगंधा भी अपनी मंडली के साथ वहाँ पहुँच जाती है — वह और चारों राजकुमार उसका नृत्य देख मुग्ध हो जाते हैं — राजकुमारों का स्वीकृति-सूचक रुख देख पुष्पगंधा आगे बढ़ती है और उसके गले में राजनर्तकी की जयमाल डाल देती है — चारों राजकुमार चिल्ला उठते— 'राजनर्तकी की जय'! 'राजनर्तकी की जय'!! *उनकी जय की*

ध्वनि-प्रतिध्वनि उपस्थित जनता की ओर से होती है; इस जयकार से चकित हो, मानो कुछ होश में आ, अंबपाली मधूलिका के पास दौड़ जाती है, जो वहाँ खड़ी टकटक उसे देख रही थी —]

अंबपाली : मधु,मधु...राजनर्तकी...राजनर्तकी!

पुष्पगंधा : *(उसके निकट पहुँचकर)* हाँ, राजनर्तकी! कल तक की राजनर्तकी मैं; आज से राजनर्तकी तुम।

अंबपाली : राजनर्तकी!...मैं...मैं *(आश्चर्य से आँखें विस्फारित करती)* राजनर्तकी?...मैं राजनर्तकी?...मैं...

पुष्पगंधा : हाँ, हाँ, तुम राजनर्तकी, तुम!

अंबपाली : *(अचानक विक्षिप्त-सी होकर)* मधु, मैं राजनर्तकी...अरुण, मैं राजनर्तकी! राजनर्तकी... ह-ह-ह-ह...मैं राजनर्तकी...हा-हा-हा-हा...

मधूलिका : *(व्याकुल होकर)* अंबे, क्या बक रही है, अंबे?

अंबपाली : बक रही?...मैं — बक — रही? *(फिर उत्तेजित होकर)* नहीं, नहीं, मधु, मैं राजनर्तकी...मैं राजनर्तकी...रे...मैं राजनर्तकी...हज़ार-हज़ार राजकुमारों के मुकुट...हो-हो-हो-हो... मेरे चरणों पर रे, मेरे चरणों पर...*(मधूलिका की आँखों को देखकर)* मधु, तू घूर क्यों रही है रे...मैं राजनर्तकी।

अरुणध्वज : तू होश में नहीं है अंबे! ओहो! मधु, मैंने क्या किया? *(वह विह्वल-सा दिखाई देता है।)*

पुष्पगंधा : कुछ बुरा नहीं किया आर्य! तुम सौभाग्यशाली हो, तुमने संघ को राजनर्तकी दी। तुम कौन हो, कहाँ के हो? कौन वह सौभाग्यशाली वंश है? कौन वह सौभाग्यशाली ग्राम है?

अरुणध्वज : *(विह्वलता में ही)* मधु, मधु, यह क्या हो रहा है? ओहो, अंबे, अंबपाली, यह क्या? *(थोड़ा शांत हो पुष्पगंधा से)* भद्रे, हम आनंदग्राम से आए हैं...ओहो, यह क्या?

अंबपाली : *(प्रमत्त बनी बके जा रही है)* मैं राजनर्तकी...अरुण...अरुण...मैं राजनर्तकी !...ह-ह-ह-ह...मधु...तू हँसती क्यों नहीं रे ?...मैं राजनर्तकी... हज़ार-हज़ार...हज़ार-हज़ार राजकुमारों के मुकुट...मेरे चरणों पर लोटेंगे रे...चरणों पर...हा-हा-हा-हा...तुम हँसते क्यों नहीं हो अरुण ? हँसो...हँसो... हँसो... हा-हा-हा-हा...

[अरुण के चेहरे का रंग उड़ जाता है – वह काँप उठता है – फिर मूर्ति-सा खड़ा देखता रहता है – मधूलिका कभी अंबपाली और कभी अरुण का चेहरा देखती किंकर्तव्यविमूढ़ बन रही है – इधर लोग पुष्पवर्षा और आनंद-ध्वनि किए जा रहे हैं – उसी समय एक रथ आकर नज़दीक में खड़ा होता है – पुष्पगंधा अंबपाली का हाथ पकड़कर रथ पर चढ़ा लेती है – खिल-खिल हँसती अंबपाली अरुण और मधूलिका की ओर मुखातिब हो बोलती है –]

मधु...मैं राजनर्तकी...अरुण, मैं राजनर्तकी...राजनर्तकी...राजनर्तकी... हा-हा-हा-हा...हज़ार-हज़ार राज...

['नई राजनर्तकी की जय ', 'अंबपाली की जय ' *पुष्पगंधा कहती है– सब उसके जयनाद में साथ देते हैं – इसी तुमुल जयनाद में रथ चल पड़ता है –अरुणध्वज पत्थर की मूर्ति-सा खड़ा है – मधूलिका थोड़ी दूर* 'अंबे !' 'अंबे'। *चिल्लाती दौड़ती है – फिर गिर पड़ती है।]*

4

[वैशाली का राजकीय वसंतोद्यान – बीच में एक बँगला, पुष्पों से घिरा, लताओं से लदा – सुबह की सुनहली धूप से सब चीज़ें जगमग हो रहीं –

बँगले के कमरे के मुँह पर जो कामदार पर्दा झूल रहा है, वह हटता है – भीतर से अंबपाली निकलती है – आँखों में खुमार – चेहरे पर नींद की छाया – चकित नेत्रों से इधर-उधर देखती है– बरामदे पर आकर पुकारती है–]

अंबपाली : कोई है?

[एक परिचारिका दौड़कर आती है – उसके सामने झुककर अभिवादन करती और बोलती है –]

परिचारिका : भद्रे, जो आज्ञा।

अंबपाली : *(आश्चर्यमयी मुद्रा में)* आज्ञा? मैं कहाँ हूँ? उफ़, यह कैसा सपना?

परिचारिका : नहीं आर्ये, यह सपना नहीं, प्रत्यक्ष सत्य है। यह वैशाली का राजकीय वसंतोद्यान है और मैं हूँ आपकी परिचारिका।

अंबपाली : परिचारिका? *(झिझककर)* मुझे किसी की परिचर्या की ज़रूरत नहीं। क्या मैं बूढ़ी हूँ, रोगी हूँ?

परिचारिका : *(किंचित् मुसकान से)* ज़रूरत पड़ेगी, पड़ेगी आर्ये।

अंबपाली : (उत्तेजना में) नहीं, नहीं! *(उसाँसें लेती हुई)* आह, मधु कहाँ, अरुण कहाँ? *(परिचारिका से)* बता, बताती क्यों नहीं?

[बँगले के बरामदे के दूसरे छोर से पुष्पगंधा आती दिखाई पड़ती है – उसकी आहट सुन परिचारिका उस ओर देखती है और ससंभ्रम हट जाती है – अंबपाली पुष्पगंधा को घूर-घूरकर देखती है – वह निकट पहुँचती है– परिचारिका अंततः वहाँ से हट जाती है –]

पुष्पगंधा : क्यों? तबीयत अच्छी है न?

अंबपाली : आप कौन हैं?

पुष्पगंधा : भूल गई?

अंबपाली : भूल गई! *(गौर से देखती है।)*

पुष्पगंधा : कहीं देखा नहीं?

अंबपाली : *(सोचती हुई)* सपने में शायद कभी देखा है? आप कौन हैं?

पुष्पगंधा : *(मुसकराती)* मुझे लोग पुष्पगंधा कहते हैं, यह नाम कभी सुना है?

अंबपाली : नाम तो यह सुना है – वृज्जिसंघ की सर्वश्रेष्ठ सुंदरी, वैशाली की राजनर्तकी।

पुष्पगंधा : ठीक, कल तक मैं वृज्जिसंघ की सर्वश्रेष्ठ सुंदरी थी, वैशाली की राजनर्तकी थी। लेकिन आज मैं वह नहीं रही।

अंबपाली : आज क्यों नहीं रहीं?

पुष्पगंधा : यह भी भूल गई? रात का सपना याद कर – तू जो रात राजनर्तकी चुनी गई, वैशाली की सर्वश्रेष्ठ सुंदरी मानी गई।

अंबपाली : *(कातरता से)* भद्रे, मैं सपनों से परेशान हूं। मेरी मधु कहाँ? मेरा अरुण कहाँ? अरुण...*(चिल्लाती है।)*

पुष्पगंधा : *(उसकी आवाज़ में गंभीरता आ जाती है)* यों लोग नहीं चिल्लाते अंबे! तू जहाँ खड़ी है, उस स्थान की मर्यादा देख। वृज्जिसंघ की कुमारियाँ मर्यादा का उल्लंघन नहीं करतीं। जिस दिन हमारी कुमारियाँ मर्यादा छोड़ देंगी, संघ की नींव हिल जाएगी। नारियाँ राष्ट्र की इमारत की नींव की ईंट होती हैं, नींव की चंद ईंटें हटा दो, बड़ी-से-बड़ी इमारत भहरा पड़ेगी।

अंबपाली : मर्यादा... मर्यादा मुझसे टूटी है क्या भद्रे? क्षमा करें । मुझे मेरी मधु से, मेरे अरुण से मिलाइए। आह, मेरी मौसी! मैं कहाँ से वैशाली आई, मैं सचमुच मेले में खो गई! *(उसकी आँखों में आँसू छलछला आते हैं।)*

पुष्पगंधा : *(ज़रा-सी मुसकराती हुई)* तू खो गई, और संघ ने नर्तकी पाई। कोई खोता है, तभी कोई पाता है, अंबे!

अंबपाली : *(गिड़गिड़ाती हुई)* आर्ये, अब सपने में न रखिए – मुझे मेरे साथियों से मिलाइए, या आनंदग्राम भिजवाइए।

पुष्पगंधा : आनंदग्राम रथ गया है, तेरी मौसी आती ही होंगी। मधु और अरुण संघ के अतिथि-भवन में हैं। तू ज़रा प्रसाधन कर ले, इसी रूप में मिलेगी उनसे? अब तू अपने पद-गौरव को समझ।

अंबपाली : पद-गौरव?

पुष्पगंधा : यों भूलने, विभोर होने से काम नहीं चलता, अंबे! अब तू राजनर्तकी है। कल संघ ने तुझे राजनर्तकी के रूप में अभिषिक्त जो किया। जिस अभिषेक-मंगल-पुष्करिणी के जल की कुछ बूँद पाने के लिए कोशल और मगध की महारानियाँ तरसती रहती हैं, वह सरोवर अब तेरे अंगराग से आए दिन रंगीन और सुवासित बनेगा। वृज्जिसंघ के जिन राजकुमारों के गर्वोन्नत सिर हिमालय के शृंग की तरह उन्नत और प्रदीप्त हैं, जिन्हें कोई पदाक्रांत कर नहीं सकता, झुका नहीं सकता, उन्हीं सिरों के हज़ार-हज़ार मुकुट तेरे चरणों पर अवनत होंगे, लोटेंगे। तुझे इस गौरव के अनुरूप ही अपने को ढालना होगा, अंबे!

अंबपाली : क्षमा कीजिए, आर्ये! मैं राजनर्तकी नहीं बनना चाहती।

पुष्पगंधा : कोई चाहकर राजनर्तकी नहीं बन पाती, अंबे! हमारा यह संघ जंबूद्वीप भर में इसीलिए प्रसिद्ध है कि यहाँ की नारी और नर अपने व्यक्तित्व को संघ पर समर्पित कर देते हैं। संघ जिसको जो ज़िम्मेवारी देता है, वह उसे निभाता है। संघ की आज्ञा पर हमारे सैनिक समरक्षेत्र में अपनी गरदन हँसते-हँसते कटा डालते हैं; हमारे नाविक अपनी पूरी ज़िंदगी बजड़ों पर ही बिताकर, नागरिक जीवन के सुख-ऐश्वर्य से दूर रहकर हमारे संघ को नाना तरह के धनरत्न से विभूषित करते हैं; तो फिर तुम-हम उसी संघ की आज्ञा पर अपनी ज़िंदगी को संघ के मनोरंजन में उत्सर्ग कर दें, तो इसमें अनौचित्य क्या है, आश्चर्य क्या है?

अंबपाली : क्या यह संघ की ज़बरदस्ती नहीं?

पुष्पगंधा : जिस दिन हम ज़िम्मेवारी को ज़बरदस्ती समझने लगेंगे, उसी दिन संघ का पूरा शीराज़ा बिखर जाएगा, *अंबपाली* ! वृज्जिसंघ हम सबको स्वतंत्रता की सुरक्षा प्रदान करता है। वृज्जिसंघ स्वाधीन नर-नारियों का संघ है, उसमें ज़बरदस्ती कहाँ ? हाँ, उनके द्वारा दी गई सुरक्षा और स्वाधीनता की भरपाई अगर हम अपनी ज़िम्मेवारी अच्छी तरह निभाकर करते हैं, तो, इसमें ज़बरदस्ती कहाँ है, अंबे ! याद रख, हम जिससे पाते हैं, उसे कुछ देना भी होता है।

अंबपाली : लेकिन, यह अजीब देन है। सर्वश्रेष्ठ सुंदरी और राजनर्तकी ? उफ़ ! *(उसासें लेती है।)*

पुष्पगंधा : अंबे ! ज़िंदगी की सार्थकता मनमाना जीना या लंबी आयु पाना नहीं है। ज़िंदगी की सार्थकला है किसी बड़े काम के लिए उत्सर्ग कर दिया जाना — फिर वह उत्सर्ग की हुई ज़िंदगी एक दिन की हो या सौ बरस की, वह खाँड़े की धार पर उतरे या चंदन की चिता पर चढ़े ! *(कहते-कहते उसका मुँह तमतमा जाता है; उसके चुप होते ही अजीब सन्नाटा छा जाता है।)*

अंबपाली : *(भयभीत-सी)* देवि !

पुष्पगंधा : *(जैसे उसकी आवाज़ सुनी ही न हो)* और एक बात ! तूने सौंदर्य का महत्त्व ही नहीं जाना !

अंबपाली : मैं यह सब झंझट क्या जानूँ, देवि !

पुष्पगंधा : झंझट नहीं है, तत्त्व है तत्त्व। दुनिया में तीन चीज़ों की आकांक्षा सबको होती है — धन की, ज्ञान की, सौंदर्य की। इनमें सौंदर्य की महिमा सबसे बड़ी है। एक गरीब आदमी परिश्रम और संचयवृत्ति से धनी बन सकता है, एक मूर्ख अध्ययन और अभ्यास से ज्ञान प्राप्त कर सकता है। लेकिन, लाख सिर पटककर भी कोई कुरूप सुंदर नहीं बन सकता। सौंदर्य सिर्फ़ विधाता के हाथों से गढ़ा जाता है — यह सोलह आने दैवी देन है। यह दैवी देन तुच्छ मानवीय कामनाओं की पूर्ति में

न व्यय होकर उच्च आदर्श की पूर्ति में लगे, इससे बढ़कर इसका क्या सदुपयोग हो सकता है, अंबे?

अंबपाली : तो आप राजनर्तकी की ज़िंदगी को उच्च आदर्श की पूर्ति मानती हैं?

पुष्पगंधा : ज़रा सोच तो, अपनी सभी व्यक्तिगत रुचियों, इच्छाओं, आकांक्षाओं को ठुकराकर, लात मारकर अपने-आपको संघ के प्रत्येक सदस्य के मनोरंजन के लिए अर्पित कर देना — अपने व्यक्ति को समष्टि में विलीन कर देना — इससे बढ़कर आदर्श की उच्चता एक सुंदरी नारी के लिए क्या हो सकती है? सुंदरी नारी — जिसका कदम-कदम डगमगाता है! वृज्जिसंघ की कुमारियाँ ही इतनी बड़ी साधना का साधन कर सकती है, अंबे!

अंबपाली : *(रुखाई से)* साधना का साधन या आत्मा का हनन?

पुष्पगंधा : शुरू में ऐसा ही भ्रम होता है। किंतु तथ्य यह है कि ज्यों ही हमने अपने को उनके लिए अर्पित कर दिया, हम उनके मनोरंजन की चीज़ नहीं रह जातीं, बल्कि वे ही अपने को हमारे मनोरंजन के साधन बना डालते हैं — हमें अपना सिर उनके निकट झुकाने की ज़रूरत नहीं होती, उन्हीं के हज़ार-हज़ार राजमुकुट हमारे चरणों की धूल चाटने लगते हैं! हम नारियों की भी एक महिमा है, यह क्यों भूल जाती है, भोली लड़की!

अंबपाली : *(दीर्घ उच्छ्वास के साथ, धीमे स्वर में)* आह, मेरा अरुण!

पुष्पगंधा : अरुण! अरुण भी तो वृज्जिसंघ का एक सदस्य है। कौन उसे तेरे पास आने से रोक सकता है? जा, तू जल्द प्रसाधन तो कर ले। चयनिके! *(पुकारती है।)*

[पुकार सुनकर परिचारिका शीघ्र उपस्थित होती है — उदास, अनमनी अंबपाली उसके साथ बँगले के भीतर जाती है — पुष्पगंधा सामने के उद्यान में घूमती है — रह-रहकर काँप उठती है — अंततः उसकी आँखों से आँसू झरने लगते हैं — क्यों? किसके लिए?]

5

[वेगवती नदी की पतली धारा संध्या की किरणों से रंगीन हो रही है — आनंदग्राम की नारियाँ घड़े लिए आती और जल ले जाती हैं — उनका आना-जाना लगा है —

सुमना घड़ा लिए आती दीखती है — उदास, उतरा हुआ, अनमना है उसका चेहरा —

आखिर घड़े में पानी लेकर जाना ही चाहती है कि मधूलिका कलसी लिए आती दिखाई पड़ती है — वह रुक जाती है — मधूलिका उसे देख लपककर पहुँचती और पूछती है —]

मधूलिका : मौसी, सुना, तुम फिर वैशाली गई थीं।

सुमना : हाँ, गई थी। अंबपाली ने रथ भेजा था।

मधूलिका : अब तो वह राजरानी हो गई, मौसी! तकदीर इसी को कहते हैं।

सुमना : लेकिन वह जो इसे तकदीर माने। कहती थी — मौसी, सुख-ऐश्वर्य से भरी यह वैशाली मुझे नहीं सुहाती; मेरा मन तो आनंदग्राम की आम्रवाटिका या वेगवती के तट पर ही चक्कर काटता रहता है! तुझे भी बुलाया है— एक दिन ज़रा हो आओ न मधु?

मधूलिका : मैं उस ओर पैर बढ़ाने की हिम्मत भी नहीं कर सकती, मौसी! सारी वैशाली स्वप्नपुरी-सी मालूम होती है। मैं हमेशा ही सपने से भागती रही हूँ। *(कुछ सोचकर)* अरुण की चर्चा करती थी?

सुमना : की थी; कई बार की। लेकिन मैं क्या बताती भला?

[दूर से आती वंशी की हृदयवेधक ध्वनि सुनाई पड़ती है — ध्वनि कानों में पड़ते ही मधूलिका सिहर उठती है — उसके चेहरे पर करुणा की छाया दौड़ जाती है — वह स्वर में विभोर-सी हो जाती है — सुमना का ध्यान भी उस ओर जाता है — वह घड़ा रख देती और सुनने लगती है— मधूलिका की कलसी आप ही कमर से खिसक जाती है — तब, जैसे चौंककर, वह कहती है —]

मधूलिका : यह अरुण की ही वंशी है, मौसी!

सुमना : पहचानती हूँ, मधु, पहचानती हूँ। इस वंशी को अब इस आनंदग्राम में कौन नहीं पहचानता?

[मालूम होता है, जैसे वंशी की ध्वनि निकट से निकटकर होती जाती है — बातचीत में गर्क होने पर भी दोनों इसको महसूस करती हैं — पहले मधु उस ओर नज़र करती है, फिर सुमना — दूर पर, नदी के कछार पकड़े, वंशी बजाता, आता हुआ अरुणध्वज दिखाई पड़ता है —]

मधूलिका : मौसी, वह, वही है न?

सुमना : हाँ, वही तो है।

मधूलिका : आज इधर कहाँ भटक पड़ा? मालूम होता है, शायद उसे खबर हो गई कि तुम वैशाली से लौट आई हो? *(सजल नेत्र और कातर वचन में)* देख तो, मौसी, इन तीन महीनों में ही वह क्या से क्या हो गया है!

सुमना : मधु! ऐसे मौकों पर छाती को कठोर बनाना पड़ता है, बेटी! चल, हम नदी के ऊपर चलें, कछार पर ही उससे मिलें।

[दोनों तट के ऊपर कछार पर आती हैं — सूरज डूबने जा रहा है — वह छोटा-सा बादल का टुकड़ा आधे आसमान को ढक चुका है — अरुण सिर नीचा किए पगडंडी पकड़े वंशी बजाता आ रहा है — उसकी दशा देख सुमना की आँखों में सावन-भादों उमड़ आते हैं — मधूलिका भर्राई आवाज़ में पुकारती है —]

मधूलिका : अरुण!

अरुणध्वज : *(सिर उठाकर दोनों को घूरता है, फिर बोलता है)* कौन? मौसी? प्रणाम, मौसी!

सुमना : अरुण, मैं वैशाली गई थी, अंबा तेरी याद करती थी।

अरुणध्वज : *(प्रश्नवाची स्वर में)* याद! करती थी? अंबा मुझे याद करती थी? क्यों मौसी?

सुमना : हाँ, हाँ, याद करती थी। बहुत याद करती थी। एक दिन जाओ न! मधूलिका को भी लेते जाना!

अरुणध्वज : *(करुणामय हँसी के साथ)* मधूलिका को लेते जाना! खूब! चल रे मधु, चल। वैशाली चल। चल रे, तुझे भी राजनर्तकी बना आऊँ। तू भी राजनर्तकी बनना; हज़ार-हज़ार राजकुमारों के मुकुटों को ठुकराना!! हाँ, हाँ, चल। कब चलती है, रे?

मधूलिका : *(आँचल से आँसू पोंछती)* मौसी!

सुमना : अरुण, यों होश मत खो!

अरुणध्वज : *(गंभीर होकर)* होश! मैं खोऊँगा? नहीं मौसी, मैं होश नहीं खो सकता। मैं होश खोऊँगा तो अंबा की याद कौन करेगा? नहीं-नहीं, मैं होश नहीं खो सकता। अच्छा, बता – अंबा कैसी है?

सुमना : *(बीच ही में बात काटकर)* यह तू क्या हुआ जा रहा है, बेटा?

अरुणध्वज : उस दिन माँ कह रही थी, तू क्या हुआ जा रहा है, बेटा? आज मौसी कह रही है, तू क्या हुआ जा रहा है बेटा? क्या मैं सचमुच कुछ हुआ जा रहा हूँ मौसी!

[तब तक चारों ओर छाए बादल में अचानक बिजली कौंध जाती है – फिर ज़ोरों से बादल गरज पड़ता है – अरुण आसमान की ओर देखता और 'मौसी, प्रणाम' *कहकर जिस रास्ते आया था, उसी से द्रुतपद भागता है – सुमना और मधूलिका विस्फारित नेत्रों से उसकी ओर देखती रह जाती हैं।]*

दूसरा अंक

1

[वैशाली का शरद उपवन — बीच में एक तालाब, जिसमें कुमुद के शत-शत फूल खिले हुए— तालाब से थोड़ा हटकर राजनर्तकी का शरद-प्रासाद — बिलकुल सफ़ेद, दूध का धोया-सा— उसका प्रतिबिंब तालाब में भी दिखाई पड़ता है —

प्रासाद की छत पर, खुले आसमान के नीचे, उजला दपादप फ़र्श बिछा — चारों ओर कुमुद के बंदनवार लटके — बंदनवार के बीच-बीच चाँदी के पिंजड़े टँगे, जिनमें खंजन खिलवाड़ कर रहे — फ़र्श के बीच में कुछ ऊँचा मंच, जिसका कारचोबी का काम चमचम कर रहा — मंच पर सोमरस से भरी चाँदी की सुराहियाँ और चुन्नी की प्यालियाँ रखी हैं —

छत पर परिचारिका के साथ अंबपाली आती है —

यह पाँच वर्ष पहले की अंबपाली नहीं रह गई है — तब वह किशोरी थी, अब युवती है— उसके अंग-अंग भर चुके हैं — चेहरे पर ओज है, पैरों में गंभीरता — सिर कहता है, आसमान मेरा; पैर कहते हैं, ज़मीन मेरी —

वह चाँद को एकटक निहारती है — फिर सारे आसमान का जैसे निरीक्षण कर जाती है— उसके बाद खंजन के एक पिंजड़े के निकट जाती और उसे हिला देती है — खंजन पंख फड़फड़ाने लगते हैं, वह मुसकराती है — पिंजड़े से हटकर वह फ़र्श के मंच पर जाती और मसनद से उठँगकर बैठती है — परिचारिका से कहती है —]

अंबपाली : चर्यानिके, थोड़ा सोमरस पिला।

[सुराहा से ढालकर चयनिका प्याली में उसे सोमरस देती है — कई प्यालियाँ गट-गट पी जाती है —फिर कहती है — 'अभी रहने दे' और चाँद की ओर देखती लेट जाती है — थोड़ी देर तक उसे देखते रहने के बाद चयनिका से पूछती है —]

चर्यानके, आदमी चाँदनी क्यों पसंद करता है, तू जानती है?

चयनिका : शायद इसलिए कि चाँद बहुत सुंदर है और 'सुंदरे किं न सुंदरम्'!

अंबपाली : खूब! 'सुंदरे किं न सुंदरम्'! लेकिन चाँद की सुंदरता का भंडा उसी दिन फूट गया, जब एक नारी के सौंदर्य पर मुग्ध हो, देवताओं के राजा समेत, वह ज़मीन पर उतरा और इनाम में अपने शरीर का यह काला धब्बा पाया। तूने अहल्या का नाम सुना है, चुन्नी?

चयनिका : वही न, जिनकी गिनती पंचकन्याओं में होती है?

अंबपाली : हाँ, वही। उन्होंने अपने सौंदर्य की महिमा से देवों को, देवराज को, ज़मीन पर उतरने को लाचार किया, हम नारियों की गरिमा बढ़ा दी, अभिशप्त होने पर भी पंचकन्याओं में उनकी पहली गिनती होती है, वह प्रातः स्मरणीया हैं। *(हाथ जोड़कर मन-ही-मन प्रणाम करती है)* चुन्नी, कुछ और तो अटकल लगा?

चयनिका : मेरी समझ में कुछ नहीं आता, आर्ये!

अंबपाली : नहीं आता? तो सुन। आदमी चाँदनी इसलिए पसंद करता है कि इसमें एक कुहेलिका है, प्रहेलिका है। सत्य के सीधे-सादे वास्तविक रूप से आदमी घबराता है। हमेशा देखोगी, विज्ञान की अपेक्षा आदमी कविता अधिक पसंद करता है।

चयनिका : कविता तो मुझे भी बहुत पसंद आती है, भद्रे!

अंबपाली : सभी को पसंद है। आदमी निखालिस चीज़ कभी नहीं पसंद करता। वह निखालिस न सत्य पसंद करता है, न असत्य; न ज्ञान पसंद करता है,

न अज्ञान। वह दोनों का सम्मिश्रण खोजता है। आदमी अंधकार नहीं पसंद करता, क्योंकि वह उससे डरता है। यों ही सूरज की रोशनी भी उसे पसंद नहीं, क्योंकि वह सब चीज़ों को उसके सामने नंगा-सा करके रख देती है। चाँदनी वह इसलिए पसंद करता है कि उसमें न तो अंधकारवाला डर है, न रोशनीवाला नंगापन!

[इसी समय दूसरी परिचारिका नीचे से आती है; कहती है —]

दू. परिचारिका : राजकुमार वसुबंधु चार-पाँच राजकुमारों के साथ पधारे हैं, आर्ये!

अंबपाली : *(अभिमान से ओतप्रोत; भौंहें चढ़ाकर)* कह दे, अभी ठहरें। और सुन,जब तक सब राजकुमार न आ जाएँ, उन्हें नीचे ही बैठाती जाना। जा —

[दूसरी परिचारिका जाती है।]

थोड़ा सोमरस ला, चुन्नी!

[चयनिका सोमरस देती जाती है, वह प्याली पर प्याली खाली करती जाती है — लगातार उसे यों पीते देखकर चयनिका भयभीत हो जाती है— उसके हाथ काँपने लगते हैं — सोमरस की कुछ बूँदें मंच पर छलक जाती हैं — अंबपाली इसे देखती है और कहती है —]

अरे, तेरे हाथ क्यों काँप रहे हैं रे! दे, दे। देती जा; देती जा। बड़ी अच्छी चीज़ है यह चयनिके! सब कुछ भुला देती है, आनंदलोक में पहुँचा देती है।

[नीचे से फिर परिचारिका आती है और अभिवादन कर कहती है—]

दू. परिचारिका : नीचे राजकुमारों का ठट्ठ जुटा है, भद्रे! वे कहते हैं, आज शरद-पूनो है, विलंब क्या उचित है?

अंबपाली : *(चयनिका से)* हाँ, हाँ, आज शरद-पूनो है रे। मैं यह भी भूली जा रही थी। आज ही कृष्ण ने लीला रचाई थी न! बीच में कृष्ण, चारों ओर गोपियाँ। नीचे जमुना कलकल कर रही, ऊपर चाँद हँस रहा। आज

अंबपाली भी रास रचाएगी; इस पूनो के चाँद के नीचे रस की यमुना बहाएगी। *(दूसरी परिचारिका से)* जा — उन्हें भेज।

[परिचारिका नीचे जाती है — राजकुमारों का ठट्ठ आने लगता है — चयनिका सुराही से सोमरस ढालती है — अंबपाली अपने हाथों से उन्हें सोमरस देती जाती है — उनके सोमरस पीने के बाद अंबपाली खड़ी होती है, अँगड़ाई लेती है, एक बार चाँद को देखती है, फिर गाने और नाचने लगती है —]

कह गई यह चाँदनी —
सो रही मैं आज उन्मन
बह रही थी पवन सनसन
अधर गुनगुन
चरण रुनझुन
स्वप्न की तसवीर-सी उतरी परी उन्मादिनी।
कौन थी, क्या चाँदनी?

[बीच-बीच में अंबपाली किसी राजकुमार का हाथ पकड़कर नाचने लगती है — वह निहाल हो उठता है, दूसरे की भवों पर बल पड़ जाते हैं — उसकी भावभंगी देख नाचती ही नाचती वह सोमरस की प्याली पर प्याली उन्हें देने लगती है — सब मस्त होकर नाचने लगते हैं — इस शरद में भी सबके चेहरे पर पसीने की बूँदें हैं — अंबपाली का चेहरा तारा-मंडित शरद-चंद्र-सा लग रहा है।]

2

[वैशाली में दूसरी बार भगवान बुद्‌ध देव पधारे हैं और अंबपाली की आम्रवाटिका में ठहरे हैं –

इस खबर से ही सारी वैशाली में हलचल मच जाती है और वहाँ के नागरिक और नागरिकाएँ अपने-अपने रथ सजाकर उस आम्रवाटिका की ओर चल पड़ते हैं –

अंबपाली को खबर होती है, वह भी अपने सजे-सजाए रथ पर चढ़कर चल पड़ती है –

आम्रवाटिका के द्‌वार पर रथ से उतर, अंबपाली अपनी परिचारिका चयनिका को बुद्‌ध देव के पास आज्ञा लाने भेजती है –

आम्रवाटिका के मध्य में भगवान बुद्‌ध शिष्यों के साथ विराजमान हैं – बीच में एक ऊँचा आसन है, जिस पर वह बैठे हैं – सिर, भवें, दाढ़ी, मूँछ सबके बाल मुड़े हुए – वह बिलकुल ध्यानमग्न हैं – उनकी बगल में उनके प्रधान शिष्य आनंद हैं और आसन के नीचे उनका शिष्य समूह – सबकी वेशभूषा बुद्‌ध की ही तरह की –

चयनिका को आते देख एक शिष्य बढ़ता और उसके हाथ का एक पुर्जा आनंद को लाकर देता है – पुर्जा पढ़कर, ध्यानस्थ बुद्‌ध जब आँखें खोलते हैं, तब आनंद उनसे कहते हैं –]

आनंद : भगवान, अंबपाली आपके दर्शन चाहती है।

भगवान बुद्‌ध : *(गंभीर भाव से)* अंबपाली?

आनंद : हाँ, भगवान, वैशाली की राजनर्तकी।

भगवान बुद्‌ध : धर्म का मार्ग सबके लिए खुला है, आनंद! *(चयनिका यह सुनती है और सिर झुकाकर चल देती है – उसके कुछ दूर निकल जाने के बाद)* लेकिन एक बात है आनंद! अंबपाली के बारे में मैंने जो कुछ सुन रखा है, मैं चाहता हूँ, उसके आने के पहले हमारे सभी शिष्य आँखें मूँद लें।

आनंद : *(विस्मित होकर)* आँखें मूँद लें?

भगवान बुद्ध : तुम्हें आश्चर्य हो रहा है, आनंद!

आनंद : भगवान, आश्चर्य होने की बात ही है। हम भिक्षु हैं, कोई आए, कोई जाए, हम पर उसका असर क्या हो? क्यों हो? भिक्षुओं के बारे में ऐसा सोचना क्या उन पर अविश्वास या उनका अपमान नहीं है? *(आनंद का चेहरा लाल हो उठता है।)*

भगवान बुद्ध : यहाँ अपमान और अविश्वास की कोई बात नहीं है, आनंद! हम तो धर्म के मध्यम मार्ग के अनुयायी हैं। आज भी मेरे कानों को निरंजना के तीर का वह स्वर्गिक गान नहीं भूलता — 'वीणा के तार को इतना मत ऐंठो कि वह टूट जाए, न इतना ढीला रखो कि शब्द ही न निकले!'

आनंद : लेकिन सम्यक् समाधि के बाद हममें इतनी साधना तो होनी चाहिए कि हमारा मन झकोरे. में भी मणिदीप-सा निर्धूम और एकरस बना रहे!

भगवान बुद्ध : तुमने ठीक कहा, आनंद! लेकिन एक बात हमें नहीं भूलनी है। हम बच्चों की तरह दीपशिखा को चमकता खिलौना समझकर उसके पकड़ने से कहीं अपना हाथ न जला लें।

आनंद : इसे स्पष्ट किया जाए, भगवान।

भगवान बुद्ध : सुनो, सौंदर्य अगर सच्चा सौंदर्य है, तो उसमें एक जादू होता है। जादू और कुछ नहीं, सम्मोहन है। जो सतत चेतन, हमेशा चौकस मन नहीं है उस पर सम्मोहन का असर होकर रहेगा; और कितने ऐसे सौभाग्यशाली हैं, जिन्होंने मन पर स्थायी लगाम दे रखी है? इसलिए ऐसे मौकों से बचकर ही रहना श्रेयस्कर है। अँधेरी रात में कभी साँप की आँखें तुमने देखी हैं? दीपशिखा-सी जलती वे सुंदर, मादक आँखें! उन आँखों से आँखें लड़ाना कोई बुद्धिमानी नहीं है, आनंद!

आनंद : लेकिन, इस तरह तथ्य से कब तक आँखें मूँदी जा सकती हैं, भगवान?

भगवान बुद्ध : तो, तुम तार को ऐंठते जाने वाली बात का समर्थन कर रहे हो। इसी ऐंठन में कितनी ऐसी वीणाएँ टूट गईं, जिनकी झंकार से संसार में न जाने कितने अधिक सुख का गुंजार हो पाता। प्राचीन काल में हमारे कुछ ऋषियों ने यही गलती की थी। तपस्या के झोंके में पहले तो तपते-तपते शरीर गला लिया, फिर उसके प्रतिक्रियास्वरूप एक रंभा, एक मेनका, एक उर्वशी की मुसकान पर सारी साधना की अंजलि चढ़ा दी। मध्यम मार्ग पकड़ो, आनंद, मध्यम मार्ग!

आनंद : भगवान की आज्ञा सिर आँखों पर। भिक्षुओ, आप आँखें मूँद लें।
[सभी भिक्षु आँखें मूँदते हैं — आनंद भी आँखें मूँद लेते हैं — भगवान बुद्ध आनंद को भी आँखें मूँदते देखकर कहते हैं —]

भगवान बुद्ध : तुम्हें इसकी ज़रूरत नहीं है, आनंद! आनंद तो बुद्ध की छाया है, जिसका बुद्ध पर असर नहीं हो सकता, उसका आनंद पर भी असर नहीं होगा!
[आनंद आँखें खोल देते हैं — दोनों दूर पर आती हुई अंबपाली को देखते हैं — भगवान बुद्ध कहते हैं —]
देखते हो, आनंद, यह रूप?

आनंद : सचमुच, भगवान, ऐसा रूप मैंने कहीं नहीं देखा था।

भगवान बुद्ध : यह अलौकिक रूप है! मुझे यह देखकर, आनंद, बुद्धत्व प्राप्ति वाले दिन के दृश्य याद आ रहे हैं, जब मार की प्रेरणा से ऐसी ही अनेक परियाँ मेरा तप भंग करने को मेरे निकट पधारी थीं।

आनंद : भगवान पर उनका क्या असर होता भला! यह मार का सरासर अविचार था।

[तब तक अंबपाली निकट आ जाती है – आसन के नीचे आकर, सिर झुका, भगवान का अभिवादन करती है – भगवान बुद्ध हाथ उठाकर आशीर्वाद देते हैं – अंबपाली घुटनों पर झुकी हाथ जोड़कर कहती है –]

अंबपाली : भगवान, मैं कृतार्थ हो गई। सारी वैशाली में भगवान को मेरी ही आम्र-वाटिका पसंद आई! आज मेरे सौभाग्य का क्या कहना!

आनंद : आर्ये, तथागत के धर्ममार्ग में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं है। उनके लिए सभी प्राणी समान हैं। रहा सौभाग्य! सो कोई किसी को देता नहीं, वह उसकी अपनी चीज़ होती है –

[भगवान बुद्ध सिर्फ़ मुसकराते रहते हैं।]

अंबपाली : भिक्षुवर, अंबपाली सौभाग्य पाती नहीं, लेती भी है। एक सौभाग्य अनायास मिला, तो दूसरा वह स्वयं लेने आई है।

आनंद : *(कुछ सावधान-सा होकर)* आपका मतलब?

अंबपाली : मैं भगवान को अपने घर भोजन करने को आमंत्रित करने आई हूँ।

आनंद : भिक्षु के लिए भोजन के आमंत्रण की आवश्यकता नहीं होती, आर्ये। वह अनिमंत्रित ही जाता है और जहाँ जो प्राप्त होता है, वहीं वह भोजन कर लेता है। यही नियम है।

अंबपाली : *(साधिकार)* नियम है, होगा। किंतु अंबपाली को विश्वास है, वह भगवान से जो वरदान माँगेगी, उसमें उसे 'नाहीं' नहीं मिल सकती।

[आनंद भगवान की ओर देखते हैं – भगवान मौन रह जाते हैं – लेकिन इस मौन से स्वीकृति स्पष्ट झलक रही है – अंबपाली का मस्तक कृतज्ञता से झुक जाता है – हाथ बढ़ाकर बुद्ध का चरण छूती है – चलने के लिए खड़ी होती हुई वह आनंद से कहती है –]

भिक्षुवर, अंबपाली अपनी ज़िंदगी में पहली बार, भगवान के लिए अपने हाथों रसोई बनाने जा रही है। क्या वह आशा कर सकती है; भगवान के साथ आप भी पधारेंगे?

आनंद : छाया शरीर को कैसे छोड़ सकती है, आर्ये!

[इधर बगीचे के फाटक पर कोलाहल बढ़ता जाता है – अंबपाली भगवान का अभिवादन कर चलती है – उसी समय फाटक की ओर से तुमुल जयनाद सुनाई पड़ता है, जो वृज्जिसंघ के महामात्य के आगमन का सूचक है – अंबपाली फिर अभिवादन कर वहाँ से चल देती है – वैशाली का एक नागरिक आता और आनंद के हाथों में वृज्जिसंघ के महामात्य का, आगमन के लिए आज्ञा चाहनेवाला, पुर्ज़ा रख देता है – भगवान बुद्ध का रुख देख स्वयं आनंद उनकी अगवानी के लिए जाते हैं –

महामात्य चेतक के नेतृत्व में वैशाली के नागरिकों और नागरिकाओं का झुंड आ रहा है – उन्हें देखकर भगवान बुद्ध भिक्षुओं को संबोधित करते हैं –]

भगवान बुद्ध : भिक्षुओ, आपमें से जिन भिक्षुओं ने कभी देवताओं की परिषद् नहीं देखी है, वे वृज्जियों की इस परिषद् को ध्यान से देखें, उनका निरीक्षण करें और इसी से देवताओं की परिषद् का अनुमान करें!

[उन्हें निकट आया देख भगवान बुद्ध उनके सम्मान में अपने आसन से खड़े हो जाते हैं – महामात्य चेतक और सभी नागरिक तथा नागरिकाएँ भगवान बुद्ध का अभिवादन करते हैं – फिर आनंद सबको सम्मान के साथ यथायोग्य आसन पर बिठलाते हैं – महामात्य भगवान बुद्ध से कहते हैं –]

महामात्य चेतक : भगवान, आपके शुभागमन से हमारा वृज्जिसंघ कृत-कृत्य हुआ, वैशाली पवित्र हुई। भगवान ने इस बार अनिमंत्रित ही पधारकर हमारे सौभाग्य को कितना बढ़ा दिया है!

भगवान बुद्ध : पहली बार मैं आपके निमंत्रण पर आया था। लेकिन एक बार यहाँ आने पर ही वैशाली मेरी अपनी नगरी हो चुकी; फिर, निमंत्रण की क्या ज़रूरत रही महामात्य? हाँ, इस बार मैं ही आपके नागरिकों को निमंत्रण देने आया हूँ!

महामात्य चेतक : भगवान का आमंत्रण! हमें लज्जित न करें, भगवान। हम आपके आमंत्रण के नहीं, आज्ञा के पात्र हैं! आपकी जो आज्ञा होगी, हम उसे सिर-आँखों पर लेंगे, भगवान!

भगवान बुद्ध : *(मुसकराते हुए)* नहीं-नहीं आमंत्रण ही। मैं आप लोगों को विजय का आमंत्रण देने आया हूँ।

महामात्य चेतक : *(आश्चर्य से)* आमंत्रण और विजय का? भगवान, हमारा संघ न किसी की विजय बर्दाश्त कर सकता है और न किसी की स्वतंत्रता पर हाथ उठाता है। विजय तो तुच्छ राजतंत्रवालों की घृणित आकांक्षा है। भगवान हमारी जाँच न करें; हमें धर्म का मार्ग बताएँ।

भगवान बुद्ध : *(गंभीर होकर)* जिस धर्म में विजय की आकांक्षा न हो, उसे धर्म मत समझो, वृज्जियो! धर्म के मानी ही हैं – अपने पर विजय प्राप्त करना, फिर संसार पर विजय प्राप्त करना।

महामात्य चेतक : अपने पर विजय तो समझा, किंतु संसार पर?

भगवान बुद्ध : हाँ, संसार पर। वह विजय क्या हुई, जो संसार पर न छाई? छोटे मन और संकुचित आकांक्षा को छोड़ो। अपना उद्देश्य महान करो, अपनी

दृष्टि ऊँची करो। फिर विजय-अभियान को निकलो — सारा संसार तुम्हारे पैरों पर आप आ झुकेगा!

महामात्य चेतक : यह विजय-अभियान हमारी समझ में नहीं आता, भगवान!

भगवान बुद्ध : समझ में नहीं आता? *(कुछ देर ध्यानस्थ होकर)* अभी शायद वक्त नहीं आया है, महामात्य! अभी तो विजय के मानी है हत्या, हिंसा, रक्तस्नान, अग्निकांड, क्रंदन, आर्तनाद। यह विजय है, या विनाश? मैं जिस विजय की कल्पना करता हूँ और जिसके अभियान के लिए सबको आमंत्रित कर रहा हूँ, वही यथार्थ विजय होगी, वृज्जियो! इस विजय-अभियान के सैनिकों के हाथों में फौलाद की तलवार या गैंडे की खाल की ढाल के बदले एक हाथ में तालपत्र पर लिखी कुछ पोथियाँ होंगी और दूसरे में भिक्षा-पात्र होगा। उनके शरीर पर ज़िरहबख्तर न होकर *(अपने लबादे की ओर इशारा करके)* टुकड़े-टुकड़े चीथड़ों से बने, मिट्टी के रंग में रँगे, पीले वस्त्र होंगे और उनके मुँह से दानवी जयनाद नहीं, विश्व कल्याणकारी श्रुति-मधुर पूत मंत्र निकलकर दिग्दिगंत को मुखरित करेंगे। मैं कल्पना की आँखों से देख रहा हूँ, हमारे ये सैनिक हिमाचल के दुर्दम शिखरों को रौंदते, समुद्र की उत्ताल तरंगों को कुचलते, उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम, चारों ओर फैल रहे हैं और ये जहाँ जाते हैं, उनका मुकाबला न होकर स्वागत हो रहा है और वे देश पर देश विजय करते जा रहे हैं!

[कहते-कहते बिलकुल ध्यानमग्न हो जाते हैं और उनके चेहरे से आभा निकलने लगती है।]

महामात्य चेतक : *(दीप्ति के आगे सिर झुकाते)* भगवान की कल्पना सत्य होगी, क्या इसमें किसी को कोई संदेह हो सकता है? और इस विजय में हम वृज्जि

भी अपना योग्य हिस्सा लेंगे – हमारी वैशाली अपना अर्घ्य अर्पित करने में पीछे नहीं रहेगी, भगवान इस पर विश्वास रखें।

भगवान बुद्ध : वृज्जिसंघ तथागत को कितना प्रिय है, क्या वह सिर्फ़ शब्दों में कहा जा सकता है? तथागत के धर्मसंघ के विधान का आधार तो संघराज्य से ही लिया गया है। वृज्जि इस धर्म-विजय में योग्य हिस्सा लेंगे और वैशाली? मैं देख रहा हूँ, जब तथागत के धर्ममार्ग पर कोई विवाद उठ खड़ा होगा, उसके निबटारे का सौभाग्य वैशाली को ही प्राप्त होगा; और जब युगों के थपेड़ों ने इस महान नगरी के धुर्रे उड़ा दिए होंगे, तब भी इसकी मिट्टी के दर्शन के लिए जंबूद्वीप के कोने-कोने से लोग आएँगे!

[वैशाली की इस महिमा को भगवान बुद्ध के मुँह से सुनकर सभी वृज्जि पुलकित हो जाते हैं। गद्गद कंठ से महामात्य चेतक कहते हैं–]

महामात्य चेतक : भगवान का आशीर्वाद हमारा सौभाग्य है। हम वृज्जि भगवान के चिर-अनुगृहीत हैं। हम इस आशीर्वाद योग्य पात्र सिद्ध हों, यही हमारी आकांक्षा है। *(अभिवादन करते हैं)* खैर, अब एक निवेदन है।

भगवान बुद्ध : बोलिए, महामात्य।

महामात्य चेतक : मैं संघ की ओर से भगवान को अतिथि-आवास में चलने और संघ का आतिथ्य स्वीकार करने का निमंत्रण दे रहा हूँ।

भगवान बुद्ध : संघ का निमंत्रण तो हमेशा ही स्वीकृत है। किंतु क्या संघ अपनी एक नागरिका के आमंत्रण का अपमान होने देगा?

महामात्य चेतक : नागरिका? आमंत्रण?

भगवान बुद्ध : अभी-अभी आर्या अंबपाली आई थीं और वह निमंत्रण की स्वीकृति भी ले चुकीं।

महामात्य चेतक : *(ज़रा मुसकराहट में)* ओहो, अंबा ने हमें हरा दिया।

भगवान बुद्ध : अंबपाली साधारण नारी नहीं है, महामात्य। वैशाली की कीर्ति में अंबा की कीर्ति चार चाँद लगा देगी, ऐसा मुझे स्पष्ट भास रहा है।

[सभी नागरिक भगवान के मुँह से अंबपाली की यह प्रशस्ति सुनकर आश्चर्यचकित रह जाते हैं — एक-दूसरे का मुँह देखने लगते हैं — महामात्य चेतक भगवान बुद्ध का अभिवादन करके सभी नागरिकों के साथ प्रस्थान करते हैं।]

3

[अबंपाली के विलास-भवन का शृंगारकक्ष — उसकी परिचारिका चयनिका कमरे में आती है—उसकी आहट सुन वह उसकी ओर मुड़ती और पूछती है—]

अबंपाली : क्या है चुन्नी?

चयनिका : आपने अभी तक प्रसाधन नहीं किया?

अंबपाली : न किया, न करूँगी।

चयनिका : हाँ, भगवान बुद्ध के जाने से हम सबका चित्त आज खिन्न है।

अंबपाली : तेरा चित्त भी?

चयनिका : भला!

अंबपाली : क्यों खिन्न है, रे?

चयनिका : क्यों न खिन्न हो, आर्ये? इन दिनों कैसी धूमधाम रही यहाँ!

अंबपाली : तुझे भगवान के प्रवचन अच्छे लगे?

चयनिका : तो भला!

अंबपाली : तब तू बूढ़ी हो चली!

चयनिका : *(चौंककर)* मैं बूढ़ी?

अंबपाली : हाँ, हाँ, बूढ़ी।

चयनिका : छी, छी, यह क्या कहती हैं भद्रे? मैं बूढ़ी नहीं हूँ।

अंबपाली : चुन्नी, जब मन में शृंगार की जगह विराग ले ले, खेल-तमाशे के बदले भजन-ध्यान अच्छा लगे, भीड़ से घबराकर जब आदमी एकांत खोजे, रंग-बिरंगे पट की जगह जब सादा श्वेत वस्त्र भाए, तब जान लो, आदमी ने कफ़न की ओर पैर बढ़ा दिए।

चयनिका : कफ़न की ओर? मैं अभी मरना नहीं चाहती, आर्ये।

अंबपाली : मरना नहीं चाहती है, तो जीना सीख। जीना भी एक कला है, चयनिके! कुछ लोग ज़िंदा भी मरे हुए हैं, कुछ मरकर भी ज़िंदा रहेंगे।

चयनिका : कुछ मरकर भी ज़िंदा रहेंगे, जैसे भगवान बुद्ध। क्यों भद्रे?

अंबपाली : और अंबपाली भी!

चयनिका : *(आश्चर्य से आँखें फाड़ती अंबपाली की ओर देखती है।)*

अंबपाली : *(हँसती हुई)* हाँ, हाँ, अंबपाली भी। और दो अमरों में जब युद्ध होता है, वह कैसा भयानक दृश्य होता है, तूने देखा है रे?

चयनिका : *(घबराई हुई)* युद्ध?

अंबपाली : हाँ, जब अंबपाली और भगवान बुद्ध में युद्ध हुआ।

चयनिका : आपमें और भगवान में युद्ध?

अंबपाली : तू कैसी अंधी है रे, कुछ देखा ही नहीं? कई दिनों तक यह युद्ध चलता रहा है, कई दिनों तक दोनों ओर से अस्त्र चलते रहे हैं।

चयनिका : आप यह क्या कह रही हैं भद्रे? भगवान बुद्ध और अस्त्र?

अंबपाली : अगर भगवान बुद्ध के पास अस्त्र नहीं है, तो वे विजयी कैसे होते हैं? कैसे भरतखंड में उनका दिग्विजय का डंका बजता जा रहा है? और क्या बिना अस्त्र के ही अंबपाली ने वृज्जिसंघ पर विजय प्राप्त की है?

चयनिका : अच्छा, तो इस युद्ध में हुआ क्या?

अंबपाली : हुआ यही कि न भगवान मुझे पराजित कर सके, न मैं उन्हें पराजित कर सकी!

चयनिका : तो आप भगवान को पराजित करना चाहती थीं?

अंबपाली : ज़रूर। हर आदमी, जिसमें कुछ कस-बल होता है, दूसरे को पराजित करना चाहता है। जिसमें जय की भावना न हो, समझ, उसमें कुछ है ही नहीं।

चयनिका : देवि, आप विचित्र नारी हैं। *(वह काँप उठती है।)*

अंबपाली : भगवान ने भी यही कहा था।

चयनिका : भगवान ने?

अंबपाली : तूने अंबपाली को क्या समझा है रे! महान ही महान की महत्ता समझता है -- अंबपाली को भगवान ने ही पहचाना! *(वह आत्मगौरव में फूल-सी उठती है।)*

चयनिका : मैं इन बातों को क्या समझूँ! खैर, देर हो रही है, आप प्रसाधन कर लें।

अंबपाली : प्रसाधन नहीं करूँगी, यह तुझे पहले ही कह दिया है न ।

चयनिका : तो प्रसाधन क्यों नहीं करेंगी?

अंबपाली : क्योंकि इन प्रसाधनों की व्यर्थता तो कम-से-कम मालूम ही हो गई! जो अस्त्र विजय न दिलाए, वह भाड़ में जाए। चयनिके, इन कुछ दिनों में प्रसाधन का एक भी साधन मैंने नहीं छोड़ा, लेकिन उफ़.. *(उसाँसें लेती है।)*

चयनिका : भद्रे!

अंबपाली : *(अचानक उसकी आवाज़ भर्रा जाती है, चेहरे पर विषाद की रेखाएँ खिंच आती हैं)* चयनिके, आह! तू मेरी अंतर्व्यथा का अनुभव कर पाती! अंबपाली ने सोच रखा था, उसके अस्त्र अमोघ हैं, वह सब पर

विजय प्राप्त कर सकती है। उसने अपने को दीपशिखा समझा था, जिस पर हर पुरुष को पतंग बनकर गिरना ही पड़ेगा। लेकिन, यह क्या हुआ? जब-जब वह उनके नज़दीक गई, उसने पाया, उनके ज्योतिर्मंडल के भीतर पहुँचते ही मानो उसकी शिखा लुप्त हो गई, वह ठंडी पड़ गई, देखते-देखते बरफ़ बन गई। फिर, उस ज्योति की गरमी से, उसने महसूस किया, बरफ़ बनी वह पिघल रही है, पानी-पानी हो रही है। चयनिके! जो कोई भी उनके नज़दीक जाएगा, वह उनमें अपने को, अपने 'आपा' को खोए बिना नहीं रह सकता।

चयनिका : आप सच कह रही हैं, आर्ये!

अंबपाली : लेकिन अंबपाली इतने सस्ते नहीं हार मान सकती थी। ज्यों ही गरमी का असर होते देखती, वह वहाँ से भाग आती।

चयनिका : तो पराजय नहीं, पलायन तो हुआ!

अंबपाली : हाँ, पलायन हुआ! अंबपाली को इसके लिए लज्जा भी है। लेकिन यह पलायन उसने पराजय के प्रतिकार के लिए स्वीकार किया है। विजय को ध्यान में रखकर जो मौके पर पीछे हट जाते हैं, उनका पलायन पलायन नहीं है चयनिके! अंबपाली तब तक चैन नहीं लेगी, जब तक वह भगवान बुद्ध पर विजय नहीं प्राप्त कर लेती।

चयनिका : भगवान बुद्ध पर विजय? जिसे मार नहीं हरा सका !

अंबपाली : मार नहीं हरा सका, न हरा सकता था। आँधी, तूफ़ान, अजगर, शेर — और, जब इनसे भयभीत विचलित न हों, तो अप्सराएँ, परियाँ — नहीं-नहीं, इन अस्त्रों से मार बुद्ध को नहीं हरा सकता था। ये उतने ही व्यर्थ हैं, जितने अंबपाली के पिछले प्रसाधन।

चयनिका : तब?

अंबपाली : तब अंबपाली को विश्वास है, वह उन अस्त्रों को खोज सकेगी, जिनसे वह भगवान बुद्ध को पराजित कर दे। मैंने भगवान से कह दिया है।

चयनिका : *(आश्चर्य की अधिकता में चिल्लाती-सी)* कह दिया है!

अंबपाली : हाँ, कह दिया है! सुनकर वह मुसकराए, बोले — राजनर्तकी, वह दिन तथागत के लिए धन्य होगा, जब एक नारी यह समझ ले कि उसने उन पर विजय प्राप्त कर ली। *(मुसकराती है।)*

4

[वैशाली का पार्श्वभाग — राजपथ से दूर फैला एक विस्तृत मैदान — मैदान के बीच एक मौलसिरी का सघन पेड़ — पेड़ के नीचे चबूतरा बना — चबूतरे पर पेड़ के तने से पीठ टेके अरुणध्वज वंशी बजा रहा है — वह बहुत दुबला हो चला है, काला पड़ गया है — उसके रूखे बेतरतीब बाल उड़ रहे हैं —

चबूतरे की दूसरी ओर मधूलिका बैठी तागे से कुछ बुन रही है — उसके सूखे, भर्राए चेहरे पर आँसुओं की सूखी रेखाएँ और दाग स्पष्ट हैं —

गरमी के दिन हैं, शाम का वक्त — एक युवती और दो नागरिक उस ओर से पगडंडी पकड़े गुजरते हैं — वंशी की आवाज़ से खिंचकर, धीरे-धीरे वे उस पेड़ के निकट पहुँचते हैं— अरुण इन लोगों की ओर से लापरवाह अपने में तल्लीन, वंशी बजाता जाता है — थोड़ी देर में उसकी वंशी रुक जाती है —]

एक नागरिक : क्यों भई, बंद क्यों कर दिया? थोड़ा और बजाओ। *(अरुण उन्हें घूर-घूरकर देखता रह जाता है —)*
थोड़ा और बजाओ, भाई!

दूसरा नागरिक : कैसी करुण रागिनी! मैंने ऐसी वंशी आज तक नहीं सुनी थी।

अरुणध्वज : यह आपकी चापलूसी है या दिल्लगी?

पहला नागरिक : वैशाली के नागरिक न चाटुकार होते हैं, न अशिष्ट।

दूसरा नागरिक : हमें अपनी कला-मर्मज्ञता पर नाज़ है, युवक। सचमुच तुम अपूर्व बजाते हो!

अरुणध्वज : अपूर्व!

दूसरा नागरिक : हाँ, हाँ, अपूर्व!!

अरुणध्वज : *(मुसकराता)* ओहो, मैं अपूर्व बजाता हूँ! बजाऊँ?

दोनों नागरिक : ज़रूर, ज़रूर!

[अरुण वंशी बजाने लगता है — युवती और दोनों नागरिक मुग्ध होकर वंशी सुनते जाते हैं —

वंशी की कोमल काकली को दबोचती-सी रथ की घर्र-घर्र आवाज़ सुनाई पड़ती है — सबका ध्यान सुदूर राजपथ पर जाता है — मीनकेतन-पताका को देखकर एक नागरिक कहता है — 'ओहो, देवी अंबपाली का रथ है' *— अंबपाली का नाम सुनते ही अरुण चौंककर उठ खड़ा होता और वंशी पटक उस ओर भागता है — मधूलिका उसके पीछे लगती है — युवती और दोनों नागरिक वहाँ से आश्चर्यचकित हो चल देते हैं —*

थोड़ी देर में अरुण को पकड़े मधूलिका वहाँ आती है — दोनों चबूतरे पर बैठ जाते हैं।]

मधूलिका : अब वैशाली छोड़ो, घर चलो।

[अरुण कुछ नहीं बोलता — कातर दृष्टि से मधूलिका का मुँह देखता रहता है।]

मैंने क्या कहा, सुना? घर चलो, वैशाली छोड़ो।

अरुणध्वज : *(भर्राई आवाज़ में)* 'वैशाली छोड़ो' 'घर चलो' — हमारा घर कहाँ है, मधु?

मधूलिका : *(आँचल से आँसू पोंछती)* नहीं-नहीं, अब वैशाली छोड़ना होगा।

अरुणध्वज : 'वैशाली छोड़ना होगा!' *(कुछ याद करता-सा)* क्यों मधु, क्या यह वैशाली है?

मधूलिका : तो क्या यह आनंदग्राम है?

अरुणध्वज : *(उसकी आँखें चमक उठती है)* आनंदग्राम! हमारा आनंदग्राम! वह वेगवती का कलकल, वह आम्रवाटिका में पंछियों का कलरव! हाँ, हाँ, चल, रे मधु, चल। आम की डाल में झूला डालेंगे, खूब झूलेंगे — मैं झूलूँगा, तू झूलेगी, अंबा झूलेगी। *(अपने ही मुँह से अचानक निकले 'अंबा' शब्द से विक्षिप्त-सा होकर)* अंबा! अंबा! अंबा किधर गई, मधु? उफ़! *(झटपट खड़ा हो जाता और चारों ओर भौंचक देखता है।)*

मधूलिका : *(रोती हुई)* तुम होश नहीं करोगे?

अरुणध्वज : होश! क्या मैं होश में नहीं हूँ, मधु? सच? मैं होश में नहीं हूँ?

मधूलिका : मैं अब ज़हर खाके रहूँगी!

अरुणध्वज : *(आँखें फाड़ता-सा)* ज़हर खा लेगी?

मधूलिका : *(रुखाई से)* हाँ, ज़हर खा लूँगी, मर जाऊँगी, झंझट खत्म! मुझसे यह सब नहीं देखा जाता।

अरुणध्वज : *(कुछ सँभलता-सा करुण भाव से)* ज़हर खा लेगी, मर जाएगी? तू मर जाएगी, तो मेरा क्या होगा, मधु? मुझे कौन देखेगा? उफ़ मैं होश में नहीं रहता! तू मत मर मधु! तू ज़हर मत खा मेरी मधु...

मधूलिका : दूसरा चारा क्या है, तुम कुछ सुनते ही नहीं?

अरुणध्वज : सुनता नहीं हूँ, यह मत कह मधु। देखा नहीं, अभी किस तरह रथ का घर्र-घर्र सुन लिया और सुन लिया उस नागरिक का कहना कि देवी अंबा...

मधूलिका : और अंबपाली का नाम सुनते ही दौड़ पड़े पागल की तरह। उन लोगों ने क्या समझा होगा भला?

अरुणध्वज : क्या समझा होगा रे?

मधूलिका : समझा होगा कि हम लोगों का अंबपाली से कुछ-न-कुछ सरोकार ज़रूर है। ज़रूर कोई रहस्य की बात है!

अरुणध्वज : *(कातर भाव से)* तो क्या अंबपाली से हमारा कोई सरोकार नहीं है?

मधूलिका : *(दृढ़ता से)* कभी था, अब नहीं है!

अरुणध्वज : *(उत्तेजित होकर)* नहीं है! सरोकार नहीं है! अंबपाली से सरोकार नहीं है! अंबपाली से सरोकार नहीं है! यह तू क्या कह रही है, मधु? अंबपाली से सरोकार नहीं – उफ़, अंबे...

[वह पागल-सा चिल्लाता है – मधूलिका उसके मुँह पर हाथ रख देती है – मुँह पर हाथ रखे जाते ही वह चिल्लाना तो बंद कर देता है, लेकिन उसकी आँखों से अजस्र अश्रुपात होने लगता है – मधूलिका की आँखों से भी आँसू झरने लगते हैं – फिर मधूलिका कहती है –]

मधूलिका : यह क्या कर रहे हो, अरुण?

अरुणध्वज : यह क्या कर रहा हूँ, मधु! आह! मैं क्या कर दिया करता हूँ मधु? मधु, यह मुझे क्या हो जाता है, रे। ओह!

मधूलिका : प्रेम के मानी अमर्यादा नहीं है अरुण! कृष्ण और राधा को देखो। गोकुल और मथुरा में कितनी दूरी थी? एक योजन से भी कम! क्या राधा वहाँ नहीं जा सकती थी? लेकिन, वह नहीं गई! अपनी ओर से एक दूत भी नहीं भेजा! क्यों?

अरुणध्वज : क्यों?

मधूलिका : क्योंकि वह जानती थी कि कृष्ण की हैसियत बदल गई है। वह जिस स्थान पर बैठे हैं, उस स्थान के उपयुक्त एक गोपी का प्रेम नहीं। राधा ने प्रेम नहीं छोड़ा, तो मर्यादा भी नहीं छोड़ी। रोती रही, तड़पती रही, बिसूर-बिसूरकर जवानी गँवा दी, आँसुओं की बाढ़ में ज़िंदगी बहा दी;

लेकिन कृष्ण के पास एक पाती नहीं भेजी। हाँ, जब कृष्ण ने उद्धव को भेजा, तो उनका सखा जानकर, जो कुछ कहना था, उसी से कहा। मर्यादा इसको कहते हैं – प्रेम की महिमा यह है। और तुम? तुम तो पागल बने बैठे हो! दौड़कर यहाँ पहुँचे और अब यहाँ से खुराफ़ातें!

अरुणध्वज : *(संजीदा होकर)* खुराफ़ातें – हाँ, हाँ मधु, मैं खुराफ़ातें करता रहता हूँ – उफ़!

मधूलिका : तुम्हीं सोचो न, यह खुराफ़ात नहीं तो क्या है? यहाँ आए; अच्छा। जब-तब उसकी झलक देख लिया करते हो, यह भी सही! लेकिन, यों दौड़ पड़ना, चिल्ला उठना – क्या अंबा या तुम्हारे किसी के लिए शोभन है? अब अंबा राजनर्तकी है, उसकी एक मर्यादा है। उस मर्यादा की रक्षा करना क्या तुम्हारा कर्तव्य नहीं?

अरुणध्वज : मधु, मधु!

मधूलिका : मधु, मधु क्या? तुम ठीक से रहो। अपने होश पर काबू करो और अपनी सारी वेदना, सारी व्याकुलता को इसी वंशी की तान में घोल दो। वेदना जब संगीत बन जाए, व्यथा जब रागिनी का रूप धारण करे, प्रेम की सार्थकता तब सिद्ध होती है, अरुण!

अरुणध्वज : 'वेदना जब संगीत बन जाए, व्यथा जब रागिणी का रूप धारण करे, प्रेम की सार्थकता तब सिद्ध होती है!' ठीक, ठीक, मैं न अब चिल्लाऊँगा, न दौड़ूँगा, सिर्फ़ वंशी बजाऊँगा! सिर्फ़ वंशी बजाऊँगा! लेकिन, तब तू ज़हर नहीं खाएगी न मधु! *(मधूलिका की आँखों से आँसू गिरते देख)* तू फिर रो रही है?

मधूलिका : हाँ, रो रही हूँ। *(आँसू पोंछते)* मर्द जब गम में होता है, वंशी बजाता है; नारी जब गम में होती है, आँसू बहाती है।

अरुणध्वज : नारी जब गम में होती है, आँसू बहाती है। मधु, क्या अंबा भी रोती होगी?

मधूलिका : उसमें जो नारी है वह ज़रूर रोती होगी, ज़ार-ज़ार आँसू बहाती होगी। किंतु, वह बेचारी तो राजनर्तकी की मर्यादा में बँधी है न? उसका दिल भले ही रोए, उसका हृदय भले ही हाहाकार करे, किंतु उसे अपने चेहरे पर हँसी ही रखनी है, अपने मुँह से फूल ही बरसाने हैं। हम-तुम तो, अपनी पीड़ा को रो-गाकर कम कर लेते हैं, लेकिन, सोचो तो उसकी हालत – भीतर रोना, बाहर हँसना!

अरुणध्वज : भीतर रोना, बाहर हँसना? सचमुच यह अजीब बात है मधु!

मधूलिका : अजीब ही नहीं, अलौकिक! इसे सिर्फ़ अंबा – ऐसी असाधारण नारियाँ ही निभा सकती हैं! *(करुणा-भरी मुसकान के साथ)* कैसी अद्‌भुत घटना! एक ही गम के तीन रूप – तुम बजाओ, मैं रोऊँ और अंबा हँसे!

तीसरा अंक

1

[राजगृह – चारों ओर पर्वतश्रेणियाँ – पर्वतश्रेणियों के बीच बसा राजगृह का विशाल नगर –

नगर के बीच मगध का राजप्रासाद – भव्य, दिव्य, विस्तृत विशाल – प्रासाद की आखिरी मंज़िल पर अजातशत्रु का एकांत कक्ष – जब से वह बौद्ध हुआ है, इसी हिस्से में वह राजकाज के बाद रहता है – यहाँ से गृध्रकूट-शिखर स्पष्ट दिखाई पड़ता है, जहाँ भगवान बुद्ध राजगृह आने पर ठहरते हैं –

कक्ष के सामने की छत पर वह व्याकुल होकर टहल रहा है –

बार-बार उसकी नज़र गृध्रकूट की ओर जाती है – फिर गृध्रकूट से हटते ही उसकी नज़र उसके हाथ में रखी, तलहथी के आकार की हाथीदाँत पर बनी तसवीर पर जाती है – तसवीर देखते ही साँस ज़ोर से चलने लगती है – पैर तेज़ी से उठने लगते –

उसका उपमंत्री, सुनीध, उस समय नीचे से छत पर आता है – यह अजातशत्रु का उपमंत्री ही नहीं, उसका प्रिय सखा भी है – दोनों लँगोटिया यार, आपस में कोई दुराव नहीं – सुनीध कुछ देर तक अजातशत्रु की यह भावभंगिमा देखता है, फिर बोलता है –]

सुनीध : यह क्या हो रहा है, सम्राट! एक बार गृध्रकूट को देखना, फिर तलहथी की ओर टकटकी लगाना। किसी ज्योतिषी ने क्या फिर कोई नई भाग्यरेखा बताई है?

अजातशत्रु : *(मुड़कर)* ओहो, सुनीध! भले आए। नई भाग्यरेखा नहीं, यह देखो! *(तसवीर दिखाता है।)*

सुनीध : यह तो अंबपाली है!

अजातशत्रु : तुमने कैसे पहचाना?

सुनीध : अगर इतनी जानकारी न रखूँ, तो सम्राट के मंत्रित्व की ज़िम्मेवारी कैसे निभा सकूँगा! जिसने हमारे पुराने शत्रु लिच्छवियों और विदेहों पर जादू डाल रखा है, जिसे पाकर सारा वृज्जिसंघ अपनी वैशाली को अलका की प्रतिद्वंद्विनि मानने लगा है, उसे मैं न पहचानूँ?

अजातशत्रु : अपूर्व सुंदरी है यह, सुनीध! वृज्जियों को इस पर घमंड करने का पूरा हक है।

सुनीध : गंगा के उस पार की भूमि में ही कुछ ऐसी खूबी मालूम पड़ती है सम्राट! सीता, उर्मिला, अहल्या, अंबपाली – एक-से-एक रूप-गुणवती नारियाँ वहाँ पैदा होती आई हैं! स्वयं सम्राट अपनी मातृश्री की याद करें – सम्राज्ञी देवी चेल्लना का वह दिव्य रूप, अलौकिक सौंदर्य, अपूर्व तेज...
[अपनी माँ की इस चर्चा से ही अजातशत्रु व्याकुल हो जाता है – यहाँ इस ी चर्चा क आवश्यकता नहीं कि उसने अपने पिता को कैद कर लिया था और उसकी माँ, बेटे की इस क्रूरता पर तड़प-तड़पकर मर गई थी –]

अजातशत्रु : *(बीच ही में रोककर)* बस, बस, तुम फिर भूल कर रहे हो, सुनीध! मैंने बार-बार मना किया, माता-पिता की याद मुझे मत दिलाओ। मेरी कोई माता नहीं, कोई पिता नहीं। मैं आदमी नहीं, उल्का हूँ – आप-से-आप आसमान से गिरा हूँ – खुद जल रहा हूँ, दूसरों को जलाता हूँ, जलाऊँगा! *(दीर्घ उच्छ्वास लेकर घूमने लगता है।)*

सुनीध : *(उसके नज़दीक जाकर)* क्षमा कीजिए, सम्राट!

अजातशत्रु : सुनीध, मैं तुम्हारी योग्यता का कायल हूँ, तुम्हारे जैसे सखा पर मुझे नाज़ है। लेकिन याद रखो, इस गलती का दुहराना मैं नहीं बर्दाश्त कर सकता। समझे?

सुनीध : सम्राट ! *(सिर झुकाता है।)*

अजातशत्रु : *(शांत होकर)* अच्छा, तुमसे एक मर्म की बात कहनी है, सुनीध।

सुनीध : कहने की ज़रूरत नहीं, सम्राट। क्या मगधपति की मुखाकृति की रेखाएँ ही पुकार-पुकारकर उनके मर्म के अंतर्द्वंद्व की घोषणा नहीं कर रहीं? लेकिन —

अजातशत्रु : लेकिन क्या?

सुनीध : धृष्टता के लिए फिर क्षमा चाहते हुए निवेदन यह है सम्राट कि मगधराज के लिए क्या यह शोभनीय है कि उनका दिल ऐसा कच्चा महल हो जो उनके शत्रुओं की एक सुंदरी के रूप-जादू से घरौंदा-सा भहरा पड़े।

अजातशत्रु : *(मुसकराते हुए)* घरौंदा-सा भहरा पड़े! तुम्हें सावधान करने का अधिकार है, सुनीध! *(अचानक गंभीर होकर)* लेकिन, तुमसे छिपाना क्या है? आज तक मैं अपने को पहचान नहीं सका। एक अजीब उच्छृंखलता मेरे मन में घर किए हुए है जो रह-रहकर यों उभड़ती है कि... *(अपने दाहिने हाथ से बाएँ पंजे को ज़ोर से मरोड़ता है।)*

सुनीध : बड़ों में मन की यह चंचलता क्या वांछनीय है, सम्राट?

अजातशत्रु : चंचलता? इतना छोटा-सा नाम इसे मत दो, मेरे प्रिय सखा! जिसके वश होकर मैंने पिता से विद्रोह किया, उन्हें बंदी बनाया, पितृहंता कहलाया, तड़प-तड़प माताजी मरीं, हज़ारों नर-नारियों की निर्मम हत्या कराई, और आज भी नहीं कह सकता कि मुझसे कब, कहाँ, क्या हो जाएगा— उसे तुम सिर्फ़ चंचलता नहीं कह सकते।

[गृध्रकूट की ओर टकटकी लगाकर देखता, कुछ मन-ही-मन पढ़ता और सिर नवाता है।]

सुनीध : ठीक, सम्राट, ठीक। ऐसे मौकों पर भगवान बुद्ध...

अजातशत्रु : *(बीच ही में रोककर)* भगवान बुद्ध? सुनीध, सोचा था, भगवान बुद्ध की शरण में आने पर इस उच्छृंखलता पर विजय प्राप्त करूँगा। चेष्टाएँ

कीं और सफलता भी मिल रही थी। अपने पर बहुत कुछ काबू कर लिया था। लेकिन इस छोटी-सी तसवीर ने सारा किया-कराया बंटाढार कर दिया!

सुनीध : इसका प्रतिकार सहज है। मन को कड़ा कीजिए। इस तसवीर को फेंक दीजिए, तोड़ दीजिए, जला दीजिए। आपसे नहीं होता, तो लाइए इधर। *(हाथ बढ़ाता है।)*

अजातशत्रु : *(मुसकराता हुआ)* कैसा सहज प्रतिकार! फेंक दीजिए, तोड़ दीजिए, जला दीजिए! सुनीध! इधर एक सप्ताह से इसी उद्देश्य से इस तसवीर को निकालता हूँ। मन कड़ा करने के लिए राजवस्त्र को त्याग यह पीला लबादा ओढ़ता हूँ। लेकिन ज्यों ही तसवीर हाथ में लेता हूँ, हाथ काँप उठता है। हाथ काँपता है, ज़ोर से मुट्ठी बाँधता हूँ। हृदय डगमगाता है, गृध्रकूट की ओर देखता हूँ, और इन सारे प्रयत्नों के बावजूद इस आठवें दिन भी तसवीर जहाँ-की-तहाँ है और न जाने मेरे पैर कहाँ-से-कहाँ खिसककर चले गए।

सुनीध : यह कोई अच्छी बात नहीं है, सम्राट!

अजातशत्रु : अच्छी बात नहीं है, यह क्या समझाओगे तो समझूँगा! लेकिन अब तो मगध की गंगा गोमुखी का बाँध तोड़कर निकल चुकी । अब कोई ऐरावत उसे रोक नहीं सकता, कोई जह्नु उसे सोख नहीं सकता। जिस तरह अनेक गलतियाँ हो चुकीं, एक गलती और करूँगा।

सुनीध : लेकिन, सोचिए सम्राट, जो घटनाएँ दुर्भाग्यवश घट चुकीं, उसके बाद कोई वृज्जिनारी अब मगध की पटरानी बनना भी स्वीकार कर सकती है?

अजातशत्रु : *(गुस्से से उसका चेहरा लाल हो जाता है – सिर हिलने लगता है)* सुनीध, सुनीध तुम बहक जाया करते हो। तुम मेरे सखा हो...किंतु तुम्हें

याद रखना चाहिए कि सम्राट हमेशा ही सम्राट है। और मगध-सम्राट की यह आज्ञा अचल-अटल है कि वैशाली पर हमें विजय प्राप्त करनी ही है — अंबपाली को राजगृह लाना ही है।

सुनीथ : सम्राट की आज्ञा हमारे सिर पर है *(वह सिर झुकाकर अपनी भक्ति प्रकट करता है)* वैशाली पर तो हमें विजय प्राप्त करनी ही है। वृज्जियों ने इधर अजीब धमाचौकड़ी मचा रखी है। अपने संघबल पर उन्हें इतना घमंड हो गया है कि उन्होंने मस्तिष्क का संतुलन तक खो दिया है। गंगा पर चलने वाले हमारे बजड़ों से वे कर वसूलते हैं, उन्हें लूटते हैं। गंगा-पार कर वे हमारे गाँवों और छावनियों पर छापा मारते हैं। उन्हें रोकने के लिए हमने जो पाटलिग्राम बसाया है, उसे ध्वस्त-पस्त किए रहते हैं। वैशाली पर विजय प्राप्त करना तो अनिवार्य है, सम्राट !

अजातशत्रु : मैंने आज महामंत्री वस्सकार को भगवान बुद्ध के पास इसी काम में सलाह लेने को भेजा है — मैं उनकी प्रतीक्षा में ही हूँ। *(गृध्रकूट की ओर नज़र उठाता है।)*

सुनीथ : महामंत्री तो इसके लिए कब से तैयारियाँ कर रहे हैं। गंगा किनारे की छावनियों को दुरुस्त किया है, युद्ध-पोतों का पुनः संगठन किया है, नए अस्त्र-शस्त्र बनवाए हैं, सेना का भी नवीन संगठन किया है, यहाँ तक कि राजधानी के परकोटे की मरम्मत तक को नहीं छोड़ा है। साम्राज्य का सौभाग्य है कि उसे वस्सकार-से महामंत्री मिले हैं।

अजातशत्रु : तुम्हारा कहना बिलकुल सही है।

[उसी समय मगध का महामंत्री वस्सकार पहुँचता है — एकदम बूढ़ा — सभी बाल सन-से सफ़ेद — चेहरे पर झुर्रियों के साथ कूटनीतिज्ञता की छाप — आगे के दो दाँत टूटे, जिससे आवाज़ में विकृति — बुढ़ापे के कारण उसका सिर रह-रहकर हिल उठता है — अजातशत्रु उससे पूछता है —]

क्यों महामंत्रीजी, भगवान ने क्या कहा?

वस्सकार : मैंने आपसे कहा था न, भगवान बुद्ध को वृज्जियों से स्वाभाविक अनुराग है। और, मैं कहूँ, उनके लिए उनमें पक्षपात भी है!

अजातशत्रु : महामंत्री!

वस्सकार : मगध का महामंत्री अपनी ज़िम्मेवारी समझते हुए बोलता है, सम्राट! ज्यों ही मैं उनके पास गया और उनसे सम्राट का संदेश कहा, वह आनंद से पूछने लगे –

'क्यों आनंद, क्या वृज्जियों की परिषद् बार-बार बैठती और उसमें भरपूर उपस्थिति होती है?

'क्या वृज्जि इकट्ठे जुटते, इकट्ठे उठते और इकट्ठे अपने राष्ट्रीय कर्तव्यों को पूरा करते हैं?

'क्या वृज्जि बाकायदा कानून बनाए बिना कोई आज्ञा जारी नहीं करते और न बने हुए नियमों का उच्छेद करते हैं?

'क्या वृज्जि वृद्ध-बुज़ुर्गों का सम्मान करते और उनकी सुनने लायक बातों को सुनते और मानते हैं?

'क्या वृज्जि अपनी कुमारियों और नारियों पर ज़ोर-ज़बरदस्ती नहीं करते और उनकी कदर और इज़्ज़त करते हैं?

'क्या वृज्जि अपने चैत्यों, मंदिरों और समाधियों की रक्षा करते हैं?

'क्या वृज्जि अर्हतों और तपस्वियों का आदर-सत्कार करते हैं?'

और, इनका उत्तर आनंद से 'हाँ' में सुनकर वह तमककर बोल उठे, 'तो आनंद, वृज्जियों की उन्नति ही होगी, उन्हें कोई पराजित नहीं कर सकेगा।'

अजातशत्रु : *(उसकी भवों पर बल पड़ जाते हैं, वह तमतमाकर बोलता है)* ऐसा? तो महामंत्री, आपने भगवान से क्यों नहीं कह दिया कि ये वृज्जि चाहे जितने समृद्ध हों, चाहे इनका जितना प्रभाव हो, मैं इन्हें उखाड़ डालूँगा,

नष्ट कर दूँगा! जब मगध की गंगा गोमुखी से चल चुकी, तो बीच में कोई भी शक्ति उसे रोक नहीं सकती! *(क्रोध में वह घूमने लगता है।)*

वस्सकार : मगध के सम्राट के अनुकूल ही यह वचन है। लेकिन, क्या मगध के महामंत्री का काम साधु-तपस्वियों से शास्त्रार्थ करना ही रह गया है? भगवान को कहने दीजिए, मैंने वैशाली-विजय की सारी तैयारियाँ कर रखी हैं, और उनके कथन से जिस सूत्र का पता चला उसका भी निराकरण कर लेना है।

अजातशत्रु : कौन-सा सूत्र वह है?

वस्सकार : भगवान बुद्ध का कहने का तात्पर्य सिर्फ़ यह था कि वृज्जियों में कुछ ऐसी एकता और निष्ठा है कि वे जीते नहीं जा सकते। अब मैं उस एकता को तोड़ूँगा, निष्ठा को भ्रष्ट करूँगा। मैंने उसके लिए राह भी सोच ली है!

अजातशत्रु : कौन-सी राह है वह, महामंत्रीजी!

वस्सकार : बहुत ही सीधी-सी राह। मैं कल दरबार में वृज्जियों का प्रसंग उठाऊँगा और उनकी बड़ी तारीफ़ करूँगा। आप इसके लिए मुझे खूब फटकार बताएँगे। मैं इसके बावजूद, दो दिन बाद, वृज्जियों के पास गुप्तरूप से प्रेमोपहार भेजूँगा। आप उस दूत को पकड़वा लेंगे। पकड़कर मुझे राजद्रोही घोषित कीजिए, अपमानित कीजिए, मेरा सिर गंजा कराइए और मुझे मगध से निष्कासन की सज़ा दीजिए – बस, आपको सिर्फ़ इतना ही करना है, बाकी मैं कर लूँगा!

अजातशत्रु : *(चकित होकर)* सिर गंजा कराना! महामंत्री, नहीं नहीं, मुझसे यह नहीं होगा।

वस्सकार : *(हँसकर)* गंजे सिर का प्रभाव देश पर कितना बढ़ रहा है, शायद सम्राट ने इसी पर ध्यान नहीं दिया है। और मुझे इस काम में जल्दी करनी है।

भगवान बुद्ध के वैशाली जाने के पहले ही मुझे अपना जादू जगाना है— कौन जाने, अपनी स्वाभाविक अनुरक्ति के कारण भगवान उन्हें हमारी मंशा की खबर न कर दें?

अजातशत्रु : महामंत्रीजी, यह क्या कह रहे हैं आप?

वस्सकार : सम्राट, भावुकता और राजधर्म साथ-साथ नहीं चला करते।

2

[वैशाली की अभिषेक-मंगल-पुष्करिणी — इसके पवित्र जल से वृज्जियों का राज्याभिषेक होता, अतः दूसरे के लिए इसके स्पर्श तक की सख्त मुमानियत — चारों ओर सख्त पहरे पड़े हैं — इसके जल में विहार करनेवाले पंछी बाहर न जाएँ इसके लिए पानी के ऊपर लोहे का जल में जाल लगा —

इस पुष्करिणी की शोभा का क्या कहना! सरोवर में श्वेत, नील, लाल कमल खिले हुए— कमलों पर भौंरों का गुंजार — जहाँ-तहाँ जलपंछी किलोल कर रहे — जहाँ-तहाँ भावुक युवक-युवतियों का नौकाविहार —

एक चबूतरे पर महामंत्री वस्सकार अकेला बैठा है — भिक्षुकों-सा है वेश उसका — सिर के बाल मुँडे, पीला लबादा तन पर, हाथ में एक सुमरनी — उसका ध्यान न सरोवर पर है, न अस्ताचलगामी सूरज पर, न बादलों पर — वह टहलनेवाले नागरिकों में से एक-एक को घूरता है — जैसे उनके चेहरों को पढ़ने की कोशिश कर रहा है — बीच-बीच में सुमरनी तेजी से घुमाता वह बुदबुदा उठता है —

एक नागरिक को अकेला, सिर नीचा किए, टहलता देखकर वह उसके निकट जाता है — उस नागरिक की कमर से लंबी तलवार लटक रही है, पीठ पर ढाल है — उसके चेहरे से अभिमान और औद्धत्य टपक पड़ता है —]

वस्सकार : क्यों, आर्य अश्वसेन, आप उदास क्यों दीखते हैं?

अश्वसेन : ओहो, मगध के महामंत्री, नमस्ते।

वस्सकार : नमस्ते आर्य! आपके चेहरे पर यह उदासी क्यों है?

अश्वसेन : *(आश्चर्य से)* उदासी? उदासी कहाँ है? यों ही कुछ सोच रहा था। कहिए, आपको वैशाली कैसी पसंद आ रही है?

वस्सकार : *(आनंद में)* वैशाली? त्रिभुवन-सुंदरी नगरी! क्या कहना है! मैं इस नगरी का पुराना प्रेमी हूँ और उसी प्रेम का फल...! *(बनावटी उदासी लाकर उसाँसें लेता है।)*

अश्वसेन : *(उत्तेजित स्वर में)* हाँ, हाँ, उस नर-पिशाच अजातशत्रु ने इस वैशाली-प्रेम के कारण आपके साथ जो क्रूर व्यवहार किया है, क्या हम वृज्जि उसे भूल सकते हैं? हम इसका बदला एक दिन उससे चुकाकर रहेंगे।

वस्सकार : आह! वह दिन मुझे देखने को मिलता!

अश्वसेन : मिलेगा, ज़रूर मिलेगा! आपका अपमान वृज्जिसंघ के हर नागरिक के दिल में काँटे-सा चुभ रहा है। आपको देखकर किस नागरिक के हृदय में प्रतिशोध की ज्वाला नहीं धधक उठती? किसकी आँख से खून के आँसू नहीं टपकने लगते? उफ़, उसने आपके सिर के बाल तक मुँड़वा डाले! नरपिशाच!!

वस्सकार : नरपिशाच तो है ही। खैर, उसने बाल मुँड़वा दिए, अच्छा ही किया। मैं भगवान बुद्ध की शरण के समीप तो हो गया। *(अपने गंजे सिर पर हाथ फेरता है)* अब सिर्फ़ भिक्षापात्र की कमी है! *(ऊपर देखकर कुछ मंत्र बुदबुदाता है।)*

अश्वसेन : भिक्षापात्र नहीं, शासन-सूत्र! जब तक आपके हाथ में मगध का शासन-सूत्र नहीं आ जाता, हम चैन नहीं लेंगे। खैर, मज़े से आप हैं न? कोई कष्ट तो नहीं?

वस्सकार : वैशाली में कष्ट? *(कुछ रुककर)* लेकिन मैं अब सोचने लगा हूँ, वैशाली आकर मैंने अच्छा नहीं किया।

अश्वसेन : ऐसा क्यों मंत्रिवर?

वस्सकार : जिसकी पूजा आदमी करे, उससे दूर रहना ही श्रेयस्कर है। दूरत्व हमारी श्रद्धा को मज़बूत करता है, निकटता तो उचाट-सा ला देती है। अतिपरिचियादवज्ञा...

अश्वसेन : तो वैशाली से आपका जी उचट रहा है?

वस्सकार : उचाट ही कहिए। यहाँ कुछ चीज़ें ऐसी देख रहा हूँ, जिससे सोचता हूँ, यहाँ न आना ही ठीक होता। आदमी जिसके साथ हृदय की गहराई से प्रेम करता है, उसमें तनिक-भी त्रुटि देखना पसंद नहीं करता।

अश्वसेन : आपने यहाँ कोई त्रुटि देखी है क्या?

वस्सकार : जाने दीजिए इन बातों को। लकड़ी पर रंदा देने से वह चिकनी होती है, बात पर रंदा देने से वह रुखड़ी ही होती है। आह! कहाँ भगवान बुद्ध के मुँह से तारीफ़ और कहाँ वैशाली के नागरिकों का यह...*(बड़ी लंबी साँस लेता है और गरदन ज़ोरों से हिलाने लगता है।)*

अश्वसेन : यह, यह क्या, बोलिए!

वस्सकार : मत कहलाइए मुझसे आर्य; जाने दीजिए। आइए, हम-आप भी बैठकर संध्या का यह मनोरम दृश्य देखें, जिस तरह सब देख रहे हैं। ज़िंदगी में बहुत चीज़ों के भूल जाने में ही कल्याण है, आर्य!

अश्वसेन : नहीं, नहीं, आपको कहना पड़ेगा।

वस्सकार : अच्छा सुनिए, लेकिन, फिर प्रार्थना है, नाराज़ मत होइएगा। इसी शर्त पर मैं कह रहा हूँ। *(उँगली से दिखाते हुए)* आप उन्हें पहचानते हैं?

अश्वसेन : कौन वह? वह तो वसुबंधु हैं।

वस्सकार : आपसे उनका कोई झगड़ा है?

अश्वसेन : झगड़ा? वैशाली के नागरिक आपस में नहीं झगड़ते।

वस्सकार : कोई खानदानी दुश्मनी?

अश्वसेन : आप यह क्या कह रहे हैं?

वस्सकार : इसलिए न कहा कि जाने दीजिए, मुझसे मत पूछिए। नहीं-नहीं, मुझे वैशाली छोड़ देना चाहिए और किसी अरण्य में जाकर जप-तप करना चाहिए। भगवान बुद्ध! जल्द मुझे अपनी शरण में ले लो। *(झट ध्यानमग्न होने का बहाना करता है, फिर किसी अलक्षित शक्ति को नमस्कार करता-सा दीखता है।)*

अश्वसेन : महामंत्री, आपको यह रहस्योद्घाटन करना ही होगा।

वस्सकार : तो आप धीरज से सुनें, गुस्सा मत हों। न जाने, वसुबंधुजी को आपसे कौन-सी खानदानी दुश्मनी या व्यक्तिगत अनबन है!

अश्वसेन : *(बीच ही में बात काटकर)* मैंने आपको पहले ही कह दिया कि मुझसे उनकी किसी तरह की दुश्मनी या अनबन नहीं है।

वस्सकार : तो क्या उनका कहना ठीक है?

अश्वसेन : क्या?

वस्सकार : मैं कहता हूँ, एक बच्चा भी इसे बर्दाश्त नहीं कर सकता। वह भी इसे सुनकर कहनेवालों की आँखें झपट्टा मारकर निकाल लेना चाहेगा। आदमी अपनी बहादुरी पर लानत शायद बर्दाश्त भी कर ले, परंतु अपने खानदान पर ...*(दाँत से जीभ काटता है।)*

अश्वसेन : बहादुरी पर लानत! खानदान पर...ऐं *(उसकी भवों पर तेवर चढ़ जाते हैं।)*

वस्सकार : मैंने पहले कहा था, क्रोध मत कीजिए, पहले धैर्य से सुनिए। वीर सुनने में धीरज रखते हैं, जल्दी तो बदला लेने में की जाती है!

अश्वसेन : *(गुस्से से)* क्या वसुबंधु ने मुझे गाली दी है?

वस्सकार : आर्य अश्वसेन, मैं तो इसे गाली से भी बुरी चीज़ समझता हूँ। किसी को कायर कह देना, फिर उसकी कायरता को खानदानी बताना – किसी के मरे हुए बाप-दादों की पगड़ी उछालना, राम, राम!

अश्वसेन : *(उत्तेजना में तलवार खींच लेता है)* बोलिए, मंत्रिवर, उसने क्या कहा? आज यह तलवार उसके सिर पर नाचेगी।

वस्सकार : आह! इसी तलवार पर तो बात चली। कल उनसे मेरी बातें हो रही थीं। मैंने आपकी चर्चा की – कहा, तीर तो सभी चला सकते हैं, लेकिन तलवार के हाथ में अश्वसेन जी का मुकाबला कोई नहीं कर सकता।

अश्वसेन : *(फ़ख्र से)* आपने सही कहा, महामंत्री। वृज्जिसंघ में मेरी तलवार का कोई मुकाबला नहीं कर सकता।

वस्सकार : मैंने खुद देखा है – विजयोत्सव के दिन आपके हाथ के जो करतब देखे, क्या उन्हें कभी भूल सकता हूँ! लेकिन, देखिए, वसुबंधु जी की हिमाकत। आपकी तारीफ़ मेरे मुँह से सुनते ही चिल्ला पड़े...

अश्वसेन : जल्दी कहिए, वह क्या बोला – *(तलवार हिलाता है।)*

वस्सकार : *(ऊपर देखते)* भगवान बुद्ध, मुझसे सच ही कहलाना। *(अश्वसेन से)* वह चिल्लाकर बोले, अश्वसेन तलवार क्या चलाएगा, वह तो कायर है! वही क्या, उसकी सात पुश्त *(रुककर)* माफ़ कीजिए, कहते मुझे शर्म आती है, गुस्से से मेरा बूढ़ा शरीर भी काँप उठता है। *(शरीर कँपाने लगता है।)*

अश्वसेन : काफी है महामंत्री, अब वह देखे कि मैं बहादुर हूँ या कायर; और स्वर्ग में जाकर मेरे बाप-दादों से भी आज़माइश कर ले!

(अश्वसेन तलवार घुमाते उस ओर दौड़ने जा रहा है कि वह उसे रोकने की बनावटी चेष्टा में कहता है –)

वस्सकार : सुनिए, सुनिए!

अश्वसेन : नहीं-नहीं, मैं सुन नहीं सकता! उसने मेरे खानदान...

[वह वसुबंधु की ओर तेज़ी से दौड़ पड़ता है – वसुबंधु प्राकृतिक दृश्यों को देखने में तल्लीन है – उसके पास जाते ही वह बोल उठता है –

'उठो, सँभालो, तलवार निकालो' — *अकारण अपनी मानसिक आनंद-प्राप्ति में बाधा पड़ते देख वसुबंधु भी कुछ क्रोध में आ जाता है, कहता है —]*

वसुबंधु : यह तुम क्या बक रहे हो?

अश्वसेन : बक रहा हूँ? उलटे कहते हो, बक रहा हूँ! *(गरजकर)* सँभलो, तलवार निकालो! *(तलवार उसके सिर पर उठाता है।)*

वसुबंधु : क्या पागल हो गए हो?

अश्वसेन : मैं पागल! पागल! हूँ, तो लो — सँभलो, एक...दो...तीन...

[वह तलवार चलाता है — वसुबंधु हाथ उठाकर तलवार रोकना चाहता है — तलवार लगते ही उसका हाथ कटकर दो टूक हो जाता है — हाथ को काट उसकी खोपड़ी पर तलवार गिरती है। एक चीख के साथ वह ज़मीन पर गिर जाता है — खून का फव्वारा चलने लगता है — उसके गिरते ही, वस्सकार, जो अलग खड़ा तमाशा देख रहा था, वहाँ से गायब हो जाता है — चीख सुन नागरिक उधर दौड़ते हैं और अश्वसेन को पकड़ लेते हैं — थोड़ी देर हलचल रहती है — फिर घायल वसुबंधु और अपराधी अश्वसेन को लेकर लोग संघागार की ओर रवाना हो जाते हैं— सरोवर के घाटों पर सन्नाटा छा जाता है —

झुटपुटे के अंधकार में अंबपाली दिखाई पड़ती है — उसके परिधान में सादगी है — जूड़े पर, हाथों में कुछ फूल के गहने — गले में फूल की हलकी माला — उसके पीछे चयनिका है — अंबपाली चबूतरे पर बैठकर, उदास मुद्रा में कहती है —]

अंबपाली : वैशाली के दिन अच्छे नहीं दीखते, चयनिके! आज जो कुछ हुआ, वह हमारे लिए खतरे की घंटी है।

चयनिका : हाँ, भद्रे, वैशाली में ऐसा दृश्य कभी नहीं देखा गया।

अंबपाली : मुझे तो इस घटना के पीछे किसी के अदृश्य हाथ दिखाई पड़ते हैं। वैशाली के नागरिक अपनी तलवार अपने भाइयों के सिर पर चलाएँ, यह महान आश्चर्य की बात है!

[उसी समय वृज्जिसंघ के महामात्य चेतक दिखाई पड़ते हैं – गोरे रंग के, लंबे वृद्ध पुरुष – सफ़ेद दाढ़ी, सिर से सफ़ेद बालों की लटें कंधे तक लटक रहीं – कंधे से घुटने तक एक सफ़ेद लबादा – चिंता से ओतप्रोत है उनका चेहरा – वह अंबपाली की बातें सुन रहे थे – प्रकट होकर कहते हैं –]

महामात्य चेतक : आपका कहना बिलकुल सही है, आर्ये!

अंबपाली : *(ससंभ्रम खड़ी होती हुई)* महामात्य, आज यह क्या हो गया?

महामात्य चेतक : यह आज नहीं हुआ है, इसके लिए कुछ दिनों से क्षेत्र तैयार किया जा रहा था, देवि।

अंबपाली : कुछ दिनों से?

महामात्य चेतक : हाँ, देवि! वैशाली के जीवन-सरोवर में एक गंदी मछली घुस आई है, हमारे नागरिकों के सम्मिलित परिवार की टोकरी में एक सड़ी नारंगी आ गई है – पानी ज़हरीला बन रहा है, एक-एक नारंगी सड़ती जा रही है!

अंबपाली : उस मछली को निकाल डालिए, उस नारंगी को फेंक दीजिए – आप हमारे महामात्य हैं; आपको सब अधिकार है।

महामात्य चेतक : यही गणतंत्र की दुर्बलता है। आप जानते हुए भी तब तक कुछ नहीं कर सकते, जब तक बहुमत को आप पक्ष में न कर लीजिए। और जो बुरे हैं, वे भले से कहीं ज़्यादा काइयाँ होते हैं न!

अंबपाली : यह अजीब बात!

महामात्य चेतक : हाँ, अजीब बात होने पर भी यथार्थ बात यही है। *(कुछ ठहरकर, बड़ी ही गंभीरता से)* मेरा माथा तो उसी दिन ठनका, जिस दिन सुना कि मगध के महामंत्री वैशाली का पक्ष लेने के लिए निकाल दिए गए हैं और वह वैशाली आ रहे हैं। मंत्री का पद कोई दरबान का पद नहीं है कि आप जिसे आज रखें, कल निकाल दें। योग्यता की सर्वश्रेष्ठता और भक्ति की पराकाष्ठा ही किसी को उस महान पद पर पहुँचा सकती है और वहाँ पहुँचकर आदमी राज्य की इतनी गुप्त बातें जान जाता है कि यदि ऐसा मौका आ गया तो उस पद से हटाने के बाद उसे दुश्मन के घर में जाने का मौका तो दिया ही नहीं जा सकता। दंडित मंत्री का स्थान फ़ाँसी का तख्ता होगा या कैदखाने की कालकोठरी – देशनिष्कासन की गलती तो की ही नहीं जा सकती!

अंबपाली : *(आश्चर्य में)* तो आपको शंका है, मगध के महामंत्री का इसमें हाथ है?

महामात्य चेतक : शंका नहीं, निश्चय है। जब वह वैशाली आए, हमारे नागरिकों के आनंद की सीमा न रही। परम हितैषी, हार्दिक मित्र मानकर उनका धूमधाम से स्वागत हुआ। लोगों में आनंद का ऐसा ज्वार आया था कि वे बुद्धि की बात सुन नहीं सकते थे। मैंने इसमें खतरा देखा, उनके पीछे गुप्तचर रखा। गुप्तचर ने जो खबरें दी हैं, उनका एक प्रत्यक्ष प्रमाण भी आज हमें मिल गया।

अंबपाली : *(आश्चर्य में आँखें फाड़ती)* अरे!

महामात्य चेतक : हाँ, बड़ी चालाकी से उन्होंने जाल बिछाया है। मान लीजिए, दो नागरिक बड़े दोस्त हैं, आपस में घुल-मिलकर बातें कर रहे हैं। उसी समय उनमें से एक को वह अलग बुलाएँगे, यह कहकर कि एक ज़रूरी बात दरियाफ्त करनी है। और उसे बुलाकर महज़ मामूली बात पूछेंगे – 'क्यों जी, लोग खेत जोतते हैं?' 'आज आपने दाल कौन-सी खाई?' 'आप

कितने भाई हैं?' आदि। लेकिन ये बातें भी इस संजीदगी से करेंगे कि उसका साथी सोचेगा, महामंत्री से कुछ गहरी, महत्त्वपूर्ण बातें हो रही हैं। उसके मन में संदेह पैदा होगा। और जब उसका साथी पहुँचकर यह कहेगा कि मगध के महामंत्री ने सिर्फ़ ये मामूली बातें की हैं, उसका संदेह पक्का हो जाएगा – दोनों का दिल टूटेगा, मैत्री बैर में परिणत हो जाएगी!

अंबपाली : *(काँपती हुई)* चालाकी की हद है!

महामात्य चेतक : यही नहीं, धनी-गरीब, ऊँच-नीच, वीर-कायर आदि तरह-तरह के भेदभाव के सवाल उठाकर वह हमारी एकता को छिन्न-भिन्न करने पर तुले हुए हैं। इस हत्याकांड के ठीक पहले आर्य अश्वसेन से उनकी बातें हो रही थीं – ज़रूर, उन्हीं के उकसाने से यह कांड हुआ है!

अंबपाली : और, देखने में कितने साधु लगते हैं, हमेशा बुद्ध भगवान का नाम लेते हैं।

महामात्य चेतक : ऐसे लोग। का साधुपन उनकी ढाल होती है, और भगवान का नाम उनकी तलवार! सीधा शिकार सिर्फ़ शेर करता है, और सभी जानवर, जिनका आदमी सिरताज है, हमेशा आड़ लेकर निशाना लेते हैं, भद्रे!

अंबपाली : महामात्य, संघ का भार आपके सिर है। ऐसे आदमियों से संघ को बचाना आपका कर्तव्य है। आप इन्हें गिरफ़्तार क्यों नहीं करा लेते?

महामात्य चेतक : अगर आज मैं इन्हें गिरफ़्तार कराऊँ, वृज्जिसंघ में हलचल मच जाएगी। यह शहीद बन जाएँगे। इनका पक्ष और विपक्ष लेकर आंदोलन खड़ा होगा। और इसके बाद अजातशत्रु ज़रूर हमारे देश पर चढ़ दौड़ेगा। मुझे तो खबर मिली है, वह इसके लिए तैयारियाँ भी कर रहा है।

अंबपाली : *(आश्चर्य से)* क्या वह वैशाली पर चढ़ाई करनेवाला है?

महामात्य चेतक : मुझे खबर तो यहाँ तक मिली है कि उसने इसके लिए पाटलिग्राम के निकट सेनाएँ इकट्ठी कर रखी हैं, गंगा पार करने के लिए बेड़े तैयार कर लिए हैं और अब सिर्फ़ उपयुक्त समय की प्रतीक्षा में हैं।

अंबपाली : आह! देवपुरी वैशाली! इस पर राक्षस का शासन होगा? इसे बचाइए, महामात्य! *(व्याकुल-सी हो जाती है।)*

महामात्य चेतक : मैं इसके लिए सयत्न हूँ; पर आपकी ज़िम्मेवारी भी इस बारे में कम नहीं है, आर्ये! जो काम अधिकार से नहीं किया जा सकता, वह प्रेम से आसानी से कराया जा सकता है। आपके पास नौजवानों का दिन-रात प्रवेश है। आप उनकी ओर ध्यान दीजिए। नीति से कला का असर ज़्यादा होता है। और, वह कला व्यर्थ है जो मातृभूमि के संकट-काल में काम न आए। आप अपनी कला का उपयोग इस काम में करें। अगर नौजवानों का हृदय ठीक रहे, उनमें पारस्परिक एकता और प्रेम हो, उनमें आदर्श पर उत्सर्ग होने की भावना बनी रहे, तो फिर उस देश या जनपद को कोई भी पराजित नहीं कर सकता।

अंबपाली : आपने सही कहा, महामात्य! आपकी आज्ञा सिर-आँखों पर। कुछ दिनों से मैं व्याकुल-सी थी — मेरा यह सौंदर्य, यह कला, क्या सिर्फ़ मनोरंजन की चीज़ है? तुच्छ मनोरंजन!!

महामात्य चेतक : मनोरंजन तुच्छ चीज़ नहीं है, भद्रे! मनोरंजन ज़िंदगी की एक अहम ज़रूरत है। जहाँ मनोरंजन नहीं, वहाँ जीवन नहीं। आपके द्वारा वैशाली की तरुण पीढ़ी जीवन पाती रही है — ज़िंदादिली ही ज़िंदगी है, भद्रे! लेकिन हर चीज़ के उपयोग पर सामयिकता की छाप होनी चाहिए। आग रोशनी देती है, जलाती भी है। कला सुलाती है, तो जगाती भी है। आज सतत जाग्रत रहने का समय है। आज उसी कला को जागरण का शंखनाद करने दीजिए।

अंबपाली : *(गर्व-मिश्रित स्वर में)* ऐसा ही होगा, महामात्य! अंबपाली सिद्ध कर देगी, वह गौरी ही नहीं, दुर्गा भी है। वह सोहनी ही नहीं, भैरवी भी सुना सकती है।

महामात्य चेतक : *(आशीर्वादात्मक ढंग से हाथ उठाते)* तथास्तु!

3

[वैशाली का संघागार और उसके सामने का विस्तृत मैदान — संघागार के गुंबदों से शंख और भेरी की ध्वनि हो रही है —

अजातशत्रु की सेना वैशाली पर चढ़ाई करने को आ रही है, उसी का सामना करने के लिए नागरिकों का यह आह्वान किया जा रहा है —

इस ध्वनि को सुनकर धीरे-धीरे नागरिक मैदान में आते हैं — लेकिन इनमें उत्साह का कोई लक्षण दिखाई नहीं देता — न जयनाद है, न भुजाओं की उछाल — एक-दूसरे को यों देख रहे हैं जैसे पुराना बैर चुकाने का मौका मिला हो — एकाध जगह उत्साह की तरंग देखी भी गई, एकाध बार जयनाद भी हुआ, तो वह निराशा के गहरे गर्त में तुरंत विलीन हो गया—

संघ के महामात्य चेतक संघागार से निकलकर सभामंच पर आते हैं और नागरिकों को देखते हैं — देखते ही उनका चेहरा उतर जाता है — भर्राई आवाज़ में नागरिकों को संबोधित करते हैं —]

महामात्य चेतक : नागरिको, क्या आपको मालूम है, यह शंख क्यों फूँका गया है? यह भेरी क्यों बजाई गई है? हमारे वृज्जिसंघ के पुराने शत्रु अजातशत्रु ने हम पर चढ़ाई की है।

एक नागरिक : क्यों अजातशत्रु हम पर चढ़ाई करेगा?

दूसरा नागरिक : चढ़ाई की है, तो उससे हमारा क्या?

तीसरा नागरिक : क्या हमारी तरफ़ से उसे छेड़ा गया है?

महामात्य चेतक : बस, बस, नागरिको! मैं आज का समाँ देखकर ही दंग हूँ। यही वैशाली है, यही संघागार और उसका मैदान है। शंखनाद होते ही वैशाली के घरों में कोई भी नौजवान नहीं रहता था। सभी अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित यहाँ इकट्ठे हो जाते थे। तीसरी बार भेरी बजते-न-बजते इस विस्तृत मैदान में तिल धरने की जगह नहीं रह जाती थी। नागरिकों के जयनाद, शस्त्रों की झनझन, घोड़ों की हींस और हाथियों के चिंग्घाड़ से आसमान गूँज उठता था। सब कहते थे, संघ पर क्या संकट आया? सब पूछते थे, संघ का कौन दुश्मन है – हम उसका शमन करेंगे, हम उसकी आँख निकाल लेंगे। और आज वही वैशाली– आह वैशाली! *(उनका गला भर आता है।)*

एक नागरिक : लेकिन हमें पूछने का हक है।

दूसरा नागरिक : हमें युद्ध का औचित्य तो मालूम होना चाहिए।

तीसरा नागरिक : हिंसा मानवीय कर्तव्य नहीं, यह राक्षसी वृत्ति है।

[ऐसे सवालों को सुनकर कुछ नागरिक, जिनमें जोश और उत्साह था, लेकिन उमड़ा न था, तमतमाकर खड़े होते हैं – लेकिन, उन्हें बोलने के पहले ही महामात्य चेतक हाथ के इशारे से रोक देते हैं और शांत भाव से कहते हैं –]

महामात्य चेतक : नागरिको, गणतंत्र के मानी ही यह है कि हर नागरिक राज्य के कामों में अपने को हिस्सेदार समझे – अपनी ज़िम्मेवारी निभाए, संघ के पदाधिकारियों से ज़िम्मेवारी वसूल करे। किंतु आज तो अजीब सवाल पूछे जा रहे हैं। संघ ने युद्ध नहीं छेड़ा है कि आप उससे औचित्य का उत्तर माँगें। युद्ध का औचित्य पूछना है, तो आप अजातशत्रु से पूछें– इसीलिए तो संघ ने आपका आह्वान किया है। लेकिन याद रखिए, चढ़ाई करने वाले दुश्मन से आप ज़बान से नहीं पूछ सकते, ऐसी ज़बानों

को वह तराश लेगा। आक्रमणकारी एक ही ज़बान समझता है, वह है प्रत्याक्रमण में उठाई गई तलवार की झनझन या चलाए गए तीर की सनसन की।

[महामात्य के इस कथन पर उत्साही दल में और जोश आ जाता है, उनमें से नागरिक उठकर कहने लगते हैं –]

एक नागरिक : हम तलवार की ज़बान से ही उसे समझाएँगे।

दूसरा नागरिक : हम उसे उसकी गुस्ताखी का मज़ा चखाएँगे।

तीसरा नागरिक : बोलो, वृज्जिसंघ की जय, गणतंत्र की जय, वैशाली की जय।

[जयजयकार करनेवालों की संख्या बढ़ती जाती है – चारों ओर हलचल और सरगरमी दिखाई पड़ती है – जिस नागरिक ने पहले विरोध की आवाज़ उठाई थी, वह आगे बढ़ता, सभामंच के निकट जाता और नागरिकों को सुनाकर कहता है –]

पहला नागरिक : महामात्य, क्या मुझे नागरिकों को संबोधित करने की आज्ञा मिल सकती है?

महामात्य चेतक : निश्चय ही। संघ ने सब नागरिकों को बोलने-चालने का समान अधिकार दे रखा है। बोलिए –

पहला नागरिक : नागरिक भाइयो, हमें अपने गण पर नाज़ है, अपने संघ पर नाज़ है। अपनी प्यारी वैशाली और प्यारे वृज्जिसंघ पर आए संकट को टालने के लिए जो योग न दे, उसकी ज़िंदगी पर लानत! *(कुछ नागरिक उत्साह में* 'वृज्जिसंघ की जय' *चिल्लाते हैं – वह तमककर कहता है)* ठहरिए, अधीर मत होइए, बुद्धि से काम लीजिए। अगर वृज्जिसंघ और वैशाली प्यारी चीज़ हैं, तो आदमी की जान भी कम कीमती नहीं। आदमी की जान संसार में सबसे कीमती चीज़ है – सबसे प्यारी। इसीलिए हम दूसरे की जान लेने और जान देने के पहले थोड़ा सोच लें।

एक नागरिक : तुम कायर हो!

पहला नागरिक : महामात्य, गालियों को रोकिए; किसी को हक नहीं कि वह दूसरे को कायर कहे —

[चारों ओर उत्तेजना का वातावरण — महामात्य हाथ के इशारे से उन्हें शांत करते हैं —]

महामात्य चेतक : नागरिको, आप धैर्य न खोएँ। इन्हें पूरी बात कहने दीजिए। *(पहले नागरिक से)* आप जारी रखें —

पहला नागरिक : मैं कह रहा था, जो काम हम करने जा रहे हैं, उस पर ज़रा गौर से सोच लें। हम अपने गण पर, अपने संघ पर, अपनी वैशाली पर अपने को बलिदान करने जा रहे हैं। वैशाली या वृज्जिसंघ क्या है, अगर वह एक आदर्श का प्रतीक नहीं हो। इस आदर्श के निर्माण के लिए हमारे पूर्वजों ने क्या-क्या नहीं किया! उसी आदर्श को देखकर भगवान बुद्ध ने हमें देवता कहा था। लेकिन, वह आदर्श आज कहाँ है? हम उस उज्ज्वल आदर्श को खोकर ज़मीन पर ढकेले गए देवता — ऐसे हो गए हैं। हमारे नागरिक एक-दूसरे की निंदा करते हैं, एक-दूसरे से मर्म छिपाते हैं, एक-दूसरे की बुराई चाहते हैं, एक को कायर कहते हैं — भिखमंगा बताते हैं —

[कई ओर से आवाज़ें आती हैं — 'यह झूठी बात है', 'बिलकुल झूठ', 'नहीं-नहीं, सही बात', 'उस दिन तुमने मुझे भिखमंगा बताया', 'तुमने मुझे कायर कहा', 'वीर लड़ें, हम कायर क्यों लड़ें?' 'भिखमंगे क्यों लड़ें, जिन्हें धन बचाना है, लड़ें, तुम्हारी ज़बान कट जाए', 'तुम्हारी ज़िंदगी पर लानत!' *]*

महामात्य चेतक : *(ऊँची आवाज़ में)* शांत नागरिको, शांत! *(पहले नागरिक से)* आपको जो कुछ कहना है, शीघ्र कहिए —

पहला नागरिक : भाइयो, मैं इस नाज़ुक मौके पर अब ज़्यादा वक्त नहीं लेना चाहता। सिर्फ़ एक बात कहूँगा। एक तरफ़ तो यह हालत है, दूसरी ओर दुश्मन

को देखें। आप जानते हैं, मगध-सम्राट अजातशत्रु अब पुराना अजातशत्रु नहीं रह गया है। अब वह भगवान बुद्ध का अनुयायी है। दिन-रात गृध्रकूट की ओर उसका ध्यान लगा रहता है। वह आधा भिक्षु बन चुका है। मगध के आधे खून ने उससे ऊधम कराए, अब हमारा रक्त उस पर हावी है। उसके शरीर में जो वृज्जिरक्त है, वह उसे सुकर्म पर ले जा रहा है। फिर वह हम पर क्यों चढ़ाई करेगा? अगर की है, तो ज़रूर हम लोगों ने कुछ उत्तेजना दी है, उसे तंग किया है, लाचार किया है। इसलिए, हमें उसके खिलाफ़ फौज न भेजकर समझौते के लिए दूत भेजना चाहिए, उससे सुलह कर लेना चाहिए — *(बोलकर हट जाता है।)*

एक नागरिक : बहुत ठीक, हम हिंसा से भी बच जाएँगे।

दूसरा नागरिक : तुम दोनों कायर हो, जनद्रोही, गणद्रोही, देशद्रोही!

[फिर नागरिकों में आपस में तू-तू-मैं-मैं मच जाती है — हल्ला-गुल्ला मच जाता है — महामात्य बार-बार उन्हें शांत करने की कोशिश कर रहे हैं।

अचानक लोग अंबपाली को देखते हैं — अजीब है वेश उसका— शरीर पर ज़िरहबख्तर — सिर के लहराते बाल के ऊपर शिरस्त्राण — पीठ पर ढाल, कमर में तलवार लटक रही — एक हाथ में बर्छा, जिसकी फली के नीचे वैशाली का झंडा लहरा रहा — उसे इस रूप में देखते ही सब आश्चर्यचकित रह जाते हैं — आपस का विवाद रुक जाता है, सब चुप हो जाते हैं — इस जमाव को वह आँख घुमाकर देखती है फिर महामात्य की आज्ञा ले, ओजस्वी शब्दों में बोलती है—]

अंबपाली : वृज्जिसंघ के नागरिको, वैशाली के सपूतो! मेरे इस रूप को देखकर आप चकित हो रहे हैं। नारी का यह रूप नहीं, राजनर्तकी के भी अनुरूप नहीं! आपका चकित होना उचित ही है। लेकिन, आप सोचिए

तो कि मुझे यह रूप क्यों धारण करना पड़ा है? क्यों उन हाथों में आज तलवार है, जिनमें कल तक वीणा थी? क्यों उस मस्तक पर शिरस्त्राण है, जिस पर फूलों के गुच्छे लटकते थे? जिस वक्षःस्थल पर कल तक पारिजात की मालाएँ होती थीं, उस पर आज यह ज़िरहबख़्तर देखकर आप चकित न हों, यही आश्चर्य है। किंतु, आप सोचिए तो, ऐसा क्यों हुआ?

[वह चुप हो जाती है – चारों तरफ़ सन्नाटा है – सब एक-दूसरे का मुँह देखते हैं – अंबपाली फिर बोलती है –]

नागरिको, आप नहीं बोल रहे हैं। आप शायद नहीं सोच पा रहे हैं? या आप अपने पर शर्मिंदा हो रहे हैं? हाँ, यह शर्म की बात है, लज्जा की बात है कि जब दुश्मन हमारे द्‌वार पर पहुँच चुका है, जब उसकी तलवार हमारी गरदन छू रही है, उसके तीर हमारी छाती में घुसने को हैं, हम यहाँ विवाद कर रहे हैं कि हम युद्‌ध करें या नहीं करें, लड़ाई अच्छी चीज़ है या बुरी, इसमें हिंसा है या अहिंसा! हम कितने पतित हो चले हैं और हमारा दुश्मन कितना भला है, इसकी नाप-तौल भी हम आज ही कर लेना चाहते हैं। कैसी आत्मवंचना! आत्महत्या का कैसा सुंदर प्रयत्न!! कहा जाता है, अजातशत्रु आधा भिक्षु हो चुका है। क्या भिक्षुओं की सेना तलवार लेकर चलती है? गाँवों को जलाती है? फ़सलों को रौंदती है और आदमी के खून से ज़मीन को सींचती है?

[लोगों में सनसनी छा जाती है – चेहरों पर गुस्से की झलक स्पष्ट हो जाती है – बाँहें फड़कने लगती हैं – लोगों की इस परिवर्तित भावना को देख जैसे गरम लोहे पर हथौड़े की चोट देती अंबपाली ओजस्वी शब्दों में कहती है –]

यह भी कहा गया है कि अब उस पर वृज्जियों का रक्त हावी है। नागरिको, जिस दिन अजातशत्रु ने – जिसकी कोख से पैदा हुआ, जिसके दूध पर वह पला, उस वृज्जिकुमारी महारानी चेल्लना को तड़प-तड़पकर मरने को लाचार किया, उसी दिन उसके शरीर का वृज्जिरक्त सूख चुका! पितृहंता, मातृहंता के शरीर में भी जो वृज्जिरक्त का प्रवाह देखते हैं, क्या वे वृज्जियों के रक्त का अपमान नहीं कर रहे हैं? वृज्जियों का रक्त देवरक्त है, वह राक्षस के शरीर में बह नहीं सकता!

नागरिकों की आवाज़ें : अजातशत्रु राक्षस है!
वह पितृहंता है।
हम उसे सबक सिखाएँगे।
हम महारानी चेल्लना का बदला चुकाएँगे।

महामात्य चेतक : शांत! शांत! देवि, आप अपनी बात कहें!

अंबपाली : फिर यह कहा गया है, हमने आदर्श खो दिया! ज़रूर खो दिया – जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण हमारे सामने है। हममें यह नैतिक पतन! लेकिन, सोचिए,ऐसा क्यों हुआ? कुछ दिन पहले तो यह बात नहीं थी। इन कुछ दिनों में ही यह कौन-सा जादू हो गया! कौन-सा जादू हुआ, किसने यह जादू किया? जिसने भाई के दिल में घुसकर भाई का प्रेम वहाँ से हटाया, जिसने उस दिन अभिषेक-मंगल-पुष्करिणी को खून से अपवित्र करवाया, वह कौन ज़ादू है, वह कौन-सा जादूगर है? *(जिसने विरोध में भाषण किया, उसकी ओर लक्ष्य करती)* बोलिए, इस संघागार के सामने, हिम्मत हो तो उसका नाम बताइए, यह ज़िम्मेवारी आप अपने ऊपर लेते हैं?

[सब नागरिक उस विरोधी नागरिक की ओर देखने लगते हैं – जिन लोगों ने उसके सुर-में-सुर मिलाया था, उनके सिर नीचे होने लगते हैं– खामोशी देख महामात्य बोलते हैं –]

महामात्य चेतक : आर्ये, जादूगर चला गया, अब सिर्फ़ उसका जादू रह गया है, जो हमारे कुछ भोले नागरिकों के सिर चढ़कर बोल रहा है!

नागरिकों की आवाज़ें : वह कौन था?
यह क्या बात है?
उसका नाम बताइए।
हम उसे मज़ा चखाएँगे!

अंबपाली : मज़ा चखाएँगे, तो चलिए, रणभूमि में। वह रणभूमि में ही आपको मिलेगा। लेकिन, अब उसके हाथ में पोथी नहीं होगी, तलवार लेकर वह आपके सामने खड़ा होगा। उसने पीला कपड़ा फेंक दिया होगा, ज़िरहबख्तर पहन लिया होगा। उसके गंजे सिर के पोपले मुँह से मंत्र की बुदबुदाहट नहीं, अब आप राक्षसी चीत्कार सुनेंगे –

नागरिकों की आवाज़ें : आप वस्सकार की बात कह रही हैं?
क्या उसी दुष्ट की यह करामात है?
उफ़ मक्कार!
उफ़ दगाबाज़!

अंबपाली : हाँ, उसी दुष्ट की। देख लीजिए, वह आज आपके बीच नहीं। *(चारों ओर नज़र दौड़ाती है – और लोग भी देखते हैं)* क्यों रहे? उसने अपना *काम किया और चलता बना। फ़सल बो चुका, अब गया है हँसिया लाने*-- हम फ़सल, उसकी हँसिया – हमारी गरदन, उसकी तलवार –

[चारों ओर से आवाज़ें आती हैं — 'हम ऐसा नहीं होने देंगे' — 'हम वैशाली पर अपने को बलिदान कर देंगे' *आदि, फिर* 'वृज्जिसंघ की जय', 'वैशाली की जय', 'अंबपाली की जय' *की ध्वनि-प्रतिध्वनि होने लगती है — लोगों की उमंग देख अंबपाली कहती है —]*

नागरिको, ठीक, वैशाली की जय, वृज्जिसंघ की जय! ये जयनिनाद हमारे हार्दिक उल्लास और मानसिक निर्णय के सूचक हैं, इसलिए वांछनीय हैं, वंदनीय हैं। लेकिन, याद रखिए, जब दुश्मन हमारे सामने है, जब 'हम या वे' के फैसले का वक्त आ पहुँचा है, तो सिर्फ़ हार्दिक उल्लास या मानसिक निर्णय उपयुक्त नहीं होता। उस उल्लास और निर्णय को कार्यरूप देने पर ही उनकी सार्थकता और हमारी सफलता निर्भर करती है! कार्यशक्ति से हीन जयनाद आत्मप्रवंचना है — इसलिए चलिए रणभूमि की ओर, बढ़िए जयभूमि की ओर।

आइए, मैं आपके मस्तक पर विजय-तिलक लगाऊँ। *(मुड़कर)* चयनिके, रोली-चंदन का थाल ला —

[नागरिकों का ठट्ठ उसकी ओर बढ़ता है — सबके सिर पर वह रोली-चंदन लगाती जाती है — उधर संघागार के मुँडेरे से वीरवाणी में वृज्जियों का राष्ट्रगीत गाया जा रहा है —]

जन-गण की जय हो,
गण-जन की जय हो ।
हिमगिरि-शृंग-सदृश सिर उन्नत,
गंग-तरंग-सदृश मन निर्मल,
हम निर्मल, निर्भय,
हम उन्नत, गतिमय,
पावन हैं आदर्श हमारे, जीवन गतिमय हो,

जन-गण की जय हो,
गण-जन की जय हो ।
जन-गण की जय हो,
गण-जन की जय हो।
हम स्वाधीन, स्वतंत्र रहेंगे,
हम न किसी की धौंस सहेंगे,
हम अजेय, अनिवार,
हम रिपु-हित संहार,
विजय हमारी ओर,
शत्रु की ओर प्रलय लय हो,
जन-गण की जय हो,
गण-जन की जय हो।

4

[युद्धभूमि का एक अंचल – यहाँ से युद्धभूमि में होनेवाले कोलाहल, जयनाद, चीख-पुकार आदि के शब्द सुनाई पड़ते हैं – युद्धभूमि की एक झलक भी यहाँ से दीख पड़ती है –

घोड़े पर अंबपाली आती है – वही वीर वेश – चेहरे पर पसीने की बूँदें, गर्दगुबार के दाग – शरीर पर खून के छींटे – घोड़े को खड़ा कर युद्धभूमि की ओर देखती है –

दूसरी ओर से एक और घोड़ा आता है – उस पर वैशाली के महामात्य चेतक हैं – बुढ़ापे ने मानो वीरता का बाना पहन रखा है – अंबपाली को देखते ही अपना घोड़ा खड़ा कर देते हैं और कहते हैं –]

महामात्य चेतक : आर्ये सर्वनाश! वृज्जिसंघ की स्वातंत्र्य-पताका गिर गई। *(उनका गला भर आता है।)*

अंबपाली : *(साश्चर्य)* यह क्या हुआ महामात्य!

महामात्य चेतक : हुआ वही जो होना था। हमने अपने फटे कपड़े को सीने की कोशिश की — ऊपर से वह सिला भी दीखता था; लेकिन एक तनाव ने ही उसके तार-तार उधेड़ दिए। ज़मीन की दरार भरती है, राष्ट्र की दरार तुरत नहीं भरती आर्ये! अजातशत्रु की सेना नगर में घुस गई!

अंबपाली : ऐं, नगर में घुस गई? *(महामात्य के चेहरे को एकटक देखती है।)*

महामात्य चेतक : हाँ, घुस गई! अभी खबर मिली है, वह उत्तर से नगर में घुसी आ रही है। दो दीवारें पार कर चुकी, तीसरी कर रही होगी!

अंबपाली : *(आश्चर्य की अधिकता में चिल्ला पड़ती है)* उत्तर द्वार से?

महामात्य चेतक : यही तो तमाशा है, आर्ये! दक्षिण से आनेवाली सेना उत्तर द्वार से प्रवेश कर रही है।

अंबपाली : आह! हमें धोखा हुआ!

महामात्य चेतक : विना विभीषण के सोने की लंका नहीं जल सकती थी, भद्रे! त्रेता की गलती फिर दुहराई गई और न जाने कितनी बार कहाँ-कहाँ दुहराई जाएगी!

अंबपाली : *(अपना सारा साहस समेटकर)* महामात्य, हम चलें उस ओर, उनके प्रवाह को रोकें।

महामात्य चेतक : जब बाँध टूट जाता है, तब भद्रे प्रवाह के पानी को कोई नहीं रोक सकता। जो ऐसी कोशिश करेगा, वह डूबकर रहेगा। अब हम या तो इस व्यर्थ प्रयत्न में डूब मरें या चतुर किसान की तरह जो कुछ बच सके, उसे बचाएँ और अगली खेती के लिए सामान जुटाएँ।

अंबपाली : अगली खेती?

महामात्य चेतक : हाँ, अगली खेती। फ़सल की तरह राष्ट्र की जड़ भी ज़मीन के नीचे होती है। एक फ़सल बर्बाद हो जाए, दूसरी फ़सल लहराएगी। एक पुश्त गुलाम बन जाए, दूसरी पुश्त आज़ाद होकर रहेगी। दूसरी फ़सल पहली फ़सल की सड़ाँध से खाद पाती है, पहली से भी अच्छी होती है। गुलाम राष्ट्र जब उभरता है, वह उन्नति की उस चोटी पर छलाँग मारकर चढ़ जाता है, जिसके पहली पुश्त के लोग सपने ही देखते थे। लेकिन शर्त एक है!

अंबपाली : वह शर्त क्या है, आर्य?

महामात्य चेतक : उस राष्ट्र के लोग नैतिक बल को खो न दें। जो जन-नायक होते हैं, उनका यह काम है कि ऐसे मौके पर अपने व्यक्तिगत उदाहरण से जनता के नैतिक साहस को ऊँची सतह पर रखें – वह न दबे, फिर कोई नहीं दबेगा! साहस संक्रामक चीज़ है भद्रे! एक का साहस हज़ारों-लाखों में साहस भरता है। शहादत का खून ही वह खाद है, जिसे पाकर राष्ट्र की बेल बढ़ती, फैलती और फूलती-फलती है! हमारा साहस उन्हें भी ऊँचे उठने को प्रेरित करेगा, जो आज पतित, अधम हो चुके हैं।

अंबपाली : *(घृणा से मुँह सिकोड़ती)* वे पतित, वे नीच, रे नराधम! वैशाली उन्हें कभी नहीं क्षमा कर सकती; महामात्य!

महामात्य चेतक : वैशाली के प्रतिशोध लेने के पहले ही अपने हृदय का पश्चाताप ही उन्हें या तो जला डालेगा, या कुंदन बना देगा। गणतंत्र और राजतंत्र की प्रजा में बहुत अंतर है, आर्ये! राजतंत्र की प्रजा कभी कह सकती है – 'काउ नृप होहिं हमहि का हानि।' लेकिन गणतंत्र की प्रजा पर ज्यों ही दूसरों का शासन लादा जाएगा, उसका हृदय विद्रोह कर उठेगा। वैशाली की प्रजा को गुलामी में रखना असंभव है, भद्रे!

अंबपाली : *(कातर स्वर में)* आज तो हम गुलाम हो चुके महामात्य!!

महामात्य चेतक : यह तो अजातशत्रु को कल मालूम होगा। जो अपने बाप को कैद कर सका, कल देखूँगा, वह चेतक को कैसे कैद कर लेता है! *(उनका चेहरा एक अलौकिक ज्योति से दिप उठता है)* कैद होने के पहले कैदी खुद अपने को कैद कर लेता है, आर्ये! जिसकी तबीयत आज़ाद है, उसे कोई कैद नहीं कर सकता। अगर किसी ने ज़बरदस्ती की भी, तो पेट में गए कच्चे अन्न की तरह फिर उसे उगलना पड़ेगा — वह उसे पचा नहीं सकता। अगर यह बात नहीं होती, तो कुछ बलशाली मानव सारे संसार को गुलाम बनाकर रखते।

अंबपाली : वैशाली के महामात्य के उपयुक्त ही ये बातें हैं। मैं तो इसकी कल्पना से ही घबरा रही हूँ।

महामात्य चेतक : जो घबराता है, उसके सामने सबसे पहले भूत आता है, आर्ये!

[युद्धभूमि की चीख-पुकार बढ़ती और नज़दीक आती-सी मालूम पड़ती है — बूढ़े महामात्य 'आर्ये, वैशाली की शान न खोना' *— कहकर घोड़े को फँदाते चल देते हैं — अंबपाली भय-चकित दृष्टि से महामात्य की ओर देख रही है कि एक तीर उसकी ओर सनसनाता आता दिखाई पड़ता है — एक दूसरा घुड़सवार अपने घोड़े को उछालकर झट वहाँ पहुँचता है — उसके घोड़े के धक्के से अंबपाली का घोड़ा ज़रा हट जाता है — तीर उस आगंतुक घुड़सवार के गले में लगता है — वह घोड़े से लटक जाता है — अंबपाली के मुँह से चीख निकलती है — वह उस घुड़सवार को देखने की कोशिश करती है कि तब तक कई घुड़सवार आ जाते हैं — आपस में तलवारें चलने लगती हैं — सब तितर-बितर हो जाते हैं।]*

5

[अंबपाली का वसंतोद्‌यान — संध्या का समय — बगीचे के बँगले के बरामदे से सटा एक ऊँचा मंच — मंच पर सजी-सजाई फ़र्श — उस पर बैठी अंबपाली आईना सामने रखकर शृंगार कर रही है —

मंच के आगे उद्‌यान का जो हिस्सा है, उसमे बेला, मोतिया, जूही आदि की पंक्तियाँ कलियों से लदीं — बीच में एक छोटा-सा नकली हौज़ जिसमें पालतू हंस का जोड़ा तैर रहा—

अंबपाली के बगल में चयनिका खड़ी है — चयनिका कभी आसमान को देखती है, कभी अंबपाली के चेहरे को — वह आश्चर्य और विषाद की पुतली बनी हुई है — अंबपाली के चेहरे को पढ़ना उसके लिए मुश्किल हो रहा है — वह ठीक संध्या का प्रतिरूप है, जिसमें दिन-रात, हर्ष-विषाद का निर्णय कठिन हो रहा —

चयनिका की ओर देखकर अंबपाली मुसकराती है — फिर उससे पूछती है —]

अंबपाली : चुन्नी, देख तो, यह मेरा शृंगार कैसा उतरा?

चयनिका : *(नहीं बोलती है, सिर नीचा कर लेती है।)*

अंबपाली : बोल-बोल, शृंगार कैसा उतरा?

चयनिका : *(फिर भी चुप है, सिर और नीचा कर लेती है।)*

अंबपाली : *(प्यार-भरे गुस्से में)* नहीं बोलती? तुझे बताना होगा चयनिके कि आज का मेरा शृंगार कैसा उतरा?

चयनिका : मैं कुछ नहीं समझ पाती, भद्रे!

अंबपाली : तू कुछ नहीं समझ पाती और न समझ सकेगी। अंबपाली की बातें समझ जाना आसान भी तो नहीं है, चुन्नी!

चयनिका : हाँ, आर्ये!

अंबपाली : तू यही न सोच रही है कि कहाँ आज सारी वैशाली में मातम है, रुदन है, हाहाकार है और कहाँ मेरा यह श्रृंगार, यह प्रसाधन, यह उल्लास, यह हास! क्यों?

चयनिका : हाँ, आर्ये!

अंबपाली : कातर मत बन, चयनिके! अपने को अंबपाली की योग्य अनुचरी सिद्ध कर! देख, मेरा श्रृंगार अच्छा बना कि नहीं? इच्छा होती है, जितने भी श्रृंगार और प्रसाधन के सामान हैं, सब आज लाद लूँ, ओढ़ लूँ! *(कुछ रुककर)* जल्दी कर, मगधराज अजातशत्रु अभी यहाँ पधारनेवाले हैं।

चयनिका : मगधराज! अजातशत्रु!

अंबपाली : हाँ, महामात्य ने कहा था, जो डरता है, उसके नज़दीक सबसे पहले भूत आता है! वैशाली में उनकी पहली कृपा मुझी पर हुई है। उन्होंने खबर भेजी है, आज अकेले-अकेले यहाँ पधारेंगे! मगधपति का स्वागत भी तो साधारण साज-सज्जा से नहीं होना चाहिए। वह भी तो देख लें कि इस अलौकिक नगरी की राजनर्तकी कैसी है!

चयनिका : *(कुछ घृणा, कुछ क्रोध से)* मगधपति के स्वागत के लिए?...भद्रे...

अंबपाली : *(हँसकर)* रुकती क्यों है, बोल। आज का सब कहा-सुना माफ़!

चयनिका : *(चुपचाप अंबपाली का चेहरा घूर रही है।)*

अंबपाली : हाँ रे, मगधपति के स्वागत के लिए! राजनर्तकी अपने स्वागत से किसी आगत को कैसे वंचित कर सकती है? हाँ, स्वागत-स्वागत में फ़र्क है। दीपशिखा भी तो पतंग का स्वागत करती है। और उनके स्वागत के दो ही नतीजे होते हैं – या तो पतंग जलेगा, या दीपक बुझेगा। जिस दीपक ने बुझना तय कर लिया, उसकी शिखा जितनी भी तेज़ रहे, उतना ही अच्छा!

चयनिका : *(भर्राई आवाज़ में)* फिर यह आप क्या कह रही हैं, भद्रे

अंबपाली : चयनिके, अंबपाली तय कर चुकी है, जिसे वैशाली नहीं ह , उसे अंबपाली हराएगी, हराएगी या देख *(अँगूठी दिखाती है)* इस नृत को चूसकर अमर बन जाएगी। जो पताका हमारे वीरों ने रणभूमि में गिरा दी, आज अजातशत्रु देखेगा, इस मेरी रंगभूमि में वह कितनी ऊँची लहराती है।

[वह हाथ बढ़ाकर चयनिका की उँगली पकड़ती और उसे खींचकर ठुड्डी पकड़ चुमकारती है, उसके मस्तक पर चुंबन देती है — धुँधलका हो रहा है — एक परिचारिका वहाँ आकर दीप जला जाती है— एक ऊँचे चिरागदान पर कितनी ही दीप-शिखाएँ जगमगा उठती हैं — उनके प्रकाश में अंबपाली का सौंदर्य और चमक उठता है —

दूसरी परिचारिका इसी समय एक अँगूठी लाकर अंबपाली को देती है— अँगूठी पर वह नाम पढ़ती है और कहती है — 'जा, उन्हें बुला ला!' *अजातशत्रु आता है — साधारण नागरिक-सा वेश है उसका — अंबपाली आगे बढ़कर स्वागत करती और मंच पर बिठलाती है —* 'चयनिके! तू भी चली जा, यहाँ कोई न आए' *— कहकर बड़ी ही गंभीर मुद्रा में अजातशत्रु से पूछती है —]*

मगधपति की आज्ञा?

अजातशत्रु : मगधपति मत कहो, राजनर्तकी! मैं मगधपति की हैसियत से यहाँ नहीं आया। मगधपति इस वेश-भूषा में नहीं आया करते।

अंबपाली : क्षमा करें, मुझसे गलती हुई। मगधपति तो धनुष की टंकार और तलवारों की झंकार के साथ आया करते हैं।

अजातशत्रु : मगध को अपने धनुष और तलवार पर कम नाज़ नहीं है, राजनर्तकी! तुम्हारे व्यंग्य में भी सचाई है!

अंबपाली : सिर्फ़ एक बात कहना मैं भूल गई थी; क्षमा कीजिए तो निवेदन करूँ।

अजातशत्रु : तुम्हारे लिए हमेशा क्षमा है।

अंबपाली : क्योंकि मैं नारी हूँ और सुंदरी भी?

अजातशत्रु : तुम सुंदरी हो, इसमें भी सचाई है।

अंबपाली : *(ताने के स्वर में)* और इसमें भी सचाई है कि मगध को धनुष और तलवार के साथ ही अपने महामंत्री वस्सकार पर भी कम नाज़ नहीं।

अजातशत्रु : *(मुसकराते हुए)* तुम वस्सकार पर नाराज़ हो लो राजनर्तकी, लेकिन मंत्री वही है, जो विजय का पथ प्रशस्त करे!

अंबपाली : चाहे जिस घृणित उपाय से हो?

अजातशत्रु : विजय का पथ हमेशा ही कीचड़ से भरा और रक्त से सना होता है। जो गंदगी और खून से डरे, उसे सिर से मुकुट उतारकर हाथ में भिक्षा-पात्र लेना चाहिए।

अंबपाली : *(जैसे निशाना लेकर)* भगवान बुद्ध ने मागधपति को यही शिक्षा दी थी! क्यों?

अजातशत्रु : भगवान ने कुछ दूसरी ही शिक्षा दी थी। *(मुसकराते हुए)* किंतु, एक नन्ही-सी चीज़ ने सब बंटाढार कर दिया, राजनर्तकी! देखोगी वह चीज़?

अंबपाली : कैसी चीज़?

अजातशत्रु : *(हाथी-दाँत पर बनी अंबपाली की तसवीर निकालकर उसके हाथ में देते हुए)* यह है वह चीज़!

अंबपाली : *(आश्चर्यचकित)* ऐं, यह मैं? मेरी...

अजातशत्रु : हाँ; तुम्हारी इस छोटी-सी तसवीर ने ही फिर एक बार पीला कपड़ा उतार फेंकने को लाचार किया, एक बार फिर गंगाजल से धोए हाथों को खून से धोने को बाध्य किया!

अंबपाली : *(भौंचक बनी)* मगधपति!

अजातशत्रु : राजनर्तकी, मगधपति ने ज़िंदगी के इतने चढ़ाव-उतार देखे हैं कि उसने तय कर लिया था – शेष जीवन वह गृध्रकूट पर ध्यान लगाते राजगृह में बिता डालेगा; या राजपाट की झंझटों को दूर फेंक बोधिवृक्ष की छाया में शांति-सुख प्राप्त करने को एक दिन प्रस्थान कर देगा। किंतु, उसके सारे मंसूबे हवा हो गए – उसे छल की शरण लेनी पड़ी, बल का प्रयोग करना पड़ा। किसके चलते? क्यों? इसी छोटी-सी तसवीर ने... *(मुसकराता है।)*

अंबपाली : तो आप राज्य के लिए वैशाली नहीं आए, सौंदर्य के लिए वैशाली आए हैं।

अजातशत्रु : तुमने बिलकुल ठीक कहा।

अंबपाली : सौंदर्य, जो राज्य से भी क्षणिक है!

अजातशत्रु : सौंदर्य, जो राज्य से भी अधिक प्रलोभक, मोहक और आकर्षक है। हर दिव्य वस्तु क्षणिक होती है, राजनर्तकी! फूल की मुसकान, चपला की चमक, इंद्रधनुष की रंगीनियाँ और ओस की चमचमाहट सब क्षणिक है! क्षणिकता दिव्यता की अनुचरी ही नहीं, सहचरी भी है।

अंबपाली : और, मानवता की महत्ता इसी में है कि क्षणिक के पीछे दौड़ा जाए?

अजातशत्रु : क्षणिक के पीछे नहीं, दिव्य के पीछे। हर अच्छी चीज़ के पीछे उसका बुरा पहलू होता है, राजनर्तकी! जन्म के पीछे मरण है, उल्लास के पीछे विषाद, उत्सव के पीछे मातम। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि ज़िंदगी और जश्न – जीवन और उत्सव – को भूलकर हम हमेशा शोक-सागर में गोते लगाते रहें – मातम मनाते रहें!

अंबपाली : *(घृणायुक्त व्यंग्य में)* और इस ज़िंदगी और जश्न के लिए हज़ारों आदमियों का खून बहाएँ, हज़ारों माताओं को निपूती बनाएँ, हज़ारों

युवतियों का सुहाग-सिंदूर धोएँ और हज़ारों मासूम बच्चों की ज़िंदगी को आँसुओं में डुबोएँ!

अजातशत्रु : हाँ, हाँ। राजनर्तकी, इन भावुकता की बातों से तुम अजातशत्रु के दिल को दहला नहीं सकतीं – बल्कि, ऐसा करके तुम उसके दिल में सोई उस राक्षसी को कुरेदकर जगाती हो, जिसे वह मुश्किल से सुला पाता है!

[वह अचानक उठकर खड़ा हो जाता है – इधर-उधर टहलने लगता है – आसमान की ओर बार-बार देखता है – अंबपाली कुछ देर तक उसकी भाव-भंगी देखती है – फिर नज़दीक जाकर कहती है –]

अंबपाली : मगधपति, आसन ग्रहण करें!

अजातशत्रु : नहीं, मुझसे बैठा नहीं जाएगा, सुंदरी!

अंबपाली : 'सुंदरी' कहकर मेरा अपमान न कीजिए।

अजातशत्रु : हाँ, हाँ, समझा, समझा! *(हँसकर)* सुंदरी का आग्रह कोई कैसे टाल सकता है? अच्छा, आओ बैठें। *(अजातशत्रु बैठ जाता है – किंतु अंबपाली खड़ी ही रहती है – अजातशत्रु कहता है –)*

बैठो, सुंदरी!

अंबपाली : क्या नारी सिर्फ़ सुंदरी ही होती है?

अजातशत्रु : हाँ, जो सुंदरी नहीं है, वह नारी नहीं है। ठीक उसी तरह कि जो वीर नहीं है, वह मर्द नहीं है।

अंबपाली : नारी वीर भी हो सकती है!

अजातशत्रु : और मर्द सुंदर भी हो सकते हैं। लेकिन इन दोनों को प्राकृतिक गड़बड़झाला ही समझो, सुंदरी!

[अंबपाली आँखें गड़ाकर अजातशत्रु के चेहरे को देखती है – उसके शीतला के दाग से भरे चेहरे पर अजीब क्रूरता दिखाई पड़ती है – अंबपाली को यों घूरते देख वह हँसकर बोलता है –]

क्यों? मैं कुरूप हूँ, यही न देख रही हो?

अंबपाली : इसके पीछे की चीज़ भी।

अजातशत्रु : तुम मुखमुद्रा पढ़ सकती हो?

अंबपाली : आप शस्त्र चला सकते हैं?

अजातशत्रु : आहा! *(ज़ोरों से हँसकर)* तुम जैसी राजनर्तकी पाकर कोई भी राजसभा धन्य हो सकती है।

अंबपाली : *(उसका अभिप्राय भाँपकर)* आप यों मेरा अपमान नहीं कर सकते।

अजातशत्रु : मैं तुम्हें सम्मान देने आया हूँ। वैशाली-विजेता आज वहाँ की राजनर्तकी अंबपाली से...

अंबपाली : *(बीच ही में बात काटकर)* प्रणय की भीख माँगने आया है! क्या, यही न कहना चाहते थे?

अजातशत्रु : बिलकुल ठीक! उफ़, तुम कितनी बुद्धिमती हो, सुंदरी!

अंबपाली : अंबपाली प्रशंसा की भूखी नहीं है, मगधपति! और वह प्रशंसा भी वैशाली-विजेता के मुँह से! ऐसी प्रशंसा को वह लानत समझती है। घोंसले को उजाड़नेवाले बहेलिए से चिड़िया चुमकार सुनना पसंद नहीं करती।

अजातशत्रु : हाँ, पहले पंख फटकारती है, चंगुल और चोंच चलाती है; लेकिन पीछे पालतू बनकर हाथ पर खेलती है, कंधे पर फुदकती है और सिर पर घोंसला बनाती है। क्यों? *(अजीब उपेक्षा भाव से हँसता है।)*

अंबपाली : *(तमककर)* कोई ऐसी चिड़िया भी हो सकती है, जो पंख पटककर मर जाना पसंद करेगी, लेकिन बहेलिए का अहसान न लेगी।

अजातशत्रु : ऐसी चिड़िया आज तक नहीं देखी गई।

अंबपाली : आदमी सिर्फ़ चिड़िया नहीं है।

अजातशत्रु : मगधपति साधारण आदमी नहीं है।

अंबपाली : अंबपाली भी साधारण नारी नहीं है।

अजातशत्रु : तुम क्या बोल रही हो, सुंदरी?

अंबपाली : आप क्या चाह रहे हैं मगधपति?

अजातशत्रु : मैं क्या चाहता हूँ, इसे कहने की ज़रूरत रह गई? तो सुनो *(दर्प से)* अंबपाली वैशाली-विजेता की राजनर्तकी बनेगी, उसे राजगृह चलने का निमंत्रण देने आया हूँ।

अंबपाली : और, अगर वह नहीं जाए?

अजातशत्रु : अजातशत्रु अगर-मगर नहीं जानता!

अंबपाली : उन्हें जानने को लाचार होना पड़ेगा।

अजातशत्रु : *(आवेश में)* क्या कहा?

अंबपाली : *(लापरवाही से)* मैंने कहा, मगधपति को सोचना पड़ेगा कि अंबपाली अगर मगध जाने को राजी न हुई तो वह क्या करेंगे!

अजातशत्रु : तुम नहीं जानती? *(भवें टेढ़ी करता है।)*

अंबपाली : ज़रा अपनी भवें सीधी कीजिए, मगधपति! यह हम नारियों का ही शृंगार है।

अजातशत्रु : *(आगबबूला होकर)* सँभलकर बोलो राजनर्तकी, तुम किसके सामने बोल रही हो।

अंबपाली : उसके सामने, जो मुझसे प्रणय-भिक्षा माँगने आया है। भिखारी को घमंड नहीं शोभता!

[फिर उचककर खड़ा हो जाता है – अजीब उसकी मुखमुद्रा हो रही है– वह बेचैनी से मंच पर टहलने लगता है – कुछ देर तक अंबपाली चुपचाप खड़ी रहती है – फिर विनम्रता के शब्दों में कहती है –]

मगधपति!

अजातशत्रु : *(कुछ जवाब नहीं देता, टहलता रहता है।)*

अंबपाली : मगधपति से मेरा निवेदन है, आसन ग्रहण करें।

अजातशत्रु : *(रुककर, उसके चेहरे पर आँख गड़ाकर)* सुंदरी, तुम्हें याद रखना चाहिए कि वैशाली-विजेता से बात कर रही हो!

अंबपाली : वैशाली-विजेता पर भी जिन्होंने विजय प्राप्त की थी, उनसे भी अंबपाली ने इसी तरह ही बात की थी।

अजातशत्रु : *(चौंककर)* कौन है, जिसने मुझ पर विजय प्राप्त की थी? अजातशत्रु अजेय है राजनर्तकी!

अंबपाली : आह! आदमी अभिमान में अपने-आपको इतना भूल जाता है!

अजातशत्रु : *(आँख गुरेरता है।)*

अंबपाली : मेरा मतलब भगवान बुद्ध से था, मगधपति!

अजातशत्रु : *(कुछ ठंडा पड़ते हुए)* ओहो, अब समझा! हाँ, सुना था, भगवान बुद्ध तुम्हारे आम्रकानन में ठहरे थे। उनसे तुम्हारी बातें हुई थीं?

अंबपाली : सिर्फ़ एक संध्या को नहीं, सात दिनों की सात संध्याएँ उनसे बात करने में मेरी गुज़रीं।

अजातशत्रु : फिर क्या हुआ?

अंबपाली : वही, जो दो समान बलशाली व्यक्तियों की ज़ोर-आज़माई के बाद होता है!

अजातशत्रु : *(आश्चर्य से)* समान बलशाली?

अंबपाली : जी, हाँ। बल सिर्फ़ तलवार और धनुष में नहीं है। मगधपति, कुछ ऐसी ताकतें भी हैं जिनके सामने तलवारें मोम की तरह गल जाती हैं और धनुष तिनके की तरह टूट जाते हैं। आप क्या भगवान बुद्ध के निकट धनुष और तलवार लेकर गए थे?

अजातशत्रु : *(कुछ बोलता नहीं, सोचता है।)*

अंबपाली : *(मुसकराती हुई)* और अंबपाली के पास भी तलवार और धनुष लेकर नहीं आ सके।

अजातशत्रु : तुम इस भ्रम में न रहो कि मैं निःशस्त्र हूँ।

अंबपाली : भगवान बुद्ध ने भी यह कभी न सोचा होगा कि मगधपति साधनहीन होने के कारण उनके पास निःशस्त्र गए थे।

अजातशत्रु : तुम अजीब नारी हो, अंबपाली।

अंबपाली : भगवान बुद्ध ने भी यही कहा था।

अजातशत्रु : उन्होंने और क्या कहा था?

अंबपाली : उनसे मेरी बातें अभी रह गई हैं – वह फिर वैशाली पधारेंगे।

अजातशत्रु : अंबपाली, राजगृह चलो। वहीं गृध्रकूट पर भगवान के दर्शन करना।

अंबपाली : मगधपति, अपने को धोखे में मत रखिए। आप मुझे गृध्रकूट पर भगवान के दर्शन कराने के लिए आमंत्रित करने नहीं आए। भगवान और गृध्रकूट का दिव्य संदेश आपने सुना होता, तो आप यहाँ इस रूप में आते ही नहीं। यहाँ पर आपको बोधिवृक्ष की छाया नहीं, मार की आँधी उड़ा ले आई है। लेकिन सोचिए, सम्राट! जिसकी एक छोटी-सी तसवीर ने आपके शरीर से पीला वस्त्र उतरवाया, नरसंहार पर उतारू कराया, उसका वहाँ सशरीर जाना आपके, राजगृह के और मगध के लिए, क्या मंगल की बात हो सकती है?

[अंबपाली की यह बात सुन वह थोड़ी देर असमंजस में पड़ जाता है; लेकिन फिर जैसे सँभलकर बोलता है।]

अजातशत्रु : मैं अकेला लौट नहीं सकता। *(उसकी आवाज़ भर्राई हुई है।)*

अंबपाली : सभी यही कहते हैं, सभी यही चाहते हैं, लेकिन, एक दिन सभी को अकेले लौटना होता है मगधपति! यही होता आया है, यही होता रहेगा। आपसे पहले एक और मगधपति ने ऐसा ही कहा था...

अजातशत्रु : एक और मगधपति ने? यह दूसरा मगधपति कौन?

अंबपाली : क्या उनकी तसवीर देखिएगा? *(वह झटपट एक मंजूषा से एक तसवीर निकालती और अजातशत्रु को दिखाती है।)*

अजातशत्रु : यह तसवीर तुम्हें कहाँ मिली नर्तकी!

अंबपाली : और आपको वह तसवीर कहाँ मिली मगधपति! मगधपति, आप घबराएँ नहीं; राजनर्तकी का द्वार सबके लिए खुला है! हम यों ही कभी एक जगह अचानक मिलते हैं और यदि हमने सही मार्ग पकड़ा, तो एक दिन हम सभी एक साथ होंगे – अनंत काल तक के लिए। सवाल सिर्फ़ क्षणिक और अनंत के बीच चुनाव का है, सम्राट!

[अजातशत्रु चुप हो जाता है – धीरे-धीरे टहलता है – किंतु, अब उसके चेहरे पर उत्तेजना या रोष की भयानकता नहीं, विषाद और पराजय की भावना है – वह अचानक जैसे कुछ निर्णय कर लेता है और कहता है –]

अजातशत्रु : अंबपाली, तुमने मुझे पराजित किया, मैं आज ही वापस जा रहा हूँ!

अंबपाली : वैशाली-विजेता अंबपाली को यह श्रेय दे रहे हैं, यह उनकी कृपा है!

अजातशत्रु : अजातशत्रु के हृदय में दया, ममता, कृपा, कृतज्ञता आदि कोमल भावनाएँ नहीं हैं, राजनर्तकी! यह सिर्फ़ जय जानता है और अपनी पराजय को जय मानने की क्षुद्रता इसमें नहीं है। लेकिन याद रखना, अजातशत्रु पराजय नहीं बर्दाश्त कर सकता। मुझे वैशाली-विजय को फिर आना पड़ेगा –

अंबपाली : आइएगा, पर अब पहले महामंत्री वस्सकार को नहीं भेजिएगा, सम्राट!

अजातशत्रु : अब उसकी ज़रूरत नहीं रह गई, अंबपाली! वैशाली-विजय का पथ तो प्रशस्त हो चुका है!

[वह झपटकर, तेज़ी से, वहाँ से चल पड़ता है – अंबपाली उसकी पीठ को एकटक देखती रह जाती है – उसके मुँह से शब्द नहीं निकलते, लेकिन उसकी आँखें पुकार-पुकारकर कह रही हैं, यह अजीब पुरुष है!]

चौथा अंक

1

[रात का सन्नाटे का आलम --

वैशाली का एक प्रांतर — बाँस का झोंपड़ा, जिसके आगे बाँस से ही घिरा एक आँगन— झोंपड़े के बरामदे पर एक चिराग टिमटिम कर रहा — झोंपड़े के भीतर भी रोशनी—

झोंपड़े के भीतर, दरवाज़े के सामने, एक खाट पर अरुणध्वज पड़ा है — समूचा शरीर ढँका, सिर्फ़ सिर उघार — बाल बिखरे, चेहरा सूखा, गाल पिचका — नाक कुछ असाधारण तौर से उभर आई — धँसी आँखें बंद —

जिस दिन वैशाली में मगध-सेना घुसी, यह घायल हुआ — जो तीर अंबपाली की ओर आ रहा था, इसी ने अपने ऊपर ले लिया था —

ज़ख्म बढ़ता ही गया — रात-दिन बुखार में रहता है — मधूलिका की लाख कोशिश करने पर भी हालत नहीं सुधरी — आज उसकी हालत सब दिनों से खराब है —

उसके सिरहाने मधूलिका बैठी, अँगुलियों से उसके बालों को सहला रही है — उसके चेहरे से करुणा टपकी पड़ती है — कई दिन के उपवास और अनिद्रा ने चेहरे पर स्याही-सी पोत दी है —

कभी-कभी अरुण की आँखें खुलती हैं — वह छत की ओर देखता है, फिर मधूलिका की ओर देखता है — रह-रहकर हलकी-सी आह उसके गले से निकलती है और आँखें बंद हो जाती हैं —

उसकी आँखें बंद होते ही मधूलिका की आँखों से बड़े-बड़े मोती के दाने-से आँसू टपक पड़ते हैं – किंतु, वह तुरत सँभल जाती है, जिसमें अरुण आँखें खोले, तो उसे आँसू नहीं दीख पड़ें – चिकित्सक कह गए हैं, ज़रा-सा मानसिक धक्का इसकी बिगड़ी हालत को और खराब कर सकता है –

एक बार अरुण आँखें खोलते ही कहता है – 'मधु, पानी' *– मधूलिका झट खाट की बगल में रखी सुराही से कटोरे में पानी ढालकर उसे पिलाती है – पानी पीने के बाद अरुण कहता है –]*

अरुणध्वज : मधु, अब रात कितनी है?

मधूलिका : अभी तीसरा पहरुआ जाग दे गया है।

अरुणध्वज : आह, भोर न जाने कब होगी?

मधूलिका : बस, अब भोर ही तो होगी, घबराओ नहीं।

अरुणध्वज : *(छत की ओर टकटक देखते)* देखती है, मधु? देख, देख, माँ बुला रही हैं।

मधूलिका : यह क्या बोल रहे हो?

अरुणध्वज : हाँ, हाँ, माँ बुला रही हैं – कल मेरी शादी होगी...

मधूलिका : ऊपर मत देखो, आँखें मूँद लो।

अरुणध्वज : आँखें मूँद लूँ? माँ से आँखें मूँद लूँ। पगली, वह मेरी शादी के सपने देखती स्वर्ग गईं। स्वर्ग में मेरे लिए एक दुलहन खोज रखी है उन्होंने। और उनसे आँखें मूँद लूँ?

मधूलिका : सो जाओ, ज़ोर से मत बोलो। वैद्यजी ने कहा है, ज़ोर से बोलने पर ज़ख्म का टाँका टूट जाने का डर है – गले का ज़ख्म है न!

अरुणध्वज : टाँका टूटेगा, तो क्या होगा, रे!

मधूलिका : चुप हो अरुण, सो जाओ।

[मधूलिका उसके बालों में फिर हाथ सहलाने लगती है – अरुण आँख मूँद लेता है – मर्मांतक पीड़ा दबाने की कोशिश की बेचैनी और बेकली उसकी पेशानी पर झलक रही है – मधूलिका की आँखों से आँसू टपकते हैं – थोड़ी देर तक आँखें मूँदे रहता फिर अरुणध्वज आँखें खोलता और मधु से पानी माँगता है – मधूलिका पानी पिलाती है – पानी पीकर छत की ओर देखता, बोलता है –]

अरुणध्वज : मधु, देख! वह माँ क्या कह रही हैं?

मधूलिका : चुप रहो अरुण, वहाँ माँ नहीं हैं।

अरुणध्वज : माँ नहीं हैं? क्या कहा, माँ नहीं हैं? माँ नहीं हैं, तो वह कौन है, रे! *(ऊपर)* क्यों माँ तू नहीं है? *(मधु से)* देख, वह माँ ही तो हैं। पहचान, पहचान –

मधूलिका : चुप रहो, अब अंबा आती होगी।

अरुणध्वज : *(रूठे की आवाज़ में)* अंबा आती होगी! हाँ-हाँ, तू रोज़ मुझे ठगती है– 'चुप रहो, अंबा आती है; चुप रहो, अंबा आती है' – मैं हर बार चुप होता हूँ, किंतु अंबा कहाँ आई?

मधूलिका : इस बार ज़रूर आएगी, तुम चुप तो होओ।

अरुणध्वज : क्यों मधु, अंबा शादी नहीं करेगी? आती है, तो कहना, वह भी स्वर्ग चले। हम तीनों वहीं शादी करेंगे। शादी करेंगे! निश्चिंत सोएँगे! *(अचानक उत्तेजित होकर)* देख मधु, वह अंबा पर तीर...तीर आ रहा है रे, तीर...तीर! *(चिल्लाता है, उठने की कोशिश करता है।)*

मधूलिका : *(उसे पकड़कर सुलाती हुई, तेज़ी से)* तुम नहीं सोओगे? मैं ज़हर खाकर रहूँगी।

अरुणध्वज : ज़हर! *(बेचैनी प्रकट करते हुए)* नहीं, नहीं मधु, मैं सोता हूँ, तू ज़हर मत खा, मधु! तेरे बिना मुझे कौन देखेगा? *(ज़ख्म पर हाथ ले जाते)* आह, दर्द! उफ़!!

मधूलिका : ज़रा दवा ले लो। *(दवा पिलाती है।)*

अरुणध्वज : *(दवा पीकर)* मौसी कब आवेगी मधु?

मधूलिका : वह आती ही होंगी। मैंने रथ भिजवाया है कि वह तुरत रातोंरात आ जाएँ। अब पहुँचती ही होंगी।

अरुणध्वज : तू यह क्या पिला देती है, मधु! मुझे नींद आ रही है। मौसी आवें, तो जगा देना।

[वह आँखें मूँद लेता है – थोड़ी देर बाद उसे नींद आ जाती है – मधूलिका घर से बाहर आती है – रथ का घर्र-घर्र शब्द होता है – मधूलिका उधर चौकन्ना होकर देखती है – देखती है सुमना के साथ अंबपाली आँगन में घुस रही है –]

मधूलिका : तू! *(लपकती हुई)* तू? तू कहाँ से अंबे?

अंबपाली : *(मधूलिका से लिपट जाती है)* तूने मुझे खबर क्यों न की मधु? उफ़, अरुण कहाँ है?

मधूलिका : ज़ोर से मत बोल, उसे अभी नींद आई है।

अंबपाली : सुना कि तू इतने दिनों से यहाँ है? अरुण को यह क्या हुआ? कैसा है वह ज़ख्म?

मधूलिका : यह सब मत पूछ अंबे! दुनिया की यही रीत है। ज़मीन पर अकेला चकोर तड़पता है, आसमान में तारों से घिरा चाँद हँसता है। सबकी अपनी-अपनी तकदीर होती है!

अंबपाली : यह तू क्या बोल रही है, मधु?

मधूलिका : हाँ, अपनी-अपनी तकदीर! तू राजनर्तकी बनी, अरुण पागल बना, मैं भिखारिन बनी। अब अरुण जा रहा है...*(उसकी आँखों से टपटप कुछ बूँदें गिर पड़ती हैं।)*

अंबपाली : हाय, यह क्या? मुझे उसे देखने दे मधु?

मधूलिका : दूसरी गलती मत कर अंबे! वैद्यजी कह गए हैं, अधिक उत्तेजना होने से ज़ख्म का टाँका टूट जाने का डर है। कंठ का ज़ख्म है, अब खून जारी हुआ, तो फिर उसका बचना...

अंबपाली : कंठ का ज़ख्म! यह क्या हुआ? कैसे हुआ?

मधूलिका : यह भी तेरे ही चलते।

अंबपाली : मेरे चलते?

मधूलिका : हाँ, राजनर्तकी बनने से ही तेरा मन न भरा, तो उस दिन तुझे वीरांगना बनने का शौक हुआ था न? उस वैशाली की चढ़ाई के दिन? तेरा वह व्याख्यान? पागल अरुण ने ज़िद की, मुझे घोड़ा मोल ले दो, मैं लड़ूँगा। वह लड़ाई में गया। हमेशा तेरे पीछे-पीछे लगा रहा। शायद एक तीर तुझ पर चला था?

अंबपाली : *(रोती हुई)* अरे, वह अरुण था! हाय-हाय, मैं ही उसकी मृत्यु की वजह... तूने मुझे खबर क्यों न की मधु? आह!

मधूलिका : न खबर की, न करती। *(सुमना से)* मौसी, आपने यह क्या किया? आपको सीधे यहाँ आना था।

सुमना : मैं क्या जानूँ, मधु! मातृत्व मुझे पहले अंबा के घर घसीट ले गया। इसने पूछा, कहाँ? मैंने कहा, मधु ने बुलाया है। तेरा नाम सुनकर ही चौंकी और अरुण की बीमारी का हाल सुनते ही तेरे भेजे रथ पर यहाँ चली आई! विधाता, यह क्या सुन रही हूँ, देख रही हूँ? *(उसका गला भर आता है।)*
[इसी समय घर से कराह की आवाज़ आती है —तीनों चुप हो जाते हैं— 'तुम दोनों बरामदे पर ठहरो' *कहकर मधूलिका दौड़कर भीतर जाती है—]*

अरुणध्वज : पानी, मधु।

मधूलिका : *(पानी देती)* पी लो।

अरुणध्वज : *(पानी पीकर)* अब भोर में कितनी देर है मधु?

मधूलिका : भोर होने ही जा रही है।

अरुणध्वज : मौसी भी नहीं आई?

मधूलिका : अच्छा बुला लाती हूँ, रथ आ गया है, वह पहुँच गई हैं।
[मधूलिका बरामदे पर जाती है – अंबपाली को इशारे से ठहरने और चुप रहने को कह सुमना को लिए वह घर में जाती है – अंबपाली अपने कान टट्टी से लगाए बरामदे पर खड़ी है – सुमना को देखते ही अरुण का चेहरा खिल पड़ता है –]

अरुणध्वज : मौसी, मौसी, प्रणाम!

सुमना : आह, बेटा! *(वह अरुण से लिपटती और उसका माथा चूमती है।)*

अरुणध्वज : मौसी, कल मेरी शादी है, तुम अच्छी आई।

सुमना : *(चुप, आँखों में आँसू)*

अरुणध्वज : तुम रोती हो मौसी? मेरी शादी है, और तुम रोती हो! देखो, *(छत की ओर उँगली उठाकर)* वह माँ स्वर्ग से बुला रही हैं। वहीं शादी होगी! तुमने भी कहा न था मौसी, अरुण तू सयाना हुआ, वधू क्यों नहीं लाता?

मधूलिका : मुझसे वादा कर चुके हो न? चुपचाप सोओ, अरुण!

अरुणध्वज : मौसी, मौसी! तुम भी स्वर्ग चलो! मैं चलता हूँ, मधु चलती है, तुम भी चलो! *(छत पर नज़र ले जाकर)* माँ, मैं आया! माँ! आया...आया! *(दोनों हाथ ऊपर फैला देता है)* मौसी, मौसी, छोड़ो मौसी! माँ बुला रही हैं – माँ...माँ...माँ... *(चिल्लाने लगता है, उठने की कोशिश करता है।)*

मधूलिका : *(आँसुओं की धारा में)* अंबा आ रही है अरुण! शांत हो, चुप हो!

अरुणध्वज : *(अंबा का नाम सुनते ही पूर्व-सा ही फिर सहसा शांत होकर)* अंबा आ रही है, मधु? मौसी, अंबा आ रही है?...नहीं, नहीं, अंबा नहीं आएगी...अंबा...मौसी, माँ कहती है, मेरी दुलहन अंबा जैसी है...अंबा

जैसी (मुसकराता है)...नहीं, नहीं, अंबा नहीं आएगी...वह क्यों आए?...वह राजनर्तकी है – 'मधु, मैं राजनर्तकी !अरुण, मैं राजनर्तकी !'...नहीं, अंबा नहीं आएगी?

मधूलिका : मैं कह रही हूँ, तुम ज़रा चुप हो रहो – अंबा आई है ।

अरुणध्वज : *(फिर मुसकराता)* अंबा आई है।...अंबा...आई है! *(चौंककर दरवाज़े की ओर इशारे करता)* हाँ, हाँ, अंबा आई तो...वह अंबा आई...अंबा! अरे, यह क्या? मधु...मधु..मधु... तीर...तीर...अंबा की ओर तीर, ...अंबा की ओर तीर, बचा रे, बचा...तीर... तीर...तीर...

[आँखें फाड़ता चिल्लाता, वह पूरे ज़ोर से उठना चाहता है – मधुलिका और सुमना उसे पकड़ती हैं – दोनों स्त्रियों की आँखों से आँसू बह रहे हैं – इधर इन बातों को सुनकर बरामदे पर अंबपाली ज़ार-बेज़ार हो रही है, उसे हिचकियों पर हिचकियाँ आ रही हैं – लेकिन मुँह से आवाज़ नहीं निकलने देती ।]

सुमना : बेटा, अरुण बेटा ।

अरुणध्वज : *(कुछ शांत होकर)* मौसी...माँ!...मौसी, माँ! माँ, माँ...मौसी, मौसी... *(जैसे फिर वायु का दौरा आ जाए)* देखो, देखो मौसी, अरे, तीर, तीर... अंबा पर, अंबा पर...तीर...तीर...छोड़ो मौसी...छोड़ मधु...तुम नहीं छोड़ती...तू नहीं छोड़ती...छोड़...छोड़...

[अचानक न जाने उसमें कहाँ से ताकत आ जाती है – वह दोनों औरतों को झटके दे देता है और आधा खड़ा हो जाता है – फिर दोनों उससे लिपट जाती हैं – इतने में मधुलिका का ध्यान उसकी गरदन पर जाता है – टाँका टूट जाने से गरदन की पट्टी पर खून की धारा बही जा रही है – मधूलिका चीख उठती है –]

मधूलिका : मौसी, खून। टाँका टूट गया मौसी! हाय! अंबे, अंबे! वैद्य-वैद्य!
[अब अंबपाली से नहीं रहा जाता है – वह घर में घुसती है और 'अरुण-अरुण' चिल्लाती उससे लिपट जाती है – अरुण अंबपाली की आवाज़ सुनते ही ढीला पड़ जाता है, उसको देखते ही, उसकी आँखें चमक पड़ती है – वह बिछावन पर लेट जाता है और उसके मुँह से निकल पड़ता है –]

अरुणध्वज : अंबे, अंबे!

अंबपाली : अरुण, हाय अरुण!

मधूलिका : *(खून से लथपथ पट्टी पर हाथ रखे)* अंबे, वैद्य ला अंबे। जा, जा– अंबे, अंबे!
[अंबपाली उठना चाहती है – अरुण उसका हाथ पकड़ लेता है – उस हाथ को वह अपनी छाती पर खींचकर ले जाता है – आँखों को मूँदते हुए धीमे-धीमे कहता है –]

अरुणध्वज : अंबे, तू आ गई...तू भी चल अंबे...चलेगी...चल *(धीरे-धीरे आँखें खोलते और छत की ओर देखते हुए)* देखती है अंबे... माँ बुला रही है...माँ...माँ...माँ...
[उसके होंठों पर मुसकान की रेखा खिंच जाती है – चेहरे पर एक ज्योति दौड़ जाती है – फिर खुली आँखें खुली ही रह जाती हैं और साँस का चलना एकाएक रुक जाता है – इस ओर सबसे पहले सुमना का ध्यान जाता है – वह चिल्ला उठती है –]

सुमना : हाय, हाय! यह क्या हुआ? अरुण! अरुण!

मधूलिका }
अंबपाली } : *(एक साथ ही)* अरुण! अरुण!

सुमना : *(उसकी नाक के सामने हाथ ले जाकर)* सर्वनाश अंबे! अरुण नहीं रहा मधु!

[सुमना और अंबपाली अरुण की लाश से लिपट जाती हैं और 'अरुण, अरुण' चिल्लाती हैं – लेकिन अचानक मधूलिका की मुखमुद्रा गंभीर हो जाती है – वह गंभीरता से बोलती है –]

मधूलिका : सुन, अंबे! *(ज़ोर से)* अंबे सुन!

अंबपाली : *(आँसुओं से भीगा चेहरा उठाती)* मधु, अरुण! हाय अरुण!...

मधूलिका : रोने-धोने से न बनेगा अंबे । मैं अब चली!

अंबपाली : मधु! मधु!!

मधूलिका : मधु, मधु, नहीं! मधु चली । यह तेरा बोझ था अंबे । इसकी ज़िंदगी मैंने ढोई, अब लाश तू ढो!

अंबपाली : मधु, मधु! यह क्या मधु? ओहो... *(रोती है।)*

मधूलिका : हाँ, जो ज़िंदगी नहीं ढोता, उसे लाश ढोनी पड़ती है अंबे! तू लाश ढो, तब समझ सकेगी, किसी की ज़िंदगी ढोना क्या चीज़ है! मैं चली मौसी, प्रणाम!

सुमना : बेटी । बेटी!

[मधूलिका झट घर से निकलती है – तीन-चार डग में ही वह आँगन में आ जाती है – 'मधु-मधु' *पुकारती अंबपाली उसके पीछे आती है – मधूलिका मुड़कर –* 'ज़िंदगी नहीं ढोई तो लाश ढो' *कहती आँगन से बाहर हो अंधकार में अंतर्धान हो जाती है।]*

2

[अंबपाली का सोने का कमरा – वह पलंग पर लेटी है – एक कोने में धुँधली रोशनी टिमटिम कर रही है – वह बार-बार करवटें बदलती और आखिर आँखें खोलती हुई उठ बैठती है – फिर पलंग के नीचे आकर टहलने लगती है –

थोड़ी देर टहलकर फिर पलंग पर जाती है और सोने की चेष्टा करती है – आँखें मूँदती, करवटें बदलती और हारकर नींद न आती देख, फिर पलंग से नीचे आती है – दीवार पर जो वीणा टँगी है, उसे लेकर बजाने लगती है –

उसका वेश बिलकुल शृंगार-भूषा से हीन है – बाल खुले, चेहरा उदास – करुणा की मूर्ति-सी वह दीख पड़ती है –]

अंबपाली : *(वीणा पर वह गाती है–)*

टूटते जब बीन के हैं तार!
उँगलियों का हो भले नर्तन,
कंठ का स्वर दे मनोहर स्वप्न,
ताल हो, लय हो,
मूर्च्छना हो, मीड़ हो, संगीत की जय हो!
किंतु, फिर उठती नहीं वह प्राणमय झंकार,
जो बहाती जगत में रस-धार,
और लाती ज़िंदगी में भावना का ज्वार!
प्रेम के गुंजार के बदले –
प्रकट होता विषम हाहाकार!
टूटते जब बीन के हैं तार!!

[गाते-गाते उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बही जा रही है – उसी समय चयनिका दरवाज़े से झाँकती और भीतर आती है – वह हौले पाँव आकर उसके पास खड़ी है और अंबपाली रोए और गाए जा रही है – जब गाना समाप्त होता है, चयनिका कहती है –]

चयनिका : देवी, आप अपने से, संसार से इतनी उदासीन क्यों हैं?

अंबपाली : अपने से उदासीनता, संसार से इतनी उदासीनता – दोनों का एक ही मतलब है, चयनिके! जब तक अपने से उदासीनता न हो, संसार से

उदासीनता हो ही नहीं सकती । और संसार के धक्के ही तो अपने से उदासीनता पैदा करते हैं। 'स्व' और 'संसार' का एक अजीब गोरखधंधा आदिकाल से चला आ रहा है! ये एक-दूसरे को प्रभावित किया करते हैं और इनकी क्रिया-प्रतिक्रिया के भँवर में मानव-मन तुच्छ तिनके-सा डूबता-उतरता रहता है! अंबपाली अब तक भँवर के ऊपर नाच रही थी, अब वह उसकी चपेट में गोते खा रही है।

चयनिका : लेकिन क्या अनुचरी को इतना भी हक नहीं है कि वह उस बात को जाने, जिसने वैशाली की राजनर्तकी के विशाल हृदय को भी यों व्यथित, द्रवित कर दिया है!

अंबपाली : तुम्हें सब कुछ जानने का अधिकार है, चयनिके! तू ही है, जिससे मन की बातें कहकर दिल हलका करती आई हूँ! लेकिन दुनिया में कुछ ऐसी बातें हैं, जो कही नहीं जा सकतीं और जिनको न सुनने में ही कल्याण है।

चयनिका : तो देवी रोया करें और मैं चुपचाप देखा करूँ? क्या मैं पत्थर की बनी हूँ, क्या मेरे हृदय नहीं? इससे तो अच्छा है, चयनिका की मुश्क बाँध दें, उसे तहखाने में डाल दें कि वह घुट-घुटकर वहीं मर जाए! *(उसका गला भर आता है, आँखें उमड़ पड़ती हैं।)*

[अंबपाली वीणा को पलंग पर रख देती और हाथ पकड़कर चयनिका को अपने निकट बैठाती है – फिर उसकी ठुड्डी हाथ में ले दुलारती हुई कहती है –]

अंबपाली : पगली, तू ऐसा करेगी, तो मेरी गति क्या होगी? जब नाव डूबती है तो सिर का घास का गट्ठर ही – तुच्छ तिनकों का वह समूह ही – उसके ढोनेवाले के प्राण का रक्षक सिद्ध होता है। कम-से-कम कुछ देर तक उसे पकड़कर वह अपने को बचाए रखता ही है। अंबपाली की नाव

टूट चुकी है, चयनिके! वह अपनी जल-समाधि स्पष्ट देख रही है – जल-समाधि या सम्यक् समाधि! *(सामने दीवार से सटी बुद्ध की मूर्ति पर उसकी नज़र जाती है और वह उसे सिर नवाती है।)*

चयनिका : *(आश्चर्यमुद्रा में)* तो क्या आप बौद्ध-धर्म स्वीकार करने जा रही हैं?

अंबपाली : अब समझ में आई है चुन्नी कि आदमी क्यों विराग लेता है, क्यों भिक्षु बनता है। कुछ लोग तो ऐसे होते हैं जो स्वभाव से ही दुनिया के रागरंग से परे होते हैं। उनका मन प्रशांत सागर होता है, जिसमें कितनी ही नदियाँ पानी डालें, जिसके ऊपर कितनी ही कलाओं से चंद्रमा चमके, लेकिन जिसमें न तो बाढ़ आती है, न तरंगें उठती हैं – *(उँगली से बुद्ध-मूर्ति को दिखाती)* देख, उस ओर! कैसी शाश्वत शांति! कामना या भावना की एक रेखा भी कहीं पाती है?

[वह अचानक रुक जाती है – छत की ओर देखती है – उसके भय-विस्फारित नेत्रों की टकटकी देख चयनिका काँप उठती है – देखते-देखते अंबपाली के गाल आँसुओं से तर हो जाते हैं – चयनिका घबराई हुई कहती है –]

चयनिका : आर्ये, आर्ये! यह आप क्या देख रही हैं?

अंबपाली : *(अपने को सँभालती, आँसू पोंछती हुई)* क्या देख रही थी! अच्छी बात है, चुन्नी, तू नहीं देख पाती। *(कुछ रुककर)* अच्छा, तूने किसी से प्रेम किया है, रे!

चयनिका : *(लज्जा से गड़-सी जाती है)* आर्ये!

अंबपाली : तू संकोच कर रही है। ठीक ही तो। इससे बढ़कर बेवकूफी का सवाल और क्या हो सकता है – 'तूने प्रेम किया है!' जैसे, प्रेम कहने की चीज़ हो। जो ज़बान पर आए, वह भी क्या प्रेम है! हमारे ऋषियों ने कहा है, सुकर्म को जिह्वा पर मत लाओ, जिह्वा पर अग्निदेव हैं, वह उसे जला

देंगे, भस्म कर देंगे। बहुत ही सही चयनिके! कोई भी पावन चीज़ जिह्वा पर नहीं लानी चाहिए! फिर प्रेम! जिह्वा अग्नि है, तो प्रेम बर्फ़। वह तो उसकी आँच से ही गल जाती है! राधा किसी से अपनी प्रेमव्यथा कहने गईं – हाँ उनका मूक प्रेम कितने कवियों की वाणी का शृंगार बन गया और अनंत काल तक बनता रहेगा । यही प्रेम की महत्ता है। इसी वैशाली में रहकर अरुण क्या अंबपाली से अपना प्रेम कहने आया और हमेशा उसके साथ छाया-सी घूमती हुई भी मधूलिका ने अरुण से अपना प्रेम कहा! *(उसका गला भर आता है।)*

चयनिका : भद्रे, यह सब आप क्या कह रही हैं?

अंबपाली : चुप रह चयनिके, चुप रह । मौसी ने कहा था, यह अभिमान नहीं, आत्मवंचना है, अंबे । अब उनके कथन की सचाई मालूम हो रही है। शृंगार, संगीत, उत्सव – ये सब क्या चीज़ें हैं, तू जानती है? यों ऊपर से देखने पर तो आत्म-प्रदर्शन के साधन मालूम होते हैं, लेकिन ज़रा गहरे जा, तो मालूम होगा, इनके द्वारा आदमी अपने को भुलाने की चेष्टा करता है। अपनी शारीरिक त्रुटि को शृंगार से ढँकना चाहता है, अपने हृदय के हाहाकार को वीणा की गुंजार में छिपाना चाहता है और अपने दुख-शोक को उत्सव मे विलीन करना चाहता है ।

चयनिका : *(सिसकियाँ भरती)* भद्रे...भद्रे!

अंबपाली : *(चेहरे से हाथ हटाती है, सारा चेहरा आँसू में भीगा है)* चुन्नी, चुन्नी... समझी, तू सोने को कहेगी! मेरी प्यारी बच्ची, तेरी आज्ञा सिर-आँखों पर! *(उसकी ठुड्डी पकड़ती और चूमती है)* लेकिन, चयनिके, अंबपाली के सोने के दिन चले गए। अब तो उसके कंधों पर एक थाती दे दी गई है! उफ् री निठुर थाती! *(फिर छत की ओर देखती)* मधु-मधु, तू यह क्या कर गई रे! मुझसे यह नहीं ढोई जाती है, मधु! 'जो

ज़िंदगी नहीं ढोता, उसे लाश ढोनी पड़ती है!' काश, तू जान पाती, मैंने ज़िंदगी भी लाश ही की तरह ढोई है!!

3

[वैशाली का कूटागार — एक ऊँचे टीले पर बना एक रमणीक विहार — विहार का पश्चिमी बरामदा — सूरज डूबने जा रहा — डूबते हुए सूरज की इस लाली से बरामदे का यह हिस्सा अजीब सुनहला लग रहा है — बरामदे की एक-एक चीज़ दिप-सी रही है — सूरज की ओर रुख किए ध्यानमग्न बैठे गोरे भगवान बुद्ध तो बिलकुल सोने की मूर्ति-से लग रहे हैं — शरीर में ज़रा भी स्पंदन तक नहीं अनुभव होता —

भगवान बुद्ध से थोड़ी दूर हटकर भिक्षु-प्रवर आनंद बैठे भगवान बुद्ध का चेहरा विमुग्ध होकर निहार रहे हैं —

अंबपाली आती है — बिलकुल सादा है वेश उसका — हौले-हौले भगवान के निकट पहुँच उन्हें सिर झुका मौन-ही-मौन प्रणाम करती और आनंद के इशारे पर कुछ दूर हटकर बैठ जाती है —

कुछ देर में भगवान बुद्ध आँखें खोलते हैं — सूरज की ओर देखते हैं — अंबपाली उठकर फिर उन्हें प्रणाम करती है — वह मुसकरा पड़ते हैं, कहते हैं —]

भगवान बुद्ध : आप आ गईं, भद्रे!

अंबपाली : हाँ, भगवान!

भगवान बुद्ध : आपका यह वेश?

अंबपाली : मैं देख चुकी भगवान, आदमी दो में से एक का ही शृंगार कर सकता है — तन का या मन का ।

भगवान बुद्ध : सबसे बड़ा सत्य वही है, भद्रे, जिस पर आदमी खुद अपने अनुभवों से पहुँचे ।

अंबपाली : लेकिन मेरे – ऐसे अनुभवों से पार होने का दुर्भाग्य किसी को भी प्राप्त न हो, भगवान!

भगवान बुद्ध : *(मुसकराते हुए)* वैशाली की राजनर्तकी और दुर्भाग्य!

अंबपाली : *(खिन्न स्वर में)* भगवान, मुर्दे को काँटों में मत घसीटिए । जो ज़िंदगी भर दीपशिखा-सी खुद जलती और दूसरों को जलाती रही, अगर उसकी भी ज़िंदगी सौभाग्य ही हो, तो फिर दुर्भाग्य कहेंगे किसे, भगवान?

भगवान बुद्ध : जब वासनाओं से विरक्ति आ जाए, तब समझना चाहिए, अंतर का देवता जग उठा!

अंबपाली : अंतर का देवता क्या है, मैं नहीं जानती, भगवान । हाँ, मेरे अंतर में आग लगी है; जो मुझे जला रही है, झुलसा रही है, यह अनुभव करती हूँ । हृदय मे जैसे चिनगारियाँ फूटती रहती हैं; नसों में, शिराओं में खून की जगह जैसे बिजली दौड़ती रहती है! जागरण, जैसे वृश्चिक-दंशन! निद्रा, जैसे शूल-शयन! यह ज़िंदगी है या मौत? *(कातरता से)* मुझे बचाइए, भगवान ।

भगवान बुद्ध : कोई किसी को बचा नहीं सकता, भद्रे! जहाँ आग की लपट है, उसके निकट ही पानी का झरना है । अशांति के कंटक-कानन में ही शांति की चिड़िया का घोंसला है । उस झरने, उस घोंसले को खुद खोजना होता है। दूसरा, ज़्यादा-से-ज़्यादा, रास्ता-भर बता सकता है ।

अंबपाली : जैसे इस मार्ग-दर्शन का कोई महत्त्व ही नहीं?

भगवान बुद्ध : है, तभी तो तथागत को घर छोड़कर जंगल-जंगल की खाक छाननी पड़ी । बड़ी तपस्या, बड़ी साधना के बाद उस मार्ग का पता लगाया है; लेकिन जो मार्ग उन्हें मालूम हुआ, उसका निष्कर्ष सिर्फ़ इतना ही है कि ऊपर का कोई देवता और नीचे का कोई आदमी किसी को निर्वाण या

मुक्ति नहीं दिला सकता । उस मार्ग पर स्वयं चलना होगा, दूसरा कोई उपाय नहीं ।

अंबपाली : आज उसी मार्ग की दीक्षा लेने आई हूँ, भगवान! मार्ग बताइए, मैं चलने को तैयार हूँ ।

भगवान बुद्ध : भद्रे, ज़रा सोचिए, आप यह क्या कह रही हैं?

अंबपाली : सोच चुकी हूँ, भगवान! अच्छी तरह सोच चुकी हूँ । याद है, आपने कहा था – तुम विचित्र नारी हो!

भगवान बुद्ध : *(मुसकराते हुए)* उसकी एक झलक आज भी देख रहा हूँ! निराशाएँ हमें कहीं भी उड़ा ले जा सकती हैं।

अंबपाली : सिर्फ़ निराशा की बात मत कहें, भगवान। निराशा का प्रतिकार अंबपाली जानती है । *अगर भगवान ने उस यात्रा में नर्तकी पर कृपा न की होती,* तो...*(रुक जाती है।)*

भगवान बुद्ध : तो क्या? ज़रा सुनूँ । *(फिर मुसकराते हैं।)*

अंबपाली : *(तेजस्विता के साथ)* जो कायर होते हैं, वे मोड़ पर रुक जाते हैं। जिनके हृदय में साहस है, वे एक पथ पकड़ते और चल देते हैं, चाहे वह पथ जहाँ ले जाए – स्वर्ग या नरक – ये एक ही सिक्के के दो रुख हैं, भगवान!

भगवान बुद्ध : *(गंभीरता से)* सिर्फ़ तेजस्विता बड़ी खतरनाक चीज़ है, आर्ये । उसके मुँह में साधना की लगाम होनी चाहिए, नहीं तो न जाने वह किस अंधगुफा में ले जाकर पटक देगी। राजनर्तकी, सावधान।

अंबपाली : *(प्रकृतिस्थ होकर)* जिसने एक बार प्रकाश की किरण देख ली, उसकी आँखें धोखा नहीं खा सकती हैं, भगवान । इसी से आज वैशाली की राजनर्तकी भिक्षुणी बनने को भगवान के चरणों की शरण में आई है। *(घुटने टेककर सिर झुका लेती है।)*

भगवान बुद्ध : *(साश्चर्य)* भिक्षुणी बनने को।

अंबपाली : हाँ, अंबपाली ने तय कर लिया है कि अब वह अपना शेष जीवन धर्ममार्ग पर चलने और धर्म का संदेश घर-घर पहुँचाने में ही बिताएगी?

भगवान बुद्ध : लेकिन तथागत के धर्मसंघ में भिक्षुणी का विधान नहीं।

अंबपाली : क्या कहा भगवान ने? भगवान के धर्ममार्ग में नारियों के लिए स्थान नहीं।

भगवान बुद्ध : नारियों के लिए स्थान नहीं, ऐसा नहीं कह सकते । हर आदमी – स्त्री-पुरुष – तथागत के धर्ममार्ग पर चल सकता है । लेकिन, नारियों के लिए भिक्षुणी बनना...

अंबपाली : *(उत्तेजना में बीच ही में बात काटकर)* उचित नहीं है, यही न कह रहे थे भगवान? क्या मैं पूछ सकती हूँ, क्यों उचित नहीं है?

भगवान बुद्ध : उत्तेजित मत हो भद्रे! हर क्यों का जवाब नहीं होता ।

अंबपाली : लेकिन, जिस बात का संबंध किसी की ज़िंदगी से है – उसके अस्तित्व की 'हाँ ' और 'ना' से है, उसे हक हासिल है कि वह ऐसा सवाल करे और यह उचित है कि उसे जवाब दिया जाए।

भगवान बुद्ध : आपको मालूम ही होगा, देवी प्रजावती और राहुल माता यहाँ आई हुई हैं ।

अंबपाली : देवी प्रजावती धन्य हैं जिन्हें भगवान की मौसी होने और उन्हें गोद खिलाने का सुअवसर मिला और राहुल माता यशोधरा तो इतिहास में अमर ही हो चुकीं ।

भगवान बुद्ध : इन दोनों ने भी यही इच्छा प्रकट की थी, किंतु तथागत ने उन्हें 'नाही' कह दी ।

अंबपाली : आपने 'नाही' की होगी भगवान! यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। हमेशा से अपने पर अत्याचार होता आया है – साधारण जनों द्वारा

और महात्माओं द्वारा भी। लेकिन, भगवान जिस आसानी से देवी प्रजावती और यशोधरा को 'ना' कह सकते थे और वे मान जा सकती थीं, उतनी आसानी से न तो आप अंबपाली को 'नाही' कह सकते हैं और न उसे मना सकते हैं!

भगवान बुद्ध : लेकिन मेरी लाचारी जो है?

अंबपाली : क्या अभागी अंबपाली से भी बढ़कर? *(उसाँसें लेती है।)*

भगवान बुद्ध : आपकी लाचारी?

अंबपाली : *(सहसा उसके चेहरा पर विषाद छा जाता है, आँखें भर आती हैं, गला भर्रा जाता है)* भगवान, मत कहलाइए! आपसे छिपा क्या है? दिन-रात लाश ढोते-ढोते तंग आ चुकी । जब तक जगी रहती हूँ, उसके बोझ से कंधा टूटता, दम फूलता रहता है । एक तो दर्द के मारे नींद नहीं आती, यदि कदाचित आई, तो कंधे का बोझ सीने पर होता है! साँस घुटने लगती है, कलेजा फटने लगता है । चिल्लाना चाहती हूँ, आवाज़ नहीं निकलती, घिग्घी बँध जाती है। व्याकुलता की पराकाष्ठा में जब नींद टूटती है, तो बिछावन, तकिया, सब तर-ब-तर पाती हूँ! भगवान, भगवान, मुझे... *(अपनी हथेली से मुँह ढँककर हिचकियाँ लेती है।)*

भगवान बुद्ध : धीरज, भद्रे, धीरज!

अंबपाली : *(भर्राई आवाज़ में ही)* धीरज की भी हद होती है, भगवान! आह, वही धीरज विधाता नारियों के दिल में दिए होता, जिसे पुरुषों के हृदय में इतनी प्रचुरता से दिया है । जिस आसानी से भगवान राहुलमाता को प्रसूतिगृह में छोड़ भागे, उसी आसानी से राहुलमाता भगवान की 'ना' के बाद भी उन्हें छोड़ पातीं!

भगवान बुद्ध : भद्रे, भावना पर यों न बहें; विवेक से काम लें । ज़रा सोचें — तथागत के धर्म का मध्यम मार्ग तो सबके लिए खुला है, लेकिन जहाँ तक भिक्षुसंघ की बात है...*(रुक जाते हैं।)*

अंबपाली : धर्म का मध्यम मार्ग तो समझी, लेकिन उसका मतलब मार्ग के मध्य में जाकर रुकना नहीं हो सकता, भगवान! फिर अंबपाली जिस राह पर चलेगी, पूरी चलेगी! मध्य में रुक नहीं सकती! बहुत धोखा खा चुकी हूँ भगवान; अब मैं अपने को ज़्यादा धोखा नहीं दे सकती!

भगवान बुद्ध : तब!

अंबपाली : मुझसे मत पूछिए, मुझे इस लाश को उतारना पड़ेगा, भगवान! या तो इसे पीला वस्त्र उतार सकता है, या ...*(अचानक वह अधर की ओर निर्निमेष दृष्टि से देखने लगती है)* देखिए, भगवान, वह देखिए! मैं बचपन से ही सपने देखती आ रही हूँ, लेकिन, दिन-रात यह सपने का दृश्य! उफ्! मैं इसे ढो नहीं सकती, ज़िंदा रह नहीं सकती । मुझे आत्महत्या के महापाप से बचाइए भगवान! *(उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगती है; सिर से पाँव तक काँपकर वह चेहरे को हथेलियों से ढँकती फिर ज़मीन पर घुटने टेक अपने हाथों को बुद्ध के चरणों की ओर पसार देती है।)*

भगवान बुद्ध : आर्ये, आर्ये!

अंबपाली : भगवान! भगवान!!

[भगवान बुद्ध उसके इस आत्मसमर्पण से व्याकुल हो जाते हैं – समझ में नहीं आता कि उससे क्या कहें – वह आनंद की ओर देखते हैं – आनंद भगवान का असमंजस देख अंबपाली के निकट आकर उसे उठाते हुए कहते हैं –]

आनंद : आर्ये, उठें । आज आप जाएँ – कल फिर भगवान के दर्शन करें ।

अंबपाली : *(सिर उठाती है, आँखों से आँसू बह रहे हैं)* भगवान, जाऊँ? आपकी यही आज्ञा है?

आनंद : यह भगवान की ही आज्ञा है ।

अंबपाली : हाय रे मेरा दुर्भाग्य! मेरे लिए भगवान आज ही प्रतिमा बन रहे हैं! आह! *(बुद्ध के मुँह की ओर एकटक देखती है – आँसू अनवरत जारी हैं।)*

भगवान बुद्ध : *(गंभीर वाणी में)* भद्रे! श्रद्धा प्रतिमा को भी बोलने को लाचार करती है – उससे वरदान लेती है । तुम अपने पर विश्वास रखो, सभी साधन तुम्हें आप ही प्राप्त होंगे !

[अंबपाली, 'भगवान, भगवान' *कह, घुटने टेक, ज़मीन से सिर सटाकर, भगवान बुद्ध को प्रणाम करती है; फिर हाथ जोड़े ही मुड़कर चलती है – सूरज डूब चुका है, लाल आसमान के ललाट पर लाल मंगल तारा चमक रहा है – अंबपाली मुड़ते समय उसे देखकर प्रणाम करती है और हाथ जोड़े ही वहाँ से धीरे-धीरे चल देती है। उसके चले जाने पर भगवान बुद्ध आनंद से कहते हैं –]*

आनंद!

आनंद : भगवान!

भगवान बुद्ध : अंबपाली को मैं जानता हूँ, आनंद! इसके संघ में आने से संघ को लाभ ही होगा। नारियों द्वारा तथागत का संदेश घर-घर में ही नहीं, दूर-दूर देशों तक फैलेगा, यह भी मैं देख रहा हूँ । लेकिन मैं आनेवाले दिनों से डरता था। अभी तो ज्वार के दिन हैं, जिसके प्रवाह में सभी गंदगियाँ बह जातीं, धुल जाती हैं, लेकिन जब भाटा आता है, अच्छा पानी भी प्रवाह से दूर होकर गँदला हो जाता है, आनंद! इसीलिए मैं नारियों को संघ में नहीं लेना चाहता था । मुझे डर है, आगे चलकर संघ की यह बड़ी कमज़ोरी साबित होगी और तथागत का धर्म जितने दिनों संसार में रहता, उसके आधे दिनों तक ही रह पाएगा ।

आनंद : तो मना कर दीजिए न!

भगवान बुद्ध : आह! मैं मना कर पाता! मैं देवी प्रजावती को, राहुलमाता को 'नाही' कर सका था, किंतु इसे नहीं कर सका। यह विचित्र नारी है, आनंद!

उस बार इसने कहा था — मैं भगवान बुद्ध पर विजय प्राप्त करूँगी। यह आज सचमुच जीत गई!

4

[सारी वैशाली निस्तब्ध सोई हुई है — सिर्फ़ जाग रहे हैं आकाश में कुछ तारे, जिनकी ज्योति भी उदयाचल की धीमी लाली की आभा से मंद पड़ती जाती है — और वृक्षों पर जग पड़े हैं अपने खोंतों में निश्चिंत सोए कुछ पंछी — हाँ, कुछ ही और वे भी एकाध बार ही चोंच खोलकर चहचह कर उठते हैं, क्योंकि अभी भोर होने में कुछ देर है — पृथ्वी पर कभी-कभी, यहाँ-वहाँ से गायों की रँभाई सुनाई पड़ती है, जिसका उत्तर बछड़े का आँ-आँ देता है —

अट्टालिकाएँ सोई हुई हैं — सड़कें सोई हुई हैं — हाट-बाज़ार सब पर नींद की हलकी छाया पड़ी हुई है — हाँ हलकी ही, क्योंकि उषा के आगमन की धमक कुहेलिका की तहों को एक-एक कर दूर कर रही है —

इसी समय दूर से सुरीली आवाज़ सुनाई पड़ती है — वह पहले एक ध्वनि मालूम पड़ती है; किंतु धीरे-धीरे वह ध्वनि, ध्वनि-समूह में बदल जाती है — अब स्पष्ट मालूम हो रहा है, कुछ कोकिलकंठी गाती हुई आ रही हैं — गीत की कड़ियाँ क्रमशः स्पष्ट होती जा रही हैं—]

बहुजन हिताय,
बहुजन सुखाय,
    नर उठो, नारियो, उठो उठो,
    झाँकी यह झिलमिल स्वर्ण-किरण
निद्रा खोने, तंद्रा धोने —
    बह चली पुलकमय मलय-पवन
सब उठो, जगो

निज कर्म लगो
सपनों की दुनिया दूर जाए ।
बहुजन हिताय,
बहुजन सुखाय।
दुनिया उभचुभकर डूब रही,
फैला आँसू का प्रलय-ज्वार
आँहों की आँधी में उजड़ी
जाती मानवता की बहार
आगे बढ़कर
करुणा से भर
रच तो रक्षा के कुछ उपाय ।
बहुजन हिताय,
बहुजन सुखाय।
हम सागर यदि न उलीच सकें
आँखों की दो बूँदें हर लें,
हम पर्वत उठा सकें न अगर,
बोझे तो सिर के कम कर दें,
अर्पित जीवन
अर्पित जन-धन
अर्पित होवे मन-वचन-काय।
बहुजन हिताय,
बहुजन सुखाय ।

[अब वह मंडली बिलकुल निकट आ चुकी — इधर आसमान में लाली ही लाली है — अंधकार धीरे-धीरे दूर हो रहा है — उदित होने वाले सूरज

की प्रभा के कारण या सामने आनेवाली कलकंठियों की शांता मुखाभा के कारण? — अब हम स्पष्ट पहचान सकते हैं कि ये कौन हैं — सब-की-सब भिक्षुणियाँ हैं — टुकड़े-टुकड़े जोड़कर बनाए पीले वस्त्र से, गरदन से पैर तक, इनके अंग ढँके हैं — जिनके बाल कटा डाले गए हैं, ऐसे सिरों पर पीले रंग के ही छोटे-छोटे कपड़े, रूमाल की तरह, सिर के पीछे की ओर बँधे हैं — काले रंग के भिक्षा-पात्र हाथों में — अगली पंक्ति में ये तीन भिक्षुणियाँ कौन हैं? ज़रा गौर से देखिए — बीच में हैं देवी पुष्पगंधा — उनकी दाहिनी ओर अंबपाली — बाईं ओर मधूलिका— हाँ, मधूलिका ही — भिन्न अवस्थाएँ, भिन्न प्रकृतियाँ सिमटकर एक हो चली हैं — 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' के एक पथ पर, एक उद्देश्य पर। सूरज की किरणें फूटीं — पीले वस्त्रों के बीच अंबपाली के शांत मुख-मंडल पर वे जा पड़ीं — जा पड़ीं, नृत्य कर उठीं — फिर प्रतिफलित हुईं — अब अंबपाली का मुखमंडल सूर्यमंडल-सा दिप रहा है — हाँ, साक्षात् सूर्यमंडल-सा! भिक्षुणियाँ गाए जा रही हैं —]

बहुजन हिताय,
बहुजन सुखाय।
　　हम सागर यदि न उलीच सकें
　　आँखों की दो बूँदें हर लें,
हम पर्वत उठा सकें न अगर,
　　बोझे तो सिर के कम कर दें,
　　अर्पित जीवन
　　अर्पित जन-धन
　　अर्पित होवे मन-वचन-काय,
बहुजन हिताय,
बहुजन सुखाय।

शब्दार्थ और टिप्पणियाँ

अगड़धत्त	–	लंबा-तगड़ा, ऊँचा
अनहद	–	आघात रहित, जो आघात से उत्पन्न न हो
अरुंधती	–	वसिष्ठ ऋषि की पत्नी, सप्तर्षि मंडल के समीप एक छोटा तारा
अर्हत	–	पूज्य, परम ज्ञानी, प्रसिद्ध, बुद्ध
अर्घ्य	–	पूजा में देने योग्य वस्तु
अवदात	–	उज्ज्वल, चमकदार
आत्मवंचना	–	अपने को धोखा देना, अपने दोष को गुण रूप में देखना
उच्छेद	–	जड़ से उखाड़ना, नाश, उन्मूलन
उत्सर्ग	–	त्यागना
उभय	–	दोनों
ऐरावत	–	इंद्र का हाथी
कलंगी	–	टोपी, पगड़ी में लगाया जाने वाला तुर्रा या फुंदना, सिर का एक गहना
कारचोबी	–	गुलकारी या कशीदे का काम
किल्विष	–	पाप, अपराध, रोग
कुररी	–	मादा क्रौंच पक्षी, मादा टिटिहरी, गिद्ध जाति की एक चिड़िया
कुहेलिका	–	कुहरा
कृतिका	–	सत्ताईस नक्षत्रों में से तीसरा नक्षत्र, चंद्रमा की पत्नी
खोंता	–	घोंसला

गर्क	—	डूबना
गिद्रव	—	भँवर
गृध्रकूट	—	राजगृह के पास का एक पर्वत
घूर्णि	—	चक्कर खाना, घूमना
चुन्नी	—	माणिक या लाल का टुकड़ा या नग से युक्त
चैत्य	—	बौद्ध संन्यासियों के मठ
छौने	—	शावक, छोटे बच्चे
जह्नु	—	एक राजर्षि का नाम जिसने गंगा को पी लिया था
ज़िरहबख़्तर	—	फौलादी कड़ियों से बना हुआ कवच, लोह का कवच
जेवनार	—	भोज, दावत
ठट्ठ	—	वस्तुओं और लोगों का जमाव, समुदाय, भीड़
तुमुल	—	जिसमें शोरगुल हो, कई तरह की ध्वनियों के मेल से उत्पन्न (ध्वनि)
तूणीर	—	तरकश, बाण रखने का चोंगा
दरियाफ़्त	—	ज्ञात, मालूम
दाड़िम	—	अनार, इलायची
निर्धूम	—	धुएँ से रहित
नौबतखाना	—	नौबत (मंगल आदि सूचित करने वाला बाजा) बजाने का फाटक के ऊपर का कमरा या स्थान
पंचकन्या	—	वे पाँच स्त्रियाँ जो कन्या के समान पवित्र मानी गई हैं – अहल्या, द्रौपदी, कुंती, तारा और मंदोदरी ।
पंडुक	—	कबूतर की जाति का एक पक्षी
पाटंबर	—	रेशमी वस्त्र
पारिजात	—	पाँच देववृक्षों में से एक, हरसिंगार, कचनार, सुगंध

पीट वस्त्र	–	मोटा वस्त्र
पुष्करिणी	–	कमलयुक्त जलाशय, झील
प्रत्याक्रमण	–	आक्रमण के बदले किया जाने वाला आक्रमण
प्रवर	–	प्रधान, श्रेष्ठ, ज्येष्ठ
प्रशस्ति	–	प्रशंसा, स्तुति, प्रशंसासूचक वाक्य या पत्र
प्रहेलिका	–	पहेली
बजड़ा	–	कमरेदार बड़ी नाव
भैरवी	–	प्रातःकाल गाई जाने वाली एक रागिनी
मंजिष्ठ	–	गहरा लाल, एक लता जिसकी जड़ों और डंठलों को उबालकर लाल रंग निकाला जाता है ।
महामात्य	–	प्रधानमंत्री, अत्यंत माननीय (किसी स्वतंत्र नरेश या सम्राट के लिए प्रयुक्त सम्मानसूचक शब्द)
मानी	–	तात्पर्य
मुखातिब	–	संबोधन करने वाला, बात करने वाला
मुमानियत	–	निषेध, रोकना
मुश्क	–	बाँह, कँधे और कोहनी के बीच का हिस्सा
रोहणी	–	सत्ताईस नक्षत्रों में से चौथा नक्षत्र, यह रथ के आकार का और पाँच तारों से बना माना जाता है ।
लोहित	–	लाल
विषण्णता	–	उदासी
वृश्चिक	–	बिच्छू
व्यायुत	–	हल्के पीलेपन से युक्त, खड़िया के रंग जैसा
शिरस्त्राण	–	लोहे का टोप, युद्ध के अवसर पर अस्त्र-शस्त्र से सिर के रक्षार्थ पहना जाता है ।

शीराज़ा	–	प्रबंध, पुस्तक और पुट्ठों पर की जाने वाली सिलाई
सप्तर्षि	–	सात ऋषि – महाभारत के अनुसार मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलह, क्रतु, पुलस्त्य और वसिष्ठ आदि सात तारों का मंडल
सोहनी	–	एक रागिनी का नाम
हर्षवर्धन	–	खुशी या प्रसन्नता की अधिकता

प्रश्न-अभ्यास

1. **अंबपाली** नाटक का कथानक संक्षेप में अपने शब्दों में लिखिए।
2. **अंबपाली** नाटक के कथानक में कल्पना और इतिहास का सुंदर समन्वय है — इस कथन की सार्थकता सिद्‌ध कीजिए।
3. सिद्‌ध कीजिए कि **अंबपाली** एक चरित्र प्रधान नाटक है।
4. **अंबपाली** नाटक के आधार पर अंबपाली की चारित्रिक विशेषताएँ बताइए।
5. **अरुणध्वज निर्धूम जलता प्रेमदीप है** — इस कथन के आधार पर अरुणध्वज के चरित्र का विवेचन कीजिए।
6. **अंबपाली** नाटक में अंबपाली के अतिरिक्त किस पात्र ने आप को सर्वाधिक प्रभावित किया है? तर्क सहित उत्तर दीजिए।
7. **महान ही महान की महत्ता समझता है। अंबपाली को भगवान ने ही पहचाना** — अंबपाली के इस कथन के आधार पर भगवान बुद्‌ध की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
8. निम्नलिखित पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डालिए —
   मधूलिका, अजातशत्रु, पुष्पगंधा, वस्सकार।
9. वृज्जिसंघ का प्रजातंत्र भारत संघ के प्रजातंत्र का ही प्रतिनिधित्व करता है — इस कथन के बारे में अपने विचार प्रकट कीजिए।
10. वर्तमान काल की परिस्थितियों के संदर्भ में **अंबपाली** नाटक की क्या प्रासंगिकता है?
11. **अंबपाली** नाटक में नाटककार ने पुरानी कथा के माध्यम से आधुनिक काल की समस्याओं को व्यक्त किया है। कैसे?
12. **अंबपाली** नाटक में स्त्री-चेतना की किन विशेषताओं की अभिव्यक्ति हुई है?
13. **अंबपाली** नाटक में स्त्री-शक्ति के किन रूपों के दर्शन होते हैं?
14. नाटक के तत्त्वों के आधार पर **अंबपाली** नाटक की समीक्षा करें।

15. **अंबपाली** नाटक की संवाद योजना पात्रों के अनुकूल है—इस संबंध में अपने विचार व्यक्त कीजिए।
16. संवाद नाटक के प्राण होते हैं – इस कथन के आधार पर **अंबपाली** नाटक की संवाद-योजना का विश्लेषण कीजिए।
17. **अंबपाली** नाटक की भाषिक विशेषताओं का विवेचन कीजिए।
18. आपकी दृष्टि में नाटककार इस नाटक में तत्कालीन देश-काल और वातावरण निर्माण में कहाँ तक सफल हुआ है? तर्क सहित उत्तर दीजिए।
19. **अंबपाली** नाटक की रंगमंचीय संभावनाओं और सीमाओं का विवेचन कीजिए।

ORLEANS, J. S., and SEALY, G. A., *Objective Tests.* Yonkers: World Book Company, 1928.

RUCH, G. M., *The Objective or New-type Examination.* Chicago: Scott, Foresman and Company, 1929.

SMITH, H. L., and WRIGHT, W. W., *Tests and Measurements.* New York: Silver, Burdett and Company, 1928.

SYMONDS, P. M., *Measurement in Secondary Education.* New York: The Macmillan Company, 1927.

TOOPS, H. A., "Trade Tests in Education," Teachers College, Columbia University, Contributions to Education, No. 115, 1921.

WEIDEMANN, C. C., "How to Construct the True-False Examination," Teachers College, Columbia University, Contributions to Education, No. 225, 1926.

WILSON, G. M., and HOKE, K. J., *How to Measure.* New York: The Macmillan Company, 1928.

WOOD, BEN D., *Measurement in Higher Education.* Yonkers, New York: World Book Company, 1923.

CHAPTER XI

CONSTRUCTION AND USE OF INFORMAL SHOP TESTS

I. CONSTRUCTION OF AN INFORMAL OBJECTIVE TEST

76. Steps in Building an Objective Information Test.

In contrast with certain other school subjects, the industrial arts subjects present two widely different phases of achievement for measurement. One of these phases is expressed in terms of the ability of the individual student to go into the shop, and, by following specific directions, come out with a product of a given quality which is itself evidence of achievement. This is a test of performance. The other is expressed in terms of knowledge of facts and their relationships which may lie back of the student's actual performance. This is a test of information. The performance test calls for direction, action, production. The information type is usually a paper-and-pencil test. It is obvious that the best possible test of information cannot be wholly valid for any industrial education course because of the fact that it deals only with information and does not measure such factors as quality or rate of response, techniques, and personality traits, which unquestionably are important elements of the course. Both are essential to complete measurement of accomplishment in this field. The testing techniques for both types of tests are discussed in the preceding chapter. The steps in constructing informational types of tests, and in deriving rating scales for the evaluation of the quality of products obtained under performance testing conditions, are set forth in this chapter.

The distinctive feature of the teacher-made objective examination which makes it especially useful in the evaluation of classroom achievement is the closeness with which its content can be made to parallel the subject-matter actually taught to the class. This is merely another way of stating that its validity is high in proportion to the extent that the teacher includes in the examination exercises sampling from facts which the students have had an opportunity to learn. A teacher who knows his pupils and his subject-matter may readily construct an objective examination which will have all the merits of the standardized test (except the standards or norms them-

selves), with few or none of the limitations Critical selection of items from the important phases of the subject which have been given instructional emphasis will guarantee the validity of the test. Observance of the simple principles of formulating objective exercises will produce an objective test. A wide sampling over the significant phases of the subject will produce a test long enough in terms of items and working time to secure reliable results. Teacher-made tests which meet these three criteria leave little to be desired.

77. Securing Validity.

Objectivity and reliability in an examination are qualities which are functions of the form of the exercises used and the breadth of sampling of items taken That is to say, they are the results of the application of certain principles of measurement which can be learned by any classroom teacher. The first constructive step in the development of the informal objective examination is the establishment of a basis for the validation of its content.

Course of Study as the Basis for Validity. The validation of an examination presumes a knowledge of exact details of the curricular material to be taught, as well as a background of experience and judgment adequate for a critical evaluation of the social and practical significance of the various units of instruction. This means, clearly enough, that the teacher must have an intimate knowledge of the content of the course of study.

In order to build up a suitable background for understanding the development of the objective tests presented later in this chapter for purposes of illustration, the following course-of-study outline in woodworking is presented. The content of this outline is not put forward as ideal, but rather as a body of information and skills affording materials suitable for illustrating several types of tests useful to the industrial education teacher. The illustration from woodworking is used here mainly because it is the most widely taught and best understood instructional division in industrial education, and because practically all the testing techniques suitable for use in this field may be applied to other industrial education subjects.

Course-of-Study Outline in Woodworking. This outline is presented as a definite basis for the construction of an objective examination for an eighth-grade class in woodworking. The unit of instruction covers ten weeks of woodworking representing one of four instructional divisions of a course in general shop. The class itself is made up of twenty-six boys coming from middle-class homes typical of a mid-western city.

Objectives of the Course

1. To develop an appreciation of good materials and workmanship.
2. To develop handyman abilities with common tools and materials.
3. To develop hobbies for leisure-time activities.
4. To further intelligent choice of life occupations.
5. To give information about the industries and their workers.
6. To develop desirable social traits and attitudes
7. To provide opportunity for planning and problem solving.
8. To motivate and vitalize academic learning.

What the boys should be able to do with woodworking tools [1]

1. To use a rule in measuring.
2. To use dividers or compass for laying out curves and dividing spaces.
3. To use a try-square for testing
4. To adjust a plane.
5. To square a piece of stock
6. To saw to a line with a rip or cross-cut saw.
7. To use back saw.
8. To use coping saw
9. To bore holes in wood.
10. To fasten with screws
11. To trim or pare with a chisel.
12. To use scraper.
13. To use sandpaper.
14. To drive and draw nails
15. To lay out and cut a chamfer.
16. To glue up work.
17. To fit hinges.
18. To make butt joint.
19. To make dowel joint.
20. To sharpen edge tools.

What the boys should know about wood and the divisions of the industry

1. Know the principal characteristics, working qualities, principal uses, and sources of supply of the following woods: pines, cypress, oak, walnut, ash, birch, maple, mahogany, red cedar, hickory, gum, chestnut, and poplar.
2. How lumber is cut and milled.
3. Standard dimensions of lumber
4. Knowledge of veneer and plywood.
5. Kinds of glue and its preparation.
6. Kinds of nails and their uses.
7. Kinds and sizes of screws
8. Kinds and grades of sandpaper.
9. Grades and uses of steel wool.
10. Distinguishing characteristics of period furniture.

[1] Adapted from the A. V. A. Committee's Report on *Standards in Industrial Arts*

11. Basic principles of good design in furniture.
12. Use of common types of hinges and fasteners on woodworking projects.
13. Kinds of grinding and sharpening stones.
14. Location of manufacturing concerns and labor conditions.

What the attitude of the boys should be [2]

1. Industrious.
2. Cooperative.
3. Self-reliant.
4. Considerate of the rights of others.
5. Ready to assume responsibility.
6. Loyal.
7. Fair minded.
8. Optimistic toward life.
9. Law abiding.
10. Appreciative of duty in common things.

Selection of Major Groups of Informational Items. The next step in the validation of the content of an informal objective test of information is to select, in the light of the objectives set up for the course, the groups of skills which are informational in character and which can be measured by means of a paper-and-pencil test. The following summaries represent the major groups of such informational aspects found in the foregoing outline on woodworking:

1. Different types of planes.
2. Different types of saws.
3. Sizes of wood bits
4. Sizes of screws.
5. Kinds and sizes of chisels.
6. Procedure in squaring stock.
7. Sizes of sandpaper.
8. Sizes of nails.
9. Glue and its use.
10. Different types of hinges.
11. Kinds of wood stain.
12. Types of fillers
13. Different types of brushes.
14. Composition of shellac.
15. Enamel and its composition.
16. Varnish and its composition.
17. Different kinds of paint.
18. Composition of wax.
19. Composition of lacquer.
20. Common joints.

[2] This unit is the same for all shop subjects, and probably for the entire curriculum.

21. Steps in applying stain, filler, shellac, varnish, enamel, paint, wax, and lacquer.
22. Steps in squaring stock, preparing glue, using sandpaper, sharpening wedge edge tools, boring holes, and fastening with screws.
23. Principal characteristics and uses of common woods.
24. Dimensions of lumber
25. How lumber is cut and milled.
26. Veneer and plywood.
27. Grades and uses of steel wool.
28. Principles of design.
29. Characteristics of widely known period furniture.
30. Types of grinding and sharpening stones.
31. Manufacturing concerns and labor conditions.

Suggestions for Securing a Valid Sampling of Informational Content. The specific problem of this discussion is to demonstrate how it is possible to secure a valid sampling of the informational content of the course. The following rules will be found very helpful in accomplishing this:

1. Keep clearly in mind the objectives of the course. Try to formulate questions which will measure the extent to which the objectives have been achieved. Emphasize the relative and social utility of the subject-matter and avoid purely factual questions unless they are essential to building up concepts.

2. Ask questions which the objectives indicate are of most importance, but under no circumstances ask questions included merely to "stump" the pupils. Trick questions, and unusually difficult ones, are only dead weight in the test, waste valuable testing time, and in general lower the validity of the test.

3. Ask a large number of questions over all parts of the course. The different types of objective test exercises are best suited for testing a large number of items in the time ordinarily allotted to measurement.

4. Have other teachers make suggestions as to the importance of the exercises selected for the test. Take into consideration the comments of pupils as to the value of the different test items. If the pupils consider them unfair, obscure, and too easy, they should be eliminated or modified before the test is used again.

5. The test cannot be more valid than the course of study on which it is based. The progressive teacher will revise his course and tests from time to time to bring the work abreast with good practice and the results of curriculum research.

In establishing validity it is a good policy to construct 200 or 250 test exercises based on the course. This furnishes sufficient material

to eliminate undesirable test exercises and still have adequate material for at least two forms of the test. One form is sufficient for a valid examination, but two forms make it more valuable. The second form may be used for testing those absent from the first test, or the test may be used from year to year, alternating the two forms.

78. Securing Objectivity.

After the major informational topics have been agreed upon in the light of the teaching objectives and, when possible, passed upon by other teachers, the items can be expanded and developed into objective test exercises. It is a good policy to use the type of objective exercise which best fits the material, rather than to attempt to make all exercises conform to a single type, as true-false, multiple-choice, etc. Chapter X gives examples of test exercises which have been found valuable in testing information in shop courses.

Two fairly satisfactory methods of procedure are suggested for recording the test exercises as they are developed. In one, the teacher may write the exercises on sheets of paper allowing a half inch between each question, so that, after the questions have been formed, the paper can be cut into strips with one question on a strip. These strips can be shifted to eliminate the less desirable ones according to the teacher's plans. Similar types of test exercises can be grouped to save time in manipulation of the items. In the other method, the teacher may use 3 inch by 5 inch cards and a card index. Each question is put on a separate card, and the cards are grouped according to the type of test exercise used. The first draft of the questions in either procedure should be double spaced to allow for corrections by the teacher after he has given them critical analysis. The cards can be shifted or eliminated as desired. The authors have found this second method to be handier and neater but a little more expensive.

After the test items have been developed and classified according to types of questions, the next step is to develop suitable directions and sample exercises for each different group of test exercises. Directions for tests must be clearly stated and in a vocabulary that the pupils can comprehend. If long difficult words have been used, the teacher should attempt to find synonyms which are in more common usage. In addition to the directions, it is important to provide sample exercises to give the pupils experience in employing the testing technique demanded. Pupils who have had little or no experience with objective exercises will be done an injustice unless they are given ample directions and practice on the types of exercises used. They may make low scores because they do not understand what to do, rather than

because they do not know the correct responses to the exercises. If many pupils fail to understand what to do, it is probable that the instructions are at fault. If this is not corrected the reliability of the test will certainly be lowered. The directions which accompany the samples of objective tests presented later in this chapter are examples of adequate statements.

79. Rating Exercises as to Difficulty.

After the questions have been developed and the directions and practice exercises perfected, the next step is to arrange the different groups of test exercises in the approximate order of difficulty from easiest to most difficult. This can be done roughly through inspection and rearrangement of the exercises by the teacher. If several teachers pool their judgments of the rankings from easiest to most difficult, the results will be more reliable. This arrangement of items in order of difficulty can be further refined after the test is given, by recording the number of pupils who respond correctly to the various items. Order of difficulty is quite important in a test because it saves the pupils' time and secures from them a better psychological reaction. The pupil is given an opportunity to answer first the exercises that are easier for him and he is not so likely to use all the testing time on difficult items and fail to answer many that he does know. The arrangement of items on the basis of difficulty probably increases the apparent reliability of the test.

80. Rearranging Items on the Basis of Difficulty.

The following true-false statements, taken from a longer test, are in the order in which they appeared when the test was first given. After the test was given and the pupils' responses were analyzed, a better order of arrangement in the test was possible The numbers at the right indicate the order of increasing difficulty based on an analysis of the responses of 50 pupils. The exercise numbered "1" is the easiest item, i.e., was answered incorrectly by the smallest percentage of the class.

Original Order	Revised Order
1. Wipe moisture off of tools before putting them away.	6
2. The marking gauge is used to make a line parallel to an edge.	7
3. Sandpapering is done to get a smooth surface for finishing.	1
4. Stain may be applied with a cloth or a brush.	8
5. To produce a good surface for finishing, sandpaper across the grain	9
6. Varnish is thinned with alcohol.	10
7. Good paint preserves the wood.	2

Original Order	Revised Order
8. Paint and varnish may be applied satisfactorily on damp surfaces.	3
9. Auger bits are graduated or numbered in sixteenths of an inch.	4
10. To bore a clean hole with an auger bit, bore through until the spur shows, and then finish boring from the other side.	5

It will be noted that only one of the easiest questions as indicated by an analysis of 50 pupil responses is in the first five items as listed in the original test arrangement.

81. Securing Reliability.

The next essential in developing an informal objective examination is to make it long enough to secure an acceptable reliability of measurement. Reliability is obtained by sampling over a wide range of content and by stating a large number of valid questions in objective forms which are within the mental and educational range of the pupils to be tested. Properly constructed objective tests of 75 to 100 or more exercises are usually highly reliable, whereas the ordinary six-, eight-, or ten-question essay-examination, with its limited sampling and subjective scoring, is almost never sufficiently reliable.

Sampling as a Factor in Reliability. The brevity of the statement and the ease with which the response is recorded make it possible for the student to respond to many more objective exercises in a specified period than to those of the discussion types This makes it possible for the objective examination to cover a much wider area of subject-matter, or to cover a given area a great deal more intensively than is possible with the other type of exercise. The manner in which this factor of sampling operates to protect both the pupil and the teacher against the injustices of unreliable measurement is shown very clearly in Fig 3, page 35, and is discussed in detail on pages 34 and 35.

Specific Hints on Securing Reliability in an Examination.—The following suggestions have been found useful in securing high reliability in objective informal tests:

1. Include from 50 to 100 items, each item being selected from definite units covering the entire area of the unit of the course. This step is closely related to securing high validity, but is considered here from the standpoint of reliability alone.

2. Make the questions objective in type. This eliminates the variable factor of the teacher's subjective judgment and gives assurance that all responses will be rated on the same basis.

3. Eliminate the dead weight from the test Do not include items which are so easy that over 80 per cent of the class answer them correctly. Do not include items which are so difficult that less than

20 per cent of the class give the correct response. It is probable that test items which are missed by 80 per cent or more, or are missed by only 20 per cent or less of the class, do not differentiate pupil accomplishment adequately. These items can be determined by short tests during the term before they are put into the final test, or they can be eliminated after the test has been used once.

4. Control the conditions for giving the test. Define specific directions and conditions for administering the test.

5. Provide a key with the correct responses. It may be necessary to modify or give alternate answers on some completion exercises. The key, like other phases of the test, can be refined best after the test has been given.

82. Sample Objective Tests on Information Aspects of Elementary Woodwork.

A sample of the results of following through the steps in the construction of an objective examination as outlined in this chapter is shown in this section. The specimen is an experimental form of an objective test in woodworking which has been prepared and used by one of the authors in connection with his shop work This test is in four parts requiring a total testing time of 42 minutes and having a possible total score of 94 points. Part I consists of 39 true-false items; Part II of four exercises in procedure-arrangement with a total point score of 22 points; Part III of 24 completion exercises; and Part IV of 9 multiple-response items. The reliability of this test based on 100 cases is .84. The total time requirements and the total possible score for each part are given in Table 26.

TABLE 26

CONTENT OF OBJECTIVE EXAMINATION

Part	Type of Exercise	Time Allowances	Possible Total Score
I	T-F	15	39
II	Pro.-Arr.	8	22
III	Compl.	12	24
IV	M-R	7	9
Total		42	99

Directions to Pupil

This test is divided into four parts. Specific directions are given for each part. The amount of time allowed is indicated below the directions. You are to stop working on each part when the teacher calls *time*. Do not begin the next part until the teacher reads the directions and gives the signal to begin work

Do not waste time on a question you know nothing about, skip it, and go on to the next one. *Do not guess.*

You are now ready to study the directions for Part I You are allowed *15 minutes* to complete Part I. Do not ask questions about the test after you begin work. If you break your pencil or need an eraser ask the teacher for one.

Part I. True-False

The following statements are to be answered by drawing a circle around the capital letter T or F which follows the statement The letter T stands for *true*, and the letter F for *false*, or untrue.

If the statement is true, draw a circle around the T, if false, draw a circle around the F. The sample exercises are answered correctly

---

Sample:	Nails are made of wood.	T	(F)
	Nails are made of metal.	(T)	F

You are allowed *15 minutes* for Part I. *Wait for the signal!*

Exercises

1.	The surface of wood is planed to make it smooth.	T	F
2.	Before putting away tools always wipe off any moisture that may be on them.	T	F
3.	The marking gauge is used to make a line perpendicular to an edge.	T	F
4.	Sandpapering on edges and surfaces is done in the direction of the grain.	T	F
5.	Sandpapering is done to get a smooth surface suitable for finishing.	T	F
6.	Sandpaper should be wrapped around a block when sanding flat surfaces.	T	F
7.	Wood is stained in order to improve its appearance.	T	F
8.	Stain may be applied with a cloth or a brush.	T	F
9.	A well-made glue joint is weaker than any other part of the wood.	T	F
10.	To obtain a good surface for finishing sandpaper across the grain.	T	F
11.	No. 0 sandpaper is coarser than No. 00.	T	F
12.	Varnish is thinned with alcohol.	T	F
13.	A first-class job of finishing can be had with only one coat of varnish if it is put on thick enough.	T	F
14.	Varnish can be smoothed down with fine steel wool.	T	F
15.	In rubbing down varnish with powdered pumice stone, the pumice should be rubbed on dry.	T	F
16.	A drawing board is made of oak, or some other hard wood.	T	F
17.	The visible lines of an object are shown on a drawing by solid black lines.	T	F

18. The tee-square is used for making horizontal lines. T F
19. Thumbtacks should be hammered into place on the drawing board. T F
20. Templates are used to make, or mark out, a shape on a board. T F
21. The mortise of the mortise-and-tenon joint is the rectangular hole into which the tenon fits T F
22. Good paint preserves the wood. T F
23. Paint and varnish may be applied satisfactorily on damp surfaces. T F
24. New wood soaks up much linseed oil T F
25. New wood should have a priming coat applied before the finish paint is put on. T F
26. Paint and varnish are made from the same materials. T F
27. It is not necessary to brush paint out well when applying it. T F
28. If shellac is too thick, thin it out with turpentine. T F
29. Shellac is a slow-drying finish. T F
30. Shellac makes a waterproof finish. T F
31. It is easier to clean out a brush after varnishing with it if it is allowed to dry for 24 hours T F
32. After paste wood filler has been applied, the surface must be rubbed across the grain. T F
33. Hand screws should be adjusted before any glue is applied to the pieces to be glued. T F
34. Handscrews hold best if the jaws are parallel to each other. T F
35. It is easier to drive in a screw if the screw-driver has a round tip, than if it has a square one. T F
36. Augur bits are graduated or numbered in thirty-seconds of an inch T F
37. To bore a nice clean hole with an augur bit, bore through until the spur shows, and then finish boring from the other side. T F
38. A tee-bevel square is used when one wants to lay out an angle T F
39. More accurate work can be done if knife lines are used, rather than pencil lines. T F

Stop and wait for the directions for Part II!

PART II. PROCEDURE-ARRANGEMENT

On this page are several jobs, and the steps necessary for doing the job. However, the steps are not placed in the correct order.

Decide which step should be done first, and place the number of the step in the first parenthesis, then the number of the second step in the second parenthesis, and so on until all the steps are down. The sample exercise is answered correctly.

Sample: To apply stain.

1. Let stand for 2-3 minutes.
2. Apply stain.
3. Smooth the surface with sandpaper.
4. Wipe off excess stain with cloth.
5. Select a suitable stain.

(3) (5) .. (2) .. (1) . . (4) correct order.

You are allowed *8 minutes* for Part II. *Wait for the signal!*

Exercises

1. List the following grades of sandpaper according to coarseness, placing the finest grade first.
   1. No. 0.
   2. No. ½.
   3. No. 2.
   4. No. 1½ .
   5. No. 00.
   6. No 1.

   ( ) ...( ). . ( ) . ( ). ( ).. ( )

2. To square up a board.
   1. Plane a surface true, mark it No. 1.
   2. Plane one edge square with No. 1, mark it No. 2.
   3. Gauge and plane to thickness, square with edges and ends, mark No. 6.
   4. Cut to width and square other side with No 1 and 3, and mark No. 5.
   5. Plane one end, and square with No. 1 and 2; mark No. 3
   6. Cut to length, square other end with No. 1 and 2; mark No. 4.

   ( ).. ( ) . ( ) . ( ) ( ) ...( )

3. Apply paint on new wood.
   1. Apply first coat of finish paint.
   2. Shellac the knots.
   3. Apply second coat of finish paint.
   4. Clean off any grease or dirt with cloth wet in benzine.
   5. Apply coat of priming paint.

   ( ) . ( ).. ( ) ( ).. .( )

4. To bore a hole with a brace and bit.
   1. Fasten bit in brace.
   2. Withdraw bit and finish boring from opposite side.
   3. Mark location of hole.
   4. Bore through until spur shows on other side.
   5. Select proper size bit.

   ( ) ( ) . ( )....( )....( )

Stop and wait for the directions for Part III!

Part III. Completion Exercises

Each of the following statements has one or two words left out When the correct word or words are inserted in the blanks left for them, the sentences are specific and complete. The sample exercises are answered correctly.

Samples·

Nails are driven with a <u>hammer</u>.

Screws are driven with a ______. Here *screw-driver* is the correct word

Think what word completes the sentence and write it in the blank space left for it.

You are allowed *12 minutes* for Part III.

Wait for the signal!

Exercises

1. A fine ——— is used for whetting a plane blade
2. Sharpening chisels and plane irons on an oilstone removes the ——— ———.
3. The thickness of a shaving is regulated by the ——— ———.
4. The ——— holds the plane blade in place.
5. When plane is not in use lay it on its ———.
6. In starting a shaving cut with a plane, press ——— upon the knob of the plane.
7. In driving nails, at first use ——— steady strokes.
8. Inserting a wood block under the hammer when pulling nails prevents ——— the wood.
9. The ——— should be used to guide the saw when starting a cut.
10. Saws work easier when rubbed with ——— occasionally.
11. An augur bit is inserted into the ——— of the brace.
12. The number on the tang or shank of a bit indicates its ———.
13. A ——— ——— is used when boring a number of holes the same depth.
14. The teeth of a coping saw blade should point ——— handle
15. The cross-cut saw is used for cutting ——— the grain.
16. The tool used for setting nails below the surface is called a ——— ———.
17. The cutting action of a ripsaw is like that of a number of ———.
18. The cutting action of a cross-cut saw is like a number of ———.
19. The ripsaw is used for cutting ——— the grain.
20. A ——— cornered file is used to sharpen saws.
21. Damp spongy wood requires a saw with plenty of ———.
22. The ——— works as a crank and holds the bit when boring.
23. The size of an augur bit in ——— of an inch may be found on the tang or shank.
24. The cut made by a saw is called a ———.

Stop and wait for the directions for Part IV!

Part IV. Multiple-Choice Exercises

Each of the statements below is answered correctly by one of the words following the sentence.

Determine which of the choice of words correctly answers the statement, and write the number of that word on the line at the end of the exercise The sample exercise is answered correctly.

Sample: Sandpaper is made up of paper, glue, and ———

(1) brick dust, (2) sand, (3) emery, (4) gravel 2

Sand is the correct answer, and the number of the word (2) is written on the line.

You are allowed 7 *minutes* for Part IV.

Wait for the signal!

Exercises

1. Shellac is thinned with ———
   (1) benzine, (2) turpentine, (3) water, (4) alcohol. —
2. Oil stain is mixed with ———
   (1) alcohol, (2) turpentine, (3) water, (4) linseed oil. —
3. Red cedar is the best wood for ———
   (1) dressers, (2) lamps, (3) chests, (4) bookracks. —
4. Joinery is used in ———
   (1) plastering, (2) plumbing, (3) cabinet making, (4) bricklaying. —
5. A good liquid to rub on tools to prevent rusting is ———
   (1) kerosene, (2) water, (3) machine oil, (4) turpentine. —
6. A working drawing of an object shows the ———
   (1) corner view, (2) top view, (3) rear view, (4) bottom view. —
7. Brushes that have been used in shellac should be cleaned in ———
   (1) oil, (2) turpentine, (3) alcohol, (4) gasoline. —
8. Varnish brushes should be cleaned in ———
   (1) linseed oil, (2) shellac, (3) turpentine, (4) water. —
9. Glued joints are commonly strengthened with ———
   (1) dowels, (2) rivets, (3) wire, (4) brads. —

End of the test

The foregoing objective examination is designed to function as a paper-and-pencil test for measuring informational aspects of instruction in woodworking. Tests of this type can be developed by the industrial education teacher who will follow the principles outlined in this volume. The objectives of the course of study must be definitely identified. The rest of the process is largely the mechanical formulation of the selected items in suitable objective form. Such tests of information in industrial education are valuable as partial measures of achievement and teaching success, but alone, they are insufficient. They should be supplemented by performance tests.

II. CONSTRUCTION OF OBJECTIVE PERFORMANCE TESTS

The testing of performance is not new to industrial arts and industrial education. Manipulative trade tests were devised during the war and have been used with varying degrees of satisfaction in industry. The reliability of many of the early manipulative tests was low, and efforts to measure manipulative skill have not been as successful as the measurement of information by the use of the objective pencil-and-paper tests. A part of this difficulty has arisen from trying to apply pencil-and-paper techniques of test construction to manipulative-test construction without the necessary modifications in the administrative procedure.

83. Steps in Preparing Performance Tests.

In evaluating the available performance tests and in constructing performance tests in the general shop the authors have found the following steps worthy of careful consideration:

1. Analyze the course of study to determine exactly what qualities may be tested.
2. Decide what tools and materials will be necessary.
3. Prepare a number of test exercises or make a composite exercise that will offer the pupil an opportunity to provide an adequate sample of his work with each tool or instrument and type of material which it is desired to test.
4. Make a statement of procedure which tells the pupil exactly what to do in a vocabulary which is comprehensible at his grade level.
5. Prepare a set of general directions for the pupil before the test is administered.
6. Prepare directions for the examiner.
7. Devise a method of scoring the test which provides an adequate measure of the results of each tool or instrument.
8. Try out the test on a few students, and make the more obvious corrections.
9. Make two or more forms of the test.
10. Try out the test, and compute the reliability coefficient, standard deviation, probable error, etc.

For the purpose of illustrating the application of the principles of performance-test construction let us consider the measurement of the results of the following tool operations from a beginning woodworking course.

1. Planing: side, end grain.
2. Sawing: ripping, cross-cutting to a line.
3. Boring: perpendicular to a surface.
4. Squaring: a line around a block.
5. Measuring: to $\frac{1}{8}$ inch with try-square and rule.
6. Gauge a line parallel to a surface.

It should be kept clearly in mind that this is not a test of technique or speed but a test of quality or accuracy. The question is, how accurately can a pupil modify materials with these tools regardless of the method of handling them or the time required.

The following tools are required: jack plane, try-square 6 inches, pencil, 24-inch folding rule, back saw, ripsaw, brace, $\frac{1}{4}$-inch bit,

bench with vise, bench hook, and marking gauge. The tools must be in first-class condition.

The following materials are required: first-quality white pine free of knots, 1 inch thick, surfaced on two sides, and ends sawed at an angle. It is most desirable to have the materials used in a test of this type of uniform quality and the pieces of stock used by the pupils of about the same size and shape.

A composite form of test exercise was selected for this test. Fig. 16 shows the working drawing for Form A, and Fig. 17 shows the working drawing for Form B. It will be observed that the main differences between the test exercises are in the dimensions; otherwise, there is the same opportunity for modifying wood with common tools.

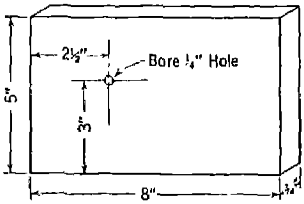


Fig. 16.

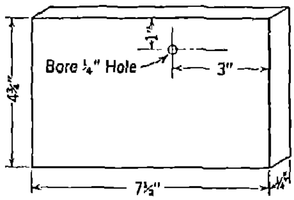


Fig. 17

The validity of a performance test depends on providing samples of the pupil's work and enough of the sample to give an adequate measure of accuracy. Composite performance exercises are easier for the pupil to visualize if they represent some familiar object or toy, but it is seldom possible to do this without throwing the sampling of the various tool operations out of balance.

Woodworking Performance Test of Accuracy

Forms A and B

Directions to Examiner: It is essential that the pupil shall understand the exact procedure, and that he be able to visualize how the block is to look when finished. The following directions are recommended:

1. Read aloud and distinctly the directions to the pupil while the class follows silently. Answer any questions about the directions at this point.

2. Show the pupils a completed test block, and if they care to, let them examine it.

3. When there are no further questions, say, "Get ready Hold up the test block. Begin work."

4. During the examination answer any questions about the steps in the procedure by rereading the step in question with the pupil.

5. Observe the pupils as they work to make certain that they are doing all the steps in the correct order.

6. Make certain that the proper tool is used where indicated, but do not tell the pupil how to use the tool.

7. Help any pupil having difficulty in interpreting the working drawing, but do not make any measurements on the test block for the pupil. This test measures ability to measure to $\frac{1}{16}$ in. with a ruler, but is not a measure of ability to read drawings.

8. Take in the test block when the pupil has finished. The time is not important, for this is a test of quality or accuracy as it applies to modifying wood with simple hand tools.

Directions to Pupil. This is a test to determine how accurately you can use woodworking tools. The wood and all necessary tools will be given to you. The surfaces of the block of wood are numbered 1, 2, 3, 4, 5, 6. You will be given specific directions for doing the job and a working drawing that gives all the necessary dimensions. Do this project as accurately as you can. Do not waste time, but do not work too fast to do your best work. The steps must be done in the order given. After you begin work do not ask unnecessary questions, but if you are in doubt about a step in the procedure or a dimension on the working drawing ask the examiner. Write your *name* and *grade* in school on surface *No. 6* of the test block. *Do not begin work until the examiner gives the signal.*

Woodworking Performance Test—Form A

Part I

Procedure:[3]

1. Select face No. 1. Plane it square and true and to the thickness indicated on the working drawing (Fig. 16). When finished re-mark No. 1.
2. Select side No. 2. Plane it square and true to surface No. 1. When finished re-mark No. 2.
3. Select end No. 3. Plane it square and true to No. 1 and 2. When finished re-mark No. 3.
4. Measure from end No. 3 toward end No. 5, and square a sharp pencil line across the block to the length indicated in the working drawing. Saw off the waste material with a back saw so that the stock will be as nearly the required length as you can make it. *Do not plane.* Re-mark end No. 5
5. From edge No. 2 gauge a line the length of the block, allowing the exact width as indicated on the working drawing. Rip as near the exact width as possible. *Do not plane.*
6. On surface No. 1 lay out the center for the hole and bore.
7. When you have finished take your block to the examiner.

84. Scoring Performance Tests.

A try-square, a $\frac{1}{4}$-inch dowel 3 inches long, and a scale measuring in sixty-fourths are the tools used in scoring. The test is scored in units of sixty-fourths of an inch. If a measurement is more than $\frac{10}{64}$ off, it is given a score of zero. If it is $\frac{1}{64}$ off, it is given 9 points, $\frac{5}{64}$, 5 points, etc., as shown in Table 27.

[3] Procedures for Forms A and B are identical although details are different.

This test has been used a number of times by the authors in shop measurement. The correlation of Form A with Form B on 30 cases shows a reliability coefficient as high as .90. As has been pointed out, this test is not concerned with speed and technique, but only with the accuracy or quality of work. It is not difficult to construct valid and reliable manipulative tests if the test worker keeps clearly in mind the different measurable factors in industrial education. However, it is well to remember that it requires skill to administer a manipulative test. The examiner must follow the technique carefully. A fine tool in the hands of the unskilled worker will not necessarily produce an acceptable result.

TABLE 27

Limits of Tolerance	Point Scores
0/64	10
1/64	9
2/64	8
3/64	7
4/64	6
5/64	5
6/64	4
7/64	3
8/64	2
9/64	1

SUMMARY

The outline of the curricular content of the unit affords the basis for validating the content of the test. With these objectives and the details of the informational content of the course as a background, a paper-and-pencil test is easily formulated by using the types of testing techniques discussed in Chapter X.

Knowledge of the informational aspects of courses in industrial education is only one of the important outcomes. Actual production in the shop or laboratory is quite another important outcome, which, within certain limits, is measurable. Quality in shop work may be rated by inspection, by actual measurement of dimensions, and by judgments based on quality scales. Inspection, if based on personal judgments unsupported by objective criteria of quality, is highly inaccurate. Actual measurement of the physical qualities (dimensions, etc.) is probably the most objective. However, there are certain other qualities in shop products which are not mere matters of dimensions or accuracy of measurement or tool work. The evaluation of such qualities require the use of a rating scale. Such quality scales are not merely useful for the measurement of accomplishment, but they are particularly helpful in the development of an appreciation of quality on the part of the pupil.

SUMMARY EXERCISES FOR DISCUSSION

1. List and illustrate the constructive steps in validating an objective information test in an industrial subject.
2. Following the general plan presented in the section in this chapter entitled

Course of Study Outline in Woodwork, prepare a similar list of specific objectives for some other phase of industrial education.

3. What new suggestions can you add to the list of specific hints on securing reliability in an examination?
4. Prepare at least ten objective test items of each of the four types illustrated on pages 140 to 144 of this chapter, using any industrial education subject-matter except woodworking.
5. Prepare a performance test in metal working, printing, or mechanical drawing following the steps outlined in this chapter.

SELECTED REFERENCES

GARRETT, HENRY E., *Statistics in Psychology and Education* New York: Longmans, Green and Company, 1926.

KELLEY, TRUMAN L., *Statistical Method* New York: The Macmillan Company, 1923.

ODELL, C. W., *Traditional Examinations and New-Type Tests*. New York: The Century Company, 1928

PATERSON, ELLIOTT, ANDERSON, *et al*, *Minnesota Mechanical Ability Tests*. The University of Minnesota Press, 1930, pp. 188-202.

RUCH, G. M., *The Objective, or New-Type Examination* Chicago: Scott, Foresman and Company, 1929.

RUCH, G. M., and RICE, G A., *Specimen Objective Examinations*. Chicago: Scott, Foresman and Company, 1930.

SYMPOSIUM ON TESTING, *Epsilon Pi Tau Review*, Vol. II. The Ohio State University, Columbus, 1931

CHAPTER XII

CONSTRUCTION AND USE OF SCALES FOR RATING INDUSTRIAL EDUCATION PROJECTS

I. PROJECT RATING SCALES

85. Need for Scales for Rating Industrial Education Projects.

The rating of shop projects and drawings is a difficult measurement problem which is faced by practically all industrial education teachers. The assignment of an objective rating to a shop product such as a chair, a radio, a table, a lamp, a funnel, a dustpan, a cement bird-bath, or an isometric drawing calls for the keenest of discrimination and for some method of objectifying standards of quality. Such products of the shop are composed of many different parts, which, combined, reflect quality in the object. For example, in the funnel, there are such factors as the forming, turning, wiring, seaming, and soldering. All these operations must be well done if the funnel is to have quality. Moreover, it must be made of the proper size and of suitable material. Thus size, shape, quality of material, suitability of material, and quality of workmanship as revealed in many small details must be recognized and evaluated by the judge. Each additional characteristic sets up a number of possible variations in quality.

The difficulty of grading or rating such products appears to be related to the degree to which they vary from the typical. For example, shop and drawing projects which are well executed and those which are very inaccurate present a simpler marking problem than those which are made up of mixtures of good, bad, and indifferent qualities. This may be made clear by a concrete illustration. Let us assume that a number of blocks or dominoes are to be arranged in a straight line one inch apart with all faces parallel. If all the units are arranged correctly it is not difficult to see that this is true. In a like manner, if a shop project is very well done, it tends to radiate perfection. Likewise, a very poor project is not difficult to distinguish. However, the most difficult problem of measurement presents itself when part of the dominoes are set up correctly, a few of them are down, and all the rest are in varying degrees of alignment. The shop project which shows excellent design, a poor finish, square edges, weak joints, rough

surfaces, and carefully rounded corners is likewise more difficult to judge. If the design is given undue consideration, the project will be rated too high. If only the joints and surfaces are considered, the pupil may fail on the project.

86. Constructing a Project Rating Scale.

The chief problem confronting shop and drawing teachers in their rating of projects is the definition of objective standards of quality. Industrial arts teachers have recognized the need for better methods of rating shop projects. Many realize that the rating of shop and drawing problems is so subjective and unreliable that it is difficult to assign the proper rating to a pupil's project. In general, the suggestions for improvement in the reliability of rating shop projects indicate the desirability of combining the judgments on the different parts of the projects into a complete rating, and having the projects rated by three or more qualified judges.

The authors have found the following principles helpful in constructing a rating scale for shop and drawing projects:

1. Make a careful analysis of the course of study for the purpose of selecting the factors to put in the rating scale. In general, the items rated are the changes made in materials by the use of tools or instruments, fasteners, and finishes.

Example (from eighth-grade general woodworking unit): Utility, design, proportion, nailing, squareness, dimensions, screws, joints, glued joints, boring, sawed edges, planed edges, sanding, and finish.

Example (from ninth-grade drawing): Neatness, dimensions, arrowheads, lines, accuracy, French curves, placement, joints, lettering, and circles.

2. Group the factors into classes according to method of rating to be used.

Example: Woodwork.

- Inspection.
  - Utility.
  - Design.
  - Proportion.
  - Finish.
- Physical measurement.
  - Squareness
  - Dimensions.
- Rating scale or inspection.
  - Nailing.
  - Screw joints.
  - Glue joints.

Boring.
Sawed edges.
Planed edges.
Sanding.
Boring.
Wood filing.

Example: Drawing.

Inspection.
Neatness.
Placement.
Arrowheads.
Physical measurement.
Circle.
Accuracy.
Dimensions.
Rating scale or inspection.
Lettering.
Lines.
Numbering.

3. Put the factors into a rating scale so that each part of the project can be given an individual objective rating and the ratings combined.

Inspection by a critical and observant judge may reveal many defects in quality. Checks on the physical measurements of products by means of the rule and the square are very objective. Pieces of material can be tested for squareness, thickness, width, and length. There are, however, numerous quality factors which are less tangible and are rated better with quality scales especially developed for the purpose. Splicing, lettering, soldering, and sawing are examples of such qualities.

4. Prepare a set of directions for using the project rating scale.

The project rating scale needs a carefully prepared set of directions which explain in simple, direct language just how the scale is used. This should include the method of recording the ratings on the individual parts of the rating scale, the tools, and the quality scales needed, as well as a statement of the method of arriving at the complete score. A place should also be provided for recording the necessary information about the pupil and the project, as, for example, the student's name, grade in school, date of finishing project, name of project, name or judge, and total score.

5. Prepare a key for transforming the distance ratings into objective values for use in computing the composite rating. This step is not necessary when the scale units are numbered on the scale.

87. Typical Project Rating Scales.

On the following pages are excerpts from a project rating scale for mechanical drawing which the authors have found helpful in their classes and which may serve to illustrate the application of the principles discussed in this chapter.[1]

I

RATING SCALE FOR MECHANICAL DRAWINGS

Pupil's name ____________________

Drawing ____________________

School ____________________ Date __________

Name of judge ____________________ Score __________

Directions: The information required to rate the items is obtained by inspection, quality scales, and physical measurement. Each item is rated on the basis of 10 points. The total rating of the drawing is the sum of all the item ratings which apply to the drawing.

Mark the items in the order in which they appear.

Draw a circle around the figure on the scale to indicate your rating of the item. The scale is divided into ten (10) equal parts. The right side (10) indicates the highest mark; the center, average, the left, the lowest A profile of the ratings may be made if desired by connecting the numbers representing the ratings assigned to each item which applies to the specific project.

Example: If you think *Utility* under *I The Drawing* should get a mark of 8, then draw a circle around the figure 8, thus:

1. The Drawing.

1. Utility ____________________ 1 2 3 4 5 6 7 (8) 9 10

Instruments: Architect's scale, compass.

Quality Scales: The judges should have quality scales for lettering figures and lines each with ten or more samples of known value.[2]

I. The layout.

1. The placing on paper ____________________ 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10

Is the object placed in such a manner as to permit a clear-cut drawing?

2. Geometric construction ____________________ 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10

How good is the instrument work?

3. Trueness in meeting lines ____________________ 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10

Do the lines meet truly and completely?

4. Construction lines

a. Accuracy ____________________ 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10

By how many thirty-seconds do the lines miss?

b. Quality ____________________ 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10

Are the lines clean and sharp cut?

[1] The latter part of this chapter is devoted to a discussion of a reliable method of constructing quality scales.

[2] Inspection must be used when quality scales are not available.

II. The finished drawing (pencil or ink).

1. Circles.

   a. Neatness ______ 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10

      Are all lines clean-cut and uniform?

   b. Trueness ______ 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10

      Are the circles truly drawn?

   c. Accuracy ______ 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10

      Does the diameter vary from the true dimension more than $\frac{1}{32}$ inch?

   d. Tangency ______ 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10

      Do tangent lines fit in perfectly?

2. Arcs and curves.

   a. Neatness ______ 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10

      Are the lines clean-cut and uniform?

   b. Trueness ______ 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10

      Are the curves and arcs truly drawn?

   c. Accuracy ______ 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10

      Do lines vary more than $\frac{1}{32}$ inch from given dimension?

   d. Tangency ______ 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10

      Do tangent lines fit in perfectly?

   e. Completeness ______ 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10

      Do the lines run up completely?

3. Horizontal lines.

   a. Neatness ______ 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10

      Are the lines clean-cut and uniform?

   b. Accuracy ______ 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10

      Do lines vary more than $\frac{1}{32}$ inch from given dimension?

   c. Trueness ______ 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10

      Are all lines straight and horizontal?

   d. Completeness ______ 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10

      Do the lines run short?

4. Vertical lines.

   a. Neatness ______ 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10

      Are all lines clean-cut and uniform?

   b. Accuracy ______ 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10

      Do lines vary more than $\frac{1}{32}$ inch from given dimension?

   c. Trueness ______ 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10

      Are all lines straight and vertical?

   d. Completeness ______ 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10

      Do lines run up completely?

5. Skew lines.

   a. Neatness ______ 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10

      Are the lines clean-cut and uniform?

   b. Accuracy ______ 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10

      Do the dimensions vary more than $\frac{1}{32}$ inch from given dimensions?

   c. Trueness ______ 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10

      Are the lines straight and to the points?

d. Completeness ______ 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10
Do lines run up completely?

6. Dimension lines
a. Placing ______ 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10
Are they placed correctly and conspicuously?
b. Quantity ______ 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10
Are the necessary lines in?
c. Quality ______ 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10
Are they the true lines as to accuracy?
d. Spacing ______ 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10
Are they spaced too close or too much?
e. Correctness ______ 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10
Are they correctly put in?
f. Arrowheads.
(1) Quality ______ 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10
Are they neat and trim?
(2) Accuracy ______ 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10
Do they come up to the extension lines?
g. Extension lines ______ 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10
Do they run into the object?

7. Dimensions.
a. Legibility ______ 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10
Can they be read?
b. Correctness ______ 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10
Are they correctly put in?

8. Notes.
a. Legibility ______ 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10
Can they be read?
b. Clearness ______ 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10
Do they state exactly what is wanted?
c. Lettering
(1) Uniformity ______ 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10
Are the letters uniform as to height and slant?
(2) Appearance ______ 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10
How are the letters formed?
(3) Firmness ______ 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10
Are the strokes firm?

III. Summing up the drawing
1. Utility ______ 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10
Can the drawing be used?
2. Value ______ 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10
Is the drawing of any aid in making the project drawn?
3. Appearance ______ 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10
Is the drawing executed in a neat, professional manner?
4. Completeness ______ 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10
Is the drawing complete?

88. Using Project Rating Scales.

Not only does the project rating scale afford a more objective means of rating projects from the shop and drawing-room, but it is itself a valuable teaching device. It aids the pupil in developing a proper appreciation of quality in workmanship. Its use by students in the rating of their own projects and those of their classmates gives them valuable opportunities for developing habits of careful analysis and experience in judging quality in workmanship.

The best teaching results are obtained with the project rating scale when it is used during the time the project is being made. The items in the project scale should be arranged in an order which facilitates the use of the project rating scale parallel with the development of the project itself. The finish, utility, design, and proportion of a project are better judged after the project is completed The results of sawing, gluing, squaring, screwing, turning, forming, soldering, riveting, splicing, etc., are easier to judge just after they are completed and before they have been obscured or modified by other tool operations or parts of the project. Sawed or planed edges are often modified by filing, scraping, and sanding. The quality of these operations must be rated at a time when they give a true picture of the pupil's proficiency.

The general quality of a project is determined by the sum total of the operations which go into its making. It is well for a pupil to realize this, and to use the diagnostic value of the rating scales to check the results of the tool operations. If a pupil is unable to set a rivet, make a splice, or bore a hole in an acceptable manner, both the pupil and the instructor should be aware of the fact. The pupil may need remedial work, and even though he may never be able to achieve a high standard of workmanship he can and should develop an appreciation of what constitutes quality in workmanship. One generally accepted method of developing an appreciation of quality is to allow the pupil to modify materials and to judge the results of his own efforts and those of others in relation to acceptable standards.

Teachers of industrial education need training and practice in the construction and use of project rating scales. This is a function that should be taken over by the teacher-training institutions and supervisory officers. In the event that the proper training is not available, the progressive industrial education teacher should make project rating scales which are based on his course of study and practice their use. In any case a carefully prepared project rating scale reduces the variation of marks and provides a valuable teaching device which cannot be ignored by those who wish to do superior work in their shops and drafting-rooms. A carefully prepared project rat-

ing scale is more objective than the usual mark assigned by the teacher, but it is distinctly more meaningful when the ratings of from five to ten judges are pooled. When the pooled judgments of such a number of trained observers are used, reliability coefficients of .90 or better are obtained. This is a satisfactory reliability of measurement and produces a rating comparable to the best objective ratings in other fields of instruction.

II. QUALITY SCALES FOR SHOP PRODUCTS

89. Constructing Quality Scales.

Quality scales are useful measurement and teaching instruments which the shop teacher can easily develop and use in his course. Such scales are a very useful means of evaluating certain types of work done in the class. If made available for inspection and comparison, they serve to set up standards for the students themselves to attain, thus aiding the pupil in developing an appreciation of quality. The pupils may rate their own and other pupils' work, thus gaining real experience in rating and further developing a concept of what constitutes real quality in workmanship.

The teacher of woodworking will find that quality scales dealing with such skills as sawing, boring-exit edge, fastening with screws, gluing, planing, sanding, and nailing are very helpful instruments to use in the more exact evaluation of shop products. The specimens constituting the scales can be mounted on suitable panels to be conveniently available for inspection and use. The teacher of sheet-metal work needs quality scales showing the range of workmanship in riveting, soldered lap-seam work, wiring, locked-seam work, and turning. This list may be reduced or expanded depending on the type of course being taught.

Quality scales have been widely used in rating such school products as writing, lettering, and drawing. Scales of this type can be reproduced and widely distributed, but quality scales dealing with pieces of material are not so easily duplicated. Quality scales for shop use should be made up of actual specimens of the products themselves. They should be available to the students so that the specimens may be seen and handled. Such scales may be photographed, but in use the picture lacks the satisfaction resulting from a scale composed of actual samples of the work to be rated.

Because of the real value which quality scales have in the measurement of industrial education and in the development of the pupil's

concept of quality, a method for developing such scales is presented in this chapter.

90. Steps in Making a Quality Rating Scale.

The following steps are essential in developing a quality scale for shop products:

1. Secure samples of the type of product to be used in the scale.
2. Arrange the samples in order of merit as determined by the judgment of ten or more competent judges.
3. Determine the percentages of judges rating a given sample as *better than* each other sample.
4. Arrange the specimens in order from best to poorest on the basis of these composite judgments.
5. Find the deviation of the percentages from the median (50 per cent), retaining the sign of the deviation.
6 Calculate the scale differences between the successive samples.
7. Assume a zero point, and place all samples along the linear scale of values.
8. Select eight to twelve of the samples which nearest approach uniform differences in quality for the quality scale, assign the proper quality values to them, and mount them for use in the shop.

Each of these essential steps in constructing a quality scale is discussed and illustrated in succeeding sections of this chapter. A quality scale showing degrees of merit in soldering a lap seam is used for illustrative purposes. Fig. 19 shows the values assigned in the completed scale.

91. Securing Samples.

Twenty to forty representative samples ranging widely in quality will usually be adequate for the construction of a satisfactory quality rating scale for use in an industrial education course. In securing samples for such a scale, it is essential that some of the samples be superior, some poor, and some average in quality. Samples of average quality are easy to secure, but it may be more difficult to get a proper number of excellent and poor ones. If twenty to forty samples have been secured and, after a superficial inspection, it is obvious that there is a shortage of poor and excellent ones, the instructor should make a few samples which are excellent and a few which are very poor and add them to the list. This practice is defensible, as it might be necessary to sample very widely in order to secure enough specimens showing the required quality range. The use of many more than forty samples makes it more difficult for the judges to rate them carefully

and also adds considerably to the amount of calculation necessary in the derivation of the scale.

Twenty-two samples were used in construction of the scale in Fig. 19. It shows the quality of soldering on a lap seam. No samples were added to this group. The students who made the samples varied widely in their ability and background.

92. Securing Independent Estimates of Relative Quality of the Samples.

The samples to be used in making the scale should be lettered or numbered to make them readily identifiable. Names of pupils who made them should not be attached, since they might influence the judges' rating After the samples are properly labeled, they should be given to the judges individually in random order. The judges are instructed to arrange them from poorest to best by comparison. The judges may be shop teachers or tradesmen, but they should be persons competent to rate the quality of the samples. The number of judges should not be less than nine or ten. A larger number would be better. If ten (or multiples of ten) judges can be secured, the calculation of percentages is simplified. It might be permissible for an isolated teacher who is unable to secure the cooperation of that number of qualified judges to have the same judge rate the samples more than once. If this procedure is followed, it is advisable to allow a day or two between ratings to reduce the influence of memory in placing the samples.

Table 28 gives the results obtained when nine judges ranked the twenty-two soldered lap joints used in making the scale illustrated here. Each of the twenty-two samples is designated by a letter.

TABLE 28

RANKING BY NINE JUDGES

	High 1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16	17	18	19	Low 20	21	22
Judge 1	I	P	U	R	B	A	G	N	E	S	L	C	Q	V	O	J	F	D	K	M	H	T
Judge 2	B	I	S	R	U	P	G	Q	A	L	E	N	C	J	M	V	K	O	H	D	F	T
Judge 3	P	B	A	N	I	U	S	J	Q	L	V	E	R	G	K	C	O	M	H	F	D	T
Judge 4	B	P	Q	E	I	R	U	G	C	S	N	A	L	J	H	M	O	D	V	K	T	F
Judge 5	B	R	P	G	Q	S	U	I	A	J	E	V	L	K	M	O	F	H	N	D	C	T
Judge 6	B	P	Q	I	R	A	G	E	U	S	V	J	L	N	O	K	C	M	F	D	H	T
Judge 7	B	I	R	C	A	P	U	G	S	H	J	Q	E	V	L	M	K	F	N	O	D	T
Judge 8	B	I	Q	S	U	P	R	J	C	G	A	N	V	M	O	E	K	F	L	D	H	T
Judge 9	B	I	J	C	A	M	U	P	R	G	S	Q	V	L	N	E	K	O	F	D	T	H

93. Determining Percentage Ratings of Judges.

The ratings of the twenty-two specimens by the nine judges are tabulated in Table 28. The next step is the determination of the percentage of judges rating a given sample as *better than* every other sample. Table 29 gives these data for the nine judges and twenty-two samples used in developing the quality scale for soldering lap joints. It will be noted that the samples are rated in alphabetical order. This table is to be read as follows. A is better than A no times because they are the same sample, but B is rated better than A nine times which means all the judges considered it better than A, etc. It will be noted that C is rated better than A four times, better than B zero times, etc. This table, showing the number of judges rating each sample in relation to every other sample, is the basis for the next step in constructing the scale.

The next step is to change the ratings to percentages. Table 30 shows the ratings in Table 29 after they have been changed to percentages. Specimen B is rated better than A by nine judges, or 100 per cent. Specimen C is rated as better than A by four judges, or 44.4 per cent. This procedure when completed gives the results as reported in Table 30.

94. Determining Order of Merit of Samples.

The rank order of the samples is determined by referring to the sum of the ratings for each sample in Table 29. The sample with the highest total rating is highest in quality, the one with the next highest is second, and so on. This gives useful information for construction of a quality scale, since it indicates the relative order as given by the combined judgment of nine judges. However, it does not tell the exact distance between each sample along a known scale. It is necessary to know the relation of the respective samples to each other before a number of samples can be selected to represent approximately equal distances on the scale.

95. Determining the Scale Differences.

The first step is to find the deviation of the percentages from the median (50 per cent). This is accomplished by subtracting from the median (50 per cent) the percentage values for each rating as given in Table 30. These percentages are then expressed as positive or negative deviations from the median (Table 31). All cases of 100 per cent and zero per cent are omitted from the table since they do not operate to affect the results. After the technique of developing quality scales is mastered, the student will find it convenient to omit the preparation of Table 31.

TABLE 29

RATING OF SPECIMENS BY JUDGES

(Table shows the number of judges rating specimens indicated in the horizontal lists as better than those in the vertical columns.)

	A	B	C	D	E	F	G	H	I	J	K	L	M	N	O	P	Q	R	S	T	U	V
A		9	4	0	1	0	4	0	8	2	0	0	0	1	0	7	5	7	4	0	5	0
B	0		0	0	0	0	0	0	1	0	0	0	0	0	0	2	0	1	0	0	1	0
C	5	9		1	6	1	6	1	9	5	3	5	1	5	2	7	6	8	6	0	7	3
D	9	9	8		9	7	9	5	9	9	7	9	8	9	9	9	9	9	9	0	9	8
E	8	9	3	0		0	7	1	8	5	0	3	2	4	1	9	8	7	6	0	7	3
F	9	9	8	2	9		9	4	9	9	8	8	8	7	8	9	9	9	9	1	9	9
G	5	9	3	0	2	0		0	8	3	0	1	1	1	0	9	4	9	3	0	7	1
H	9	9	8	4	8	5	9		9	8	7	8	7	7	7	9	8	9	9	1	9	7
I	1	8	0	0	1	0	1	0		0	0	0	0	1	0	4	3	1	1	0	1	0
J	7	9	4	0	4	0	6	1	9		0	3	0	4	1	8	6	7	8	0	8	2
K	9	9	6	2	9	1	9	2	9	9		8	5	7	4	9	9	9	9	0	9	9
L	9	9	4	0	6	1	8	1	9	6	1		2	4	1	8	9	8	9	0	9	5
M	9	9	8	1	7	1	8	2	9	9	4	7		6	3	8	8	8	8	0	8	6
N	8	9	4	0	5	2	8	2	8	5	2	5	3		1	9	7	8	7	0	8	4
O	9	9	7	0	8	1	9	2	9	8	5	8	6	8		9	9	9	9	0	0	8
P	7	7	2	0	0	0	0	0	5	1	0	1	1	0	0		1	3	2	0	3	0
Q	4	9	3	0	1	0	5	1	6	3	0	0	1	2	0	8		5	5	0	5	0
R	2	8	1	0	2	0	0	0	8	2	0	1	1	1	0	6	4		3	0	4	1
S	5	9	3	0	3	0	6	0	8	1	0	0	1	2	0	7	4	6		0	6	0
T	9	9	9	9	9	8	9	8	9	9	9	9	9	9	9	0	9	9	9		9	9
U	4	8	2	0	2	0	2	0	8	1	0	0	1	1	0	6	4	5	3	0		0
V	9	9	6	1	6	0	8	2	9	7	0	4	3	5	1	9	9	8	9	0	9	
Totals	137	194	93	20	98	27	123	31	165	102	37	80	60	84	47	152	131	145	128	2	133	76
	18	22	11	2	12	3	14	4	21	13	5	9	7	10	6	20	16	19	15	1	17	8

TABLE 30

Percentage of Judges Rating Each Specimen Better Than Another

	A	B	C	D	E	F	G	H	I	J	K	L	M	N	O	P	Q	R	S	T	U	V
A	X	100	44.4	0	11.1	0	44.4	0	88.9	22.2	0	0	0	11.1	0	77.8	56.5	77.8	44.4	0	55.5	0
B	0	X	0	0	0	0	0	0	11.1	0	0	0	0	0	0	22.2	0	11.1	0	0	11.1	0
C	55.6	100	X	11.1	66.7	11.1	66.7	11.1	100	55.5	33.3	55.5	11.1	55.5	22.2	77.8	66.7	88.9	66.7	0	77.8	33.3
D	100	100	88.9	X	100	77.8	100	55.6	100	100	77.8	100	88.9	100	100	100	100	100	100	0	100	88.9
E	88.9	100	33.3	0	X	0	77.8	11.1	88.9	55.6	0	33.3	22.2	44.4	11.1	100	88.9	77.8	66.7	0	77.8	33.3
F	100	100	88.9	22.2	100	X	100	44.4	100	100	88.9	88.9	88.9	77.8	88.9	100	100	100	100	11.1	100	100
G	55.5	100	33.3	0	22.2	0	X	0	88.9	33.3	0	11.1	11.1	11.1	0	100	44.4	100	33.3	0	77.8	11.1
H	100	100	88.9	44.4	88.9	55.5	100	X	100	88.9	77.8	88.9	77.8	77.8	77.8	100	88.9	100	100	11.1	100	77.8
I	11.1	88.9	0	0	11.1	0	11.1	0	X	0	0	0	0	11.1	0	44.4	33.3	11.1	11.1	0	11.1	0
J	77.8	100	44.4	0	44.4	0	66.7	11.1	100	X	0	33.3	0	44.4	11.1	88.9	66.7	77.8	88.9	0	88.9	22.2
K	100	100	66.7	22.2	100	11.1	100	22.2	100	100	X	88.9	55.5	77.8	44.4	100	100	100	100	0	100	100
L	100	100	44.4	0	66.7	11.1	88.9	11.1	100	66.7	11.1	X	22.2	44.4	11.1	88.9	100	88.9	100	0	100	55.6
M	100	100	88.9	11.1	77.8	11.1	88.9	22.2	100	100	44.4	77.8	X	66.7	33.3	88.9	88.9	88.9	88.9	0	88.9	66.7
N	88.9	100	44.4	0	55.5	22.2	88.9	22.2	88.9	55.5	22.2	55.5	33.3	X	11.1	100	77.8	88.9	77.8	0	88.9	44.4
O	100	100	77.8	0	88.9	11.1	100	22.2	100	88.9	55.5	88.9	66.7	88.9	X	100	100	100	100	0	0	88.9
P	77.8	77.8	22.2	0	0	0	0	0	55.5	11.1	0	11.1	11.1	0	0	X	11.1	33.3	22.2	0	33.3	0
Q	44.4	100	33.3	0	11.1	0	55.5	11.1	66.7	33.3	0	0	11.1	22.2	0	88.9	X	55.5	55.5	0	55.5	0
R	22.2	88.9	11.1	0	22.2	0	0	0	88.9	22.2	0	11.1	11.1	11.1	0	66.7	44.4	X	33.3	0	44.4	11.1
S	55.5	100	33.3	0	33.3	0	66.7	0	88.9	11.1	0	0	11.1	22.2	0	77.8	44.4	66.7	X	0	66.7	0
T	100	100	100	100	100	88.9	100	88.9	100	100	100	100	100	100	100	0	100	100	100	X	100	100
U	44.4	88.9	22.2	0	22.2	0	22.2	0	88.9	11.1	0	0	11.1	11.1	0	66.7	44.4	55.5	33.3	0	X	0
V	100	100	66.7	11.1	66.7	0	88.9	22.2	100	77.8	0	44.4	33.3	55.5	11.1	100	100	88.9	100	0	100	X

TABLE 31

PERCENTAGE DEVIATIONS FROM MEDIAN (50 PER CENT)

	A	B	C	D	E	F	G	H	I	J	K	L	M	N	O	P	Q	R	S	T	U	V
A	X		−5.6		−38.9		−5.6		+38.9	−27.8				−38.9		+27.8	+5.6	+27.8	−5.6		+5.6	
B		X							−38.9							−27.8		−38.9			−38.9	
C	+5.6		X	−38.9	+16.7	−38.9	+26.7	−38.9		+5.6	−16.7	+5.6	−38.9	+5.6	−27.8	+27.8	+16.7	+38.9	+16.7		+27.8	−16.7
D			+38.9	X		+27.8		+5.6			+27.8		+38.9									+38.9
E	+38.9		−16.7		X		+27.8	−38.9	+38.9	+5.6		−17.6	−27.8	−5.6	−38.9		+38.9	+27.8	+16.7		+27.8	−16.7
F			+38.9	−27.8		X		−5.6			+38.9	+38.9	+38.9	+27.8	+38.9					−38.9		
G	+5.6		−16.7		−27.8		X		+38.9	−16.7		−38.9	−38.9	−38.9			−5.6		−16.7		+27.8	−38.9
H			+38.9	−5.6	+38.9	+5.6		X		+38.9	+27.8	+38.9	+27.8	+27.8	+27.8		+38.9			−38.9		+27.8
I	−38.9	+38.9			−38.9		−38.9		X					−38.9		−5.6	−16.7	−38.9	−38.9		−38.9	
J	+27.8		−5.6		−5.6		+16.7	−38.9		X		−16.7		−5.6	−38.9	+38.9	+16.7	+27.8	+38.9		+38.9	−27.8
K			+16.7	−27.8		−38.9		−27.8			X	+38.9	+5.6	+27.8	−5.6							
L			−5.6		+16.7	−38.9	+38.9	−38.9		+16.7	−38.9	X	−27.8	−5.6	−38.9	+38.9		+38.9				+5.6
M			+38.9	−38.9	+27.8	−38.9	+38.9	−27.8			−5.6	+27.8	X	+16.7	−16.7	+38.9	+38.9	+38.9	+38.9		+38.9	+16.7
N	+38.9		−5.6		+5.6	−27.8	+38.9	−27.8	+38.9	+5.6	−27.8	+5.6	−16.7	X	−38.9		+27.8	+38.9	+27.8		+38.9	−5.6
O			+27.8		+38.9	−38.9		−27.8		+38.9	+5.6	+38.9	+16.7	+38.9	X							+38.9
P	+27.8	+27.8	−27.8						+5.5	−38.9		−38.9	−38.9			X	−38.9	+16.7	−27.8		−16.7	
Q	−5.6		−16.7		−38.9		+5.6	−38.9	+16.7	−16.7			−38.9	−27.8		+38.9	X	+5.6	+5.6		+5.6	
R	−27.8	+38.9	−38.9		−27.8				+38.9	−27.8		−38.9	−38.9	−38.9		+16.7	−5.6	X	−16.7		−5.6	−38.9
S	+5.6		−16.7		−16.7		+16.7		+38.9	−38.9			−38.9	−27.8		+27.8	−5.6	+16.7	X		+16.7	
T						+38.9		+38.9												X		
U	−5.6	+38.9	−27.8		−27.8		−27.8		+38.9	−38.9			−38.9	−38.9		+16.7	−5.6	+5.6	−16.7		X	
V			+16.7	−38.9	+16.7		+38.9	−27.8		+27.8		−5.6	−16.7	+5.6	−38.9			+38.9				X

The percentage values which are given in Table 31 are next referred to any table showing the fractional parts of the total area of the normal probability curve corresponding to designated distances on the base line. Such a table as Table X on page 91 of Garrett's *Statistics in Psychology and Education* (Longmans, Green and Company, 1927) or Table 51 on page 219 of Thorndike's *Mental and Social Measurements* (Teachers College, Columbia University, 1916) affords the necessary data. These tables show, for example, that Specimen C, which was rated as better than Sample A by 44.4 per cent of the judges (Table 30) lies below the quality of Sample A a distance of 5.6 per cent (Table 31), and is actually below the median of the normal distribution of such qualities a distance of −0.14 standard deviation unit. Specimen E was rated as better than A only 11.1 per cent of the time. It therefore is 38.9 per cent below the median quality represented by A. Table X in Garrett, or Table 51 in Thorndike, indicates that a specimen of such quality lies 1.22 sigma units below the quality of Specimen A. All the sigma-unit values given in Table 32 were obtained from these tables in a similar manner.

Table 32 gives the standard deviation distance between each sample and all other specimens not at the median or at the extreme end of the scale. These data now make it possible to compute the scale difference of the samples. The formula [3] for obtaining the scale differences is as follows: $S_{s\sigma} = \frac{\sqrt{2}\ x1k - x2k}{N}$, in which $S_{s\sigma}$ equals the scale separation of the samples in sigma units, $x1k - x2k$ equals the sum of the sigma-unit differences for the two specimens, and N is the number of such differences.

Example: Differences of Samples F and H. They rank third and fourth in the series of twenty-two samples of soldering. (See Table 29.)

F	H	Sigma-Unit Differences
−1.22	−1.22	0
+0.76	+0.14	0.62
−1.22	−0.76	0.46
−1.22	−1.22	0
−1.22	+0.76	1.98
−0.76	−0.76	0
−1.22	−0.76	0.46
+1.22	+1.22	0

$$\text{Scale differences} = \frac{\sqrt{2}\ 352}{8} = \frac{1.414 \cdot 352}{8} = \frac{4.9772}{8} = 0.62.$$

[3] This formula and the proof for same are given by Thurstone in *Journal of General Psychology*, Vol. 1:405-423, 1928.

TABLE 32

SIGMA DIFFERENCES EXPRESSED AS DEVIATIONS FROM THE MEDIAN (50 PER CENT)

	A	B	C	D	E	F	G	H	I	J	K	L	M	N	O	P	Q	R	S	T	U	V
A	X		−.14		−1.22		−.14		+1.22	−.76				−1.22		+.76	+.14	+.76	−.14		+.14	
B		X							−1.22							−.76		−1.22			−1.22	
C	+.14		X		+.43	−1.22	+.43	−1.22		+.14	−.43	+.14	−1.22	+.14	−.76	+.76	+.43	+1.22	+.43		+.76	−.43
D			−1.22	X		+.76		+.14			+.76		+1.22									+1.22
E	+1.22		−.43		X		+.76	−1.22	+1.22	+.14		−.43	−.76	−.14	−1.22		+1.22	+.76	+.43		+.76	−.43
F			+1.22	−.76		X		−.14			+1.22	+1.22	+1.22	+.76	+1.22					−1.22		
G	+.14		−.43		−.76		X		+1.22	−.43		−1.22	−1.22	−1.22			−.14		−.43		+.76	−1.22
H			+1.22	−.14	+1.22	+.14		X		+1.22	+.76	+1.22	+.76	+.76	+.76		+1.22			−1.22		+.76
I	−1.22	+1.22			−1.22		−1.22		X					−1.22		−.14	−.43	−1.22	−1.22		−1.22	
J	+.76		−.14		−.14		+.43	−1.22		X		−.43		−.14	−1.22	+1.22	+.43	+.76	+1.22		+1.22	−.76
K			+.43	−.76		−1.22		−.76			X	+1.22	+.14	+.76	−.14							
L			−.14		+.43	−1.22	+1.22	−1.22		+.43	−1.22	X	−.76	−.14	−1.22	+1.22		+1.22				+55 6
M			+1.22	−1.22	+.76	−1.22	+1.22	+.76			−.14	+.76	X	+.43	−.43	+1.22	+1.22	+1.22	+1.22		+1.22	+.43
N	+1.22		−.14		+.14	−.76	+1.22	−.76	+1.22	+.14	−.76	+.14	−.43	X	−1.22		+.76	+1.22	+.76		+1.22	−.14
O			+.76		+1.22	−1.22		−.76		+1.22	+.14	+1.22	+.43	+1.22	X							+1.22
P	+.76	+.76	−.76						+.14	−1.22		−1.22	−1.22			X	−1.22	−.43	−.76		−.43	
Q	−.14		−.43		−1.22		+.14	−1.22	+.43	−.43			−1.22	−.76		+1.22	X	+.14	+.14		+.14	
R	−.76	+1.22	−1.22		−.76				+1.22	−.76		−1.22	−1.22	−1.22		+.43	−.14	X	−.43		−.14	−1.22
S	+.14		−.43		−.43		+.43		+1.22	−1.22			−1.22	−.76		+.76	−.14	+.43	X		+.43	
T						+1.22		+1.22												X		
U	−.14	+1.22	−.76		−.76		−.76		+1.22	−1.22			−1.22	−1.22		+.43	−.14	+.14	−.43		X	
V			+.43	−1.22	+.43		+1.22	−.76		+.76		−.14	−.43	+.14	−1.22			+1.22				X

(From Table 51 in Thorndike's Mental and Social Measurements)

The application of the same method to the other samples results in the scale differences shown in Table 33. This table gives the rank order according to the nine judges and the scale differences between each sample on a comparable basis. It is known that the distance from T to D is 1.09 sigma units, and on the same scale the difference between D and F is, 0.16 unit.

TABLE 33

SCALE DIFFERENCES BETWEEN SPECIMENS

Samples	Difference in Units
T-D	1.09
D-F	0.16
F-H	0.62
H-K	0.87
K-O	0.25
O-M	0.57
M-V	0 49
V-L	0.31
L-N	0.33
N-C	0 57
C-E	0 48
E-J	0 41
J-G	0.98
G-S	0 29
S-Q	0 51
Q-U	0 66
U-A	0.64
A-R	0 56
R-P	0.59
P-I	0 88
I-B	0.29

96. Establishing a Point of Origin for the Scale.

The next problem is to establish a zero point. It is permissible in a quality scale of this type to assume a zero point. According to the rating of the nine judges, sample T was rated the poorest of all the samples. The question then arises: Is sample T the poorest conceivable soldered lap joint? The answer is that it is very poor, but could be worse and still hold together. Therefore, for the purposes of this scale, Specimen T is assumed arbitrarily to have a value of 0.9 unit above zero. There probably could not be a soldered lap joint of zero quality since it would not hold together at all and could not be considered a soldered joint. In assuming a zero point for a quality scale in industrial education, it seems advisable to select a point from 0.8

to 1 above zero. After all, such a zero point or point of origin for the scale is arbitrarily set up, whatever the method used.

With the zero point assumed as 0.9 unit, the twenty-two samples are then ranked along the scale by adding the scale differences to the assumed zero according to the relative rankings on the scale. Table 33 shows the sigma-unit differences in quality of each adjoining pair of the twenty-two samples. Table 34 shows the scale values assigned to each specimen. Sample T, being the specimen of poorest quality, is given a scale value of 0.9, on the assumption that it has a quality value of approximately 0.9 unit above the point designated as the arbitrary zero point of the scale. Sample D is 1.09 sigma units better than Sample T, therefore the scale value assigned to Sample D is $1.09 + 0.90 = 1.99$ units above zero quality. Each exercise in ascending order of merit is assigned a scale value corresponding to its merit in relation to the next poorer specimen. The values in the parentheses in Table 34 are sigma units of difference between the pairs of specimens. The ascending values are the scale units of value or merit assigned to each of the twenty-two specimens comprising the scale. A graphic presentation of the relationship of these specimens to the scale and to each other is given in Fig. 18.

After the samples are ranked and scaled, the final step is to select samples suitable for use in the quality scale. In doing this, the au-

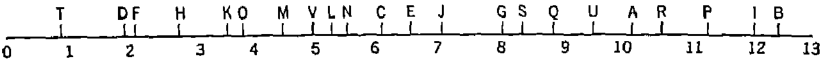


FIG. 18.—Specimens Assigned to a Linear Scale (Zero assumed to be .9 step below sample "T").

thors have found that from eight to twelve samples make a satisfactory scale for checking quality in industrial education. The first object is to select samples for the scale whose quality values represent approximately equal distances along the scale. This gives the samples a definite rating. The scale can then be used as a measuring instrument for rating quality. Fig. 19 shows a scale with eight samples and another with thirteen samples. Both of these scales are taken from

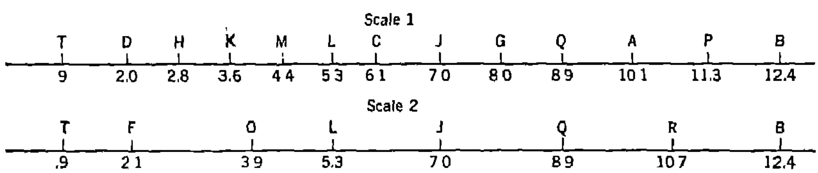


FIG. 19.—Two Quality Scales Selected from the 22 Specimens.

the combined data in Fig 18 (Table 34). It frequently occurs that several samples will fall very close together on the scale, as *D* and *F* in Fig. 18. This means that two samples of approximately equal quality are available for that point on the scale. This also explains the unnecessary computation involved when a large number of samples

TABLE 34

SCALE VALUES

Zero assumed to be 0.9 step below sample T.

T	0.90		E	(0 48)	
	(1 09)			6.64	S
D	1.99	S			
			J	(0 41)	
				7.05	S
F	(0.16)		G	(0 98)	
	2.15	S		8.03	S
H	(0 62)		S	(0.29)	
	2.77	S		8.32	S
K	(0 87)		Q	(0.51)	
	3.64	S		8.83	S
O	(0.25)		U	(0 66)	
	3 89	S		9.49	S
M	(0.57)		A	(0.64)	
	4.46	S		10 13	S
V	(0.49)		R	(0 56)	
	4.95	S		10.69	S
L	(0.31)		P	(0.59)	
	5.26	S		11 28	S
N	(0 33)		I	(0.88)	
	5.59	S		12 16	S
C	(0.57)		B	(0.29)	
	6.16	S		12.45	S

of approximately the same difficulty are used, because several samples fall at about the same place on the scale and only one or two are needed for that point to make the quality scale.

Fig. 20 shows photographic reproductions of scales of quality for end-splices, underwriter's knots, solder joints, dados, and flat- and round-head screws.

97. Reliability of Ratings on Quality Scales.

The question may now be asked, are quality scales reliable measuring instruments? Both the reliability of the pooled judgments of experts and the reliability of ratings on quality scales have been shown

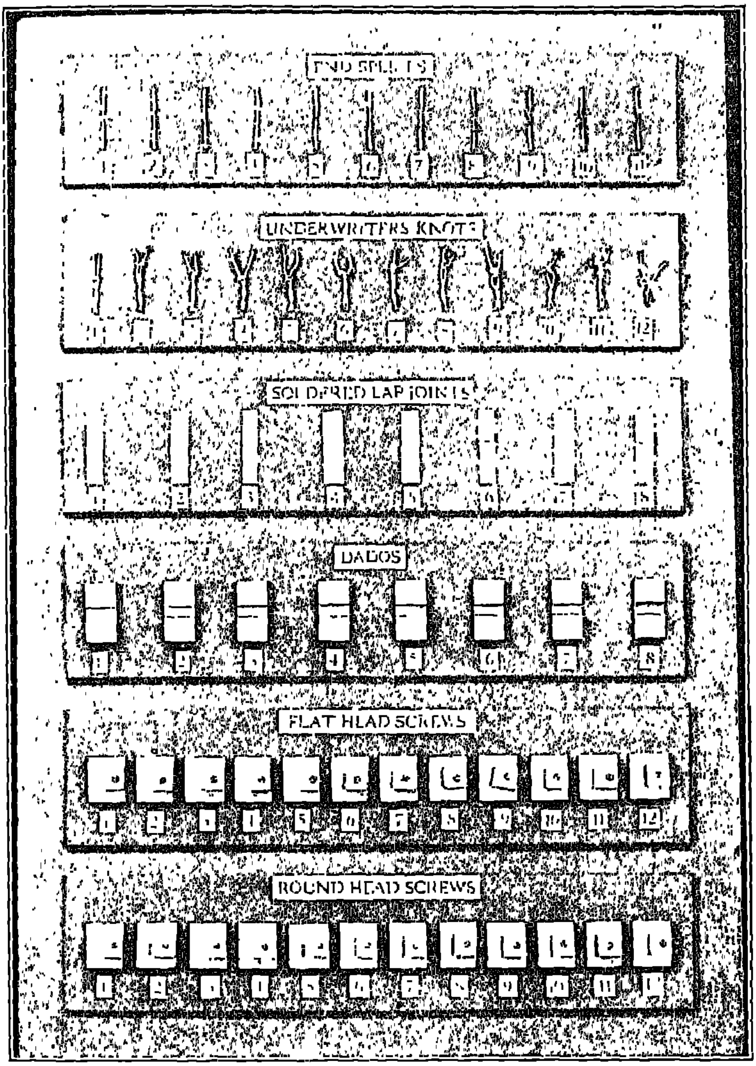


Fig. 20.

to be high by Paterson, Elliott, Anderson, and others [4] in developing a criterion of mechanical ability. These workers found the pooled judgments of ten qualified judges to have a reliability of .90 or better. They also found the reliability of quality scales to be high when the ratings of two or more judges are averaged.

[4] Paterson, Elliott, Anderson, and others, *Minnesota Mechanical Ability Tests,* The University of Minnesota Press, Minneapolis, Minnesota, pp. 194-202.

The authors have found that the reliability of rating of shop products by means of quality scales is much higher than that normally obtained under subjective conditions. However, it is advisable to average three or four independent ratings if a reliability of .90 or better is desired. These ratings may be made by three or four qualified teachers or by the same teacher at widely separated intervals.

SUMMARY

The rating of shop and drawing products involves problems which confront practically all industrial education teachers. The subjective ratings of shop and drawing teachers are as unreliable as teachers' marks in other subject-matter fields. The rating of a shop project or a drawing requires the making of a complex judgment involving many variables. The reliability of industrial education teachers' marks can be improved by using a project rating scale.

Shop and drawing projects are rated by inspection, physical measurement, and quality scales. A project rating scale lists the variable characteristics of the project upon which the judgment is based so that they may be considered individually, and the total rating is the sum of the individual ratings. The project rating scale is also a valuable teaching device for developing appreciation of those factors which produce quality in workmanship and in diagnosing individual pupil difficulties.

The development of a quality scale involves the collection of representative specimens of varying merit, the arrangement of these samples in order of merit by means of the use of pooled judgments, the calculation of the differences in quality of the specimens in terms of sigma units, the establishment of a zero point, and the arrangement and evaluation of the specimens along the scale in relation to one another and to the point of origin of the scale. The technique of pooled judgments is probably sufficiently reliable for most purposes when as many as ten or more qualified and critical judges are used. Quality scales are reasonably reliable measuring instruments, but reach their highest efficiency when the ratings of three or more judges are averaged.

SUMMARY EXERCISES FOR DISCUSSION

1. Point out the distinguishing features of project rating scales and quality rating scales for shop products
2. Make a project rating scale for some industrial art field other than mechanical drawing. The mechanical drawing rating scale on pages 153 to 155 may be followed as an example.
3. Recapitulate the steps in preparing a quality rating scale.

4. In securing specimens for the construction of a quality rating scale, why is it essential that a wide range of quality be sampled?
5. What importance do you see in the establishment of the zero point of a quality scale?

SELECTED REFERENCES

ERICSON, EMANUEL E, "Grading Shopwork," *Industrial Education Magazine*, Vol. 28: 227-228, January, 1927

HAGER, CARL J., "A Systematic Method of Grading Shop Projects," *Industrial Arts Magazine*, Vol. 18: 376-378, October, 1929.

KELLY, TRUMAN L., *Statistical Method* New York: The Macmillan Company, 1923.

MANGER, EMERSON W., "Grading Drawings," *Industrial Education Magazine*, Vol. 24. 116-117, October, 1922.

PATERSON, ELLIOTT, ANDERSON, *et al.*, *Minnesota Mechanical Ability Tests.* The University of Minnesota Press, 1930, pp 188-202

THURSTONE, L. E, *Journal of General Psychology*, Vol 1: 405-423, 1928.

CHAPTER XIII

RATING AND DEVELOPING PERSONALITY AND CHARACTER TRAITS

98. Importance of Character and Personality Traits.

The very commonplaceness of the terms character and personality may account for the fact that they have been given no very exact definition. In a vague way we know what character is, and in a similarly vague way we speak of personality, yet probably no other single outcome of our social or educational programs is so important as the development of proper character and personality traits. Every serious-minded teacher, parent, or pupil realizes the importance of a good character and a pleasing personality But what is character? What is personality? Can they be developed, or are they inherent? Are we mere slaves of heredity doomed to act and to think in the same way in similar environmental conditions, or is our destiny to a certain extent in our own control?

Character has been defined in a discussion of psychology for teachers as "the sum total of his [*an individual's*] behavior in relation to the world about him and to his fellow beings."[1] Thus, character is taken to be synonymous with the behavior aspects of personality. Character is revealed by an individual's responses to stimulation. If the responses are those commonly considered pleasing or acceptable to his fellows, the individual is described as having a "good" character. If the reverse, he has a "weak" character.

Lay usage has tended to attach to personality the notion of *individuality* or *distinctiveness* in character. In many respects this has had an unfortunate effect, for in their efforts to achieve distinctiveness many individuals have revealed phases of character which are far from pleasing. Individuality is undoubtedly important but not so important that it should be achieved at the expense of honor, honesty,

[1] Benson, C. E.; Lough, J. E.; Skinner, C. E.; West, P. V., *Psychology for Teachers*, Ginn and Company, Boston, 1926.

morality, bravery, modesty, or other attributes of character, which, in the past at least, have been considered desirable.

Much damage has been done by self-styled "psychologists" who have filled the literature of today with high-sounding suggestions by which an individual is to find his latent powers and suddenly develop a strong and forceful personality. Valentine[2] states that a "little exaltation will hurt no one. It is a healthful sort of feeling, but is no substitute for intelligence, vocational ability, moral habits, leadership, culture, social habits, or any other desirable quality which inheritance and creative experience alone can supply." The school, the shop, and the home face a most difficult and critical problem in providing the right kind of stimuli for the development of desirable character and personality traits.

Personality can be modified and improved through diligent effort over a period of time, but it is not a simple task which can be accomplished in a few weeks or months. Personality needs always to be modified and developed in the light of changing social and vocational conditions. Obviously, since our personalities have resulted from the modification of our original natures by our environment, we can consciously develop more desirable modes of conduct by selecting the type of adjustments and then developing habits accordingly. It is true that too often personality emerges with little conscious knowledge on the part of the pupil of what the desirable traits are which have been found essential to success in life. However, the pupil and teacher could at least in part direct the development of personality if they have in mind an ideal toward which to work.

Jones[3] states that "In general, personality is the same as individuality: it is that group of qualities and characteristics that makes one an individual, that set him off from other individuals. As such, it is the sum total of abilities, skills, interests, and physical and mental characteristics that he possesses, or better still the combination of all of these."

As an illustration, let us consider the modern automobile. Its present state of development is the partial realization of an ideal of transportation which has been taking shape during a third of a century. It required much planning and testing to bring the automobile to its present state of efficiency. Today we use adjectives such as the following to describe its traits: durable, economical, safe, speedy, com-

[2] Valentine, P. F., *The Psychology of Personality*, D. Appleton and Company, New York, 1927, p. 355.

[3] Jones, Arthur J., *Principles of Guidance*, McGraw-Hill Book Company, New York, 1930, Chapter X, p. 148.

fortable, and dependable. The characteristics of the automobile are constantly being refined so that they can better meet the changing social and economic conditions of the times. As long as automobiles are used there will be a constant need for refinement and adaptation. The same is true of a human personality. It is the result of the interplay of many variable factors, and even after it is well developed it needs constant refinement in order to keep adjusted to changing environmental conditions.

99. Measuring Personality and Character Traits.

Devices for the measurement of personality and character traits have generally taken the form of rating scales rather than of tests. However, a number of these devices are so arranged that the individual records his own reactions quite objectively. In this respect they resemble tests. Such instruments differ from the typical rating scale also in that the individual responding to the exercises is frequently not aware of the fact that he is being measured for any particular quality or trait. For example, in the *Bernreuter Personality Inventory*[4] the subject is asked to indicate his reaction to 125 questions by encircling one of the answers Yes, No, or ? which precedes each question. The following samples taken from the test itself will illustrate the types of exercises used:

1.	Yes	No	?	Does it make you uncomfortable to be "different" or unconventional?
2.	Yes	No	?	Do you day-dream frequently?
5.	Yes	No	?	Do you ever give money to beggars?
15.	Yes	No	?	Do you usually object when a person steps in front of you in a line of people?
25.	Yes	No	?	Do you study the motives of other people carefully?
50.	Yes	No	?	Do you usually try to avoid arguments?
100.	Yes	No	?	Do you prefer to be alone at times of emotional stress?

By the arrangement of the material in the test several different aspects of personality are measured at one time. According to the author, the scales used in the scoring of the responses to the test are very reliable. This may be due in part to the fact that the traits measured are not readily detectable from the test itself. The significance of the individual's response to the questions is brought out by the use of four separate scales in the scoring of the answers. For example, Scale B1-N is a measure of neurotic tendency Persons who

[4] Bernreuter, Robert G, *The Personality Inventory,* Stanford University Press, Stanford University, California, 1931.

score high on this test tend to be emotionally unstable In the case of the exercises used in the sample above, a person who answers question 1 with "Yes" scores +2 points. A "Yes" on question 2 adds five more points. On the other hand a "No" for question 5 deducts 6 points. When Scale B2-S, the scale for self-sufficiency, is used on these same answers, however, a reply of "Yes" for question 1 gives a score of −4; a "Yes" on question 2 gives a score of +1; a "No" on question 5 gives a score of −3 points; etc.

The remaining scales, B3-I for introversion-extroversion, and B4-D for dominance-submission, are applied in a similar manner. Scoring the individual's response to the questions by each of these four scales gives rise to four sets of personality scores for each of which norms are available. Persons scoring high in self-sufficiency are the types who prefer to be alone, do not seek sympathy or encouragement, and tend to follow their own inclinations rather than seek the advice of others. Persons scoring high on the introversion-extroversion scale are inclined to be imaginative. Those scoring low on this scale rarely worry and prefer to act rather than to dream. Persons scoring high on the dominance-submission scale tend to dominate others in face-to-face situations.

Analysis of personality such as is afforded by the *Bernreuter Personality Inventory* has been used with success and considerable reliability with high-school students, college students, and adults. The inventory itself is self-administering, there are no time limits, and each person interprets the questions for himself.

Another type of attempt to secure an unbiased picture of certain personality traits without the subject's being completely aware of the traits on which he is to be measured is represented in the *Loofbourow-Keys Personal Index.*[5] According to the statement in the manual for the test itself, it "is an instrument for the detection of attitudes indicative of problem-behavior. It is intended for use in group surveys to identify those boys whose personal and social maladjustment is such that they are, or are in danger of becoming, serious disciplinary problems." It is standardized for use in the junior-high-school grades, although it has been found useful in senior-high-school and in continuation-school groups. Brief samplings from each of the four test parts comprising the battery are given here for illustrative purposes. The total number of exercises in each test is indicated in the samples.

[5] Loofbourow, Graham C., Keys, Noel, *Personal Index;* Educational Test Bureau, Inc., Minneapolis, 1933.

TEST 1

Directions. This is a test of your word knowledge. Put an X in front of each word you know. There are 100 words.

—perceive
—restore
—grole
—luxury
—rettle
—verify
—proportion
—galine
—exceed
—patient

TEST 2

Directions: Below are some words and phrases with some statements about each one. Mark an X in front of the one statement under each word or phrase which tells best how you feel about the thing named. Mark only one statement under each one.

(Seventeen items.)

1. Chums:
   —It is hard to go without them.
   —You cannot always trust them.
   —They sometimes squeal on you.
   —They help you he out of things.

3. Teachers:
   —They work hard
   —They know they can punish you.
   —They are not fair to you.
   —They are kind of cranky.

10. Policemen:
   —They have it in for the kids.
   —They are glad to help you out.
   —It is fun to fool them.
   —They are just big bluffs.

TEST 3

Directions: Read carefully and underline the one response which makes the best answer for you. Underline only one.

(Twenty-one items.)

1. Do you call another person by a nickname he or she does not like?	Almost always	Sometimes	Hardly ever
2. Do you keep right on studying when the teacher goes out of the room?	Almost always	Sometimes	Hardly ever
21. Do you speak pleasantly to all the people you know even if you do not like them?	Almost always	Sometimes	Hardly ever

TEST 4

Directions: Answer every question as truthfully and honestly as you can by drawing a line under the right answer, as shown in the samples

A Do you eat more than once a week?	Yes	No
B. Would you rather have a dime than dollar?	Yes	No

(Eighty-nine items)

1. Would you like to wear expensive jewelry, rings, etc.?	Yes	No
2. Do you feel bored a good deal of the time?	Yes	No
50. Are you anxious to get away from school and get a job?	Yes	No
89. Do you know anybody who is trying to do you harm or hurt you?	Yes	No

The test is constructed in such a way that the undesirable responses are the ones scored. The "problem" responses were determined by comparing the answers given by "problem" boys with those made by others of the same age and intelligence. Test 1, False Vocabulary, is scored by allowing 1 point for each fictitious word. The possible score on this part is 30 points. In Test 2, Social Attitudes, three of the four possible answers are socially unacceptable. Each answer so marked counts one error. The score is the number of errors multiplied by 2. The possible score is 34 points. Test 3, Virtues, is scored by allowing 1 point for each fault confessed. The score is obtained by multiplying the number of confessed faults by 2. The possible score is 42 points. For Test 4, the Adjustment Questionnaire, the score is the number of "problem" responses. The possible score is 89 points.

The sum of the four scores listed above gives the subject's personal index. The highest possible index is 195 points. The author's statement of the significance of these personal indices is quoted from the examiner's manual for the test:[6] "An index of 30 or less is clearly insignificant as regards problem behavior . . . A score of 40 or higher, however, strongly suggests an unwholesome trend, since such scores are made by three out of four reform school boys, as compared with only one in five of the others. Scores of 50 to 60 are much more highly indicative, and occur but rarely in unselected groups.

"By noting those boys who show high personal indexes, say 40 or over, principals, teachers, and counselors will have early brought to their attention those individuals most likely to become disciplinary problems and presumably in gravest need of observation and counsel."

The reliability of the battery is approximately .90.

[6] *Op. cit.*

100. Rating Scales for Character and Personality Traits.

In addition to these two types of more or less objective tests designed to reveal personality and character differences a number of general rating scales are also in common use. These are of two general types. Individuals are ranked according to their standing in regard to the specified character traits, or the character traits are rated and assigned a rank. The best rating scales tend to lessen the spread of teacher judgment and when two or three judgments are averaged are found to give fairly reliable estimates for an individual's traits. Hollingworth,[7] Shen,[8] and Rugg[9] have all reported studies on the reliability of rating character traits. On an average the reliability of these ratings is about .55 but varies from .40 to 70 on the best rating scales depending on the traits rated Whenever possible in using rating scales it is desirable to have two or three teachers rate the same pupil and then average the ratings. Rugg reports this to be a fairly satisfactory method although it is at times difficult to get pupils rated by three different individuals who know the pupil equally well.

Self-rating scales are also used for allowing pupils to rate themselves. This practice has some value in calling the pupil's attention to desirable traits, and in giving a better understanding of some of the desirable and undesirable traits. It has been found that pupils tend to rate themselves too high on the desirable traits, but in general the reliability of their ratings is about the same as results obtained on other types of rating scales.

Industrial education teachers have a definite need for measures of character and personality traits. Since the scales are the best measures available, it seems desirable to use them as one aid in pointing out and rating character and personality traits of pupils. It is well to bear in mind, however, that the general reliability of the best scales is only about .55, and the results obtained are only suggestive but are to be preferred to the unaided subjective judgment of the teacher.

The most common use for rating scales in teaching is to study pupils who are doing unsatisfactory work, although the results are valuable in developing character and personality traits in all pupils.

[7] Hollingworth, H L., *Judging Human Character,* D Appleton and Company, New York, 1922.

[8] Shen, E., "The Reliability Coefficient of Personal Ratings," *Journal of Educational Psychology,* Vol 16. 232-36, April, 1925

[9] Rugg, H. O, "Is the Rating of Human Character Practicable?" *Journal of Educational Psychology,* Vol. 12: 425-38, 485-501, November, December, 1921, 13: 30-42, 81-93, January, February, 1922.

Scales have also been developed for rating shop teachers. Scales of this type can be used by the supervisory officers or for self-rating and analysis. Teachers and supervisors should keep in mind at all times in using the results of rating scales that the average or median of several ratings is more reliable than the rating by one individual.

The values of trait rating are summarized as follows by Dr. Hughes: [10]

1. Trait rating affords the teacher a better understanding of the individual student. The teacher cannot conscientiously fill out the record unless she knows.

2 It affords a basis for the modification of school and classroom procedures. If these traits and attitudes are valuable in education, then the school situations and methods need to be adjusted to their development.

3. It gives a better understanding of special groups, such as above-average and superior students who are doing poor school work, or below-average students who are doing superior work, which entitles them to membership in honor societies, etc.

4. Follow-up of trait rating brings out the fact that teachers' marks for scholastic achievement are based, to a large extent, on the student's possession of desirable character traits These data indicate that teachers should be trained to give marks for scholastic achievement alone, and that other marks should be devised for character traits and attitudes, because they are important enough to deserve separate consideration.

5. Cooperation of parents in filling out trait-rating scales for their own children will tend to bring about a better understanding between the home and the school, resulting in better cooperation.

6. Self-rating by the students, on the same scale upon which they are being rated by teachers and parents, will tend to turn the students' attention to the importance of cultivating proper traits and attitudes. Students are inclined to attach importance to things which are being measured, recorded, and used.

7 Justice in marking and teacher judgments will be more apt to be accorded all groups of students when teachers and counselors have a more accurate knowledge of the character traits of their students than they could possibly gain by their own subjective judgments.

8. Trait rating and analysis will result in more scientific counseling, because it will help to furnish a wider basis of knowledge and information about the students upon which to predicate advice.

101. Desirable Traits in Industrial Education.

It is generally agreed that the public school has responsibilities in developing and helping to establish desirable character and personality traits. The industrial education teacher and his co-workers in other instructional fields have a share in this responsibility. We believe, also, that they have a definite contribution to make. In the first place, it requires time to develop personality. Personality continues to de-

[10] Hughes, W. Hardin, "Organized Personnel Research and Its Bearing on High School Problems," *Journal of Educational Research,* Vol. 10: 386-398, December, 1924.

velop as the result of an interplay between the original nature of the individual and the environment, regardless of the conscious attention given to it. Accordingly, the problem of the industrial education teacher who wishes to help develop desirable personalities in his pupils is first to find out what types of personalities adjust themselves best in our present complex social and economic life. In the second place, a desirable personality must be cultivated, and the desirable traits must be encouraged. The undesirable ones must be weeded out and their expression discouraged. However, it must also be remembered that personality development is limited by the innate capacity of the individual, and so its development may be expected to vary markedly under similar environmental conditions.

102. Constructing and Using Scales for Rating Personality Traits in Industrial Education.

Although scales for rating personality traits have not been as widely used as tests of information, intelligence, and mechanical aptitude, several usable techniques have been developed which will aid the teacher who desires to construct and use the trait rating scales. The first problem in the construction of such scales is the selection of the traits to be rated. This selection may be based on the observation and experience of the teacher, conferences with other instructors, conferences with the administrative officers, talking with the pupils and their parents, conferences with industrial and social leaders in the community, and suggestions from authoritative literature. After a rather exhaustive list has been prepared, a number, perhaps twenty, of the most important items should be selected for use in the rating scale. This selection may be accomplished through the use of pooled judgments of teachers and others interested in personality development. The traits selected must also conform to the general purpose of the course of study and be of such a nature that the industrial education teacher will have an opportunity to observe the expression of the traits in and about the school. For purposes of illustration let us consider the following personality traits which were selected by the authors after an analysis of the problem. The traits are listed and defined in terms of observable pupil responses.

Self-reliance. This means that there has been developed in the student the habit of planning tasks carefully and thoughtfully and of carrying them out with only necessary assistance. The problem is obviously too difficult before assistance is called for by the student.

Industry. This means a habit of careful, thoughtful work without loitering or wasting time.

Readiness to assume responsibility. This means that a task though difficult should not be avoided if worth doing, and when once undertaken should be carried through to completion.

Punctuality. This means the ability to arrive on time and fit oneself to a program.

Cooperation. This means a readiness to assist others when they need help, and to join in group undertakings.

Consideration of others. This means a thoughtful attitude in the making of things easy and pleasant for others. It involves keeping things in order, putting tools away in good condition, and always doing a full share of work where others are involved.

Cleanliness and neatness. This means the ability to keep physically clean and neat in both work and dress.

An optimistic viewpoint toward life. This means an appreciation of the joy of living and a belief that life is worth while.

After the character traits to be rated have been selected and defined, the next step is to put them into a rating scale which will permit the greatest amount of objectivity in scoring. There are several acceptable methods of accomplishing this, depending on whether the pupils are to be given a relative rank according to their traits, or whether the character traits of individuals are to be rated and assigned a rank. Dr. Hughes [11] gives the following three procedures used in rating:

Method I. Normal Distribution. In this method we apply the principle represented in the "normal curve of distribution" In any large number of unselected cases we find a few who possess a given quality in maximum degree, and a correspondingly small number who possess it in minimum degree. A much larger number, however, possess the quality in average degree. This general principle holds whether we consider height, weight, strength, or any other measurable quality or characteristic. For a scale consisting of five equal steps, we should have approximately the following distribution of cases on a percentage basis:

Lowest	Inferior	Medium	Superior	Highest
7	24	38	24	7

But for practical purposes we have adopted a theoretical distribution as follows:

Lowest	Inferior	Medium	Superior	Highest
10	20	40	20	10

Assuming that the individuals who are to be rated are unselected and representative we should have 10 in 100 marked "highest"; 10, "lowest"; 40, "medium"; and 20, "inferior" and "superior" respectively. A convenient method of rating such a group is to have the names on individual cards and then arrange these cards in five piles according to the percentage distributions required.

[11] Hughes, W. Hardin, "General Principles of Rating Trait Characteristics," *Educational Research Bulletin,* Pasadena, Vol. 3, Nos. 5 and 6, February-March, 1925.

The rater should as far as possible dismiss from mind every other item of the scale and concentrate on the one being rated.

The method of "normal distribution" is most usable with large and unselected numbers. When the number of cases is small and selected the method is defective. For this reason another method, based on the same principle, is presented

Method II. The Master Scale. To use this method, proceed somewhat as follows: Suppose the trait for which a master scale is to be made is industry.

1. Recall any student known to possess this trait in highest degree. Write his name opposite "highest" in the master scale.

2. Now, recall any student known to possess this trait in lowest degree and write his name opposite "lowest" in the master scale

3. Then recall any student known to possess the trait in average degree, write his name opposite "medium."

This gives three definite standards for comparison. The other places in the scale may now be filled in with names of two students half way between "medium" and "highest" and half way between "medium" and "lowest," respectively. You now have a master scale as follows:

Master Scale for Industry

Rating	Person	Numerical Value *
Highest	John Jones	180
Superior	Dick Brown	140
Medium	Sam Johnson	100
Inferior	Henry James	60
Lowest	Bill Smith	20

* The numerical values here assigned represent the half-way point in each 40 of a 200-point scale.

With this master scale in hand, the teacher is now ready to rate her students in industry. Suppose Tom Black is to be rated The teacher quickly decides whether Tom is as good as John Jones, as poor as Bill Smith, or just about like Sam Johnson, etc. Master scales for the other traits may be made and used in the same way.

The advantages of this scale are that it is objective and that small numbers of students can be rated without immediate reference to the "normal curve of distribution." In the long run, however, the percentage distributions should approximate those given under Method I.

103. A Useful Personality Rating Scale.

The authors have found the following type of scale valuable in rating personality traits in industrial education classes. It will be noted that it uses a form of the graphic method with the quality units spaced roughly corresponding to the normal distribution curve.

A GRAPHIC RATING SCALE

FOR PERSONALITY TRAITS IN INDUSTRIAL EDUCATION

Name________________________ Date____________

Instructor_____________________ Rating__________

Directions. Provision is made for two or more ratings of each personality trait on the basis of observable pupil responses. Place a check on the line which in your judgment represents a true estimate of the present status of the trait being rated.

MINIMUM	AVERAGE	MAXIMUM

SELF-RELIANCE

Does the pupil plan his work carefully and thoughtfully?

Does the pupil conduct the work with only necessary help?

Does the pupil ask for help when the problem is too difficult?

INDUSTRY

Is the pupil in the habit of doing careful and thoughtful work?

Does he loiter or waste time in his work?

READINESS TO ASSUME RESPONSIBILITY

Is the pupil willing to undertake a worth-while task even though it is difficult?

Does the pupil finish all his work?

PUNCTUALITY

Does the pupil arrive on time to classes?

Does the pupil hand his work in on time?

COOPERATION

Does the pupil help others when help is needed?

Is the pupil active in group undertakings?

Consideration of Others

Does the pupil have the habit of making things pleasant for his classmates?

Does the pupil help keep the shop in order?

Does the pupil put tools away in the right places?

When the whole class is involved in some work does he do his share or skip away?

Cleanliness and Neatness

Does the pupil wash clean?

Does the pupil dress neatly and in good taste?

Is the pupil neat in doing his work?

Optimistic View of Life

Does the pupil have a natural likable smile?

Does the pupil complain about his lot in life?

Is the pupil liked by his classmates?

To secure a total rating, score each question on the basis of the following key:

1	3	7	13	19	23	25	26

Methods of rating personality traits and of ranking pupils have been given and illustrated, but thus far self-analysis by the individual has not been discussed except to mention that it is not significantly higher in reliability than ratings of traits by outsiders. There is a tendency for individuals to rate themselves too high on the desirable traits and too low on the undesirable traits, just as there is a tendency of persons rating others they know very well to be influenced by the "halo effect." This refers to the tendency of the one rating character traits to rate them all about the same, depending on the rater's general opinion of the individual.

SUMMARY

This chapter presents a number of suggestions for the rating of personality and character traits. Personality in its broader sense is developed in an individual by the interplay of stimuli from the environment and the native capacities of the individual. The thesis of this chapter is that a desirable personality can be developed over a period of time through careful practice and an understanding of what is desirable in a well-rounded personality. Industry, cooperation, consideration for others, self-reliance, readiness to assume responsibility, and an optimistic view toward life are suggestive of desirable traits to be developed by industrial education teachers as co-workers with teachers in other instructional fields.

Tests of personality traits have not proved as reliable as rating scales, and for this reason major emphasis is placed on methods of developing and using rating scales. Authorities report the average reliability of rating scales at around .55. The most reliable ratings are obtained when the ratings of three or more judges are pooled. Some rating scales rank individuals from highest to lowest according to their personality traits; others give a graphic rating of the individual traits. In still other types the pupils are allowed to rate themselves. None of these methods is highly reliable, but they are better than the unaided subjective judgments of teachers.

SUMMARY EXERCISES FOR DISCUSSION

1. Distinguish clearly between the terms character and personality.
2. What, in your opinion, is the responsibility of the industrial arts teacher for the development of desirable personality and character traits?
3. Secure from your instructor a copy of the *Bernreuter Personality Inventory*, administer the exercises to yourself, and prepare a self-analysis on the basis of the personality qualities identified in this instrument.
4. Prepare a personality rating scale including the traits which in your judgment (coupled with information gained from reading in the field) are essential to success in teaching.

SELECTED REFERENCES

Allport, F. H. and G. W., "Personality Traits: Their Classification and Measurements," *Journal of Abnormal and Social Psychology*, Vol. 16: 6-40, 1921.

Book, W. F., *Learning How to Study and Work Effectively.* Boston: Ginn and Company, 1926.

Hartson, L. D., "An Experiment with Rating Scales Based upon a Tentative functional Analysis of the Subjects," Society of College Teachers of Education, *Educational Monographs*, No. XIV, 1925, Studies in Education, University of Chicago Press.

HUGHES, W. HARDIN, "General Principles of Rating Trait Characteristics," *Educational Research Bulletin,* Pasadena, Vols. 3 and 4, February and March, 1925.

JONES, Arthur J., *Principles of Guidance.* New York: McGraw-Hill Book Company, 1930.

LAIRD, DONALD A., *Increasing Human Efficiency.* New York: Harper and Brothers, 1925

McKAY, H. D. *The Development of Personality Traits.* Ph.D. thesis, University of Chicago, 1930.

NEWKIRK, LOUIS V., "The Shop Teacher and Personality," *Industrial Education Magazine,* Vol 18:370-372, No. 10, October, 1929.

ODELL, C. W., *Educational Measurements in High School.* New York: The Century Company, 1930.

VALENTINE, P. F., *The Psychology of Personality.* New York: D. Appleton and Company, 1927.

RATING SCALES AND TESTS

CORNELL, E. L.; COXE, W. W., and ORLEANS, J. S., *Rating Scale for School Habits.* Yonkers, New York; World Book Company, 1927.

DOWNEY, JUNE, *The Will-Temperament and Its Testing.* Yonkers, New York: World Book Company, 1923.

DRAGOO, ALVA W., *A Rating Scale for Shop Teachers.* Bloomington, Illinois: Public School Publishing Company.

HUGHES, W. HARDIN, "A Rating Scale for Individual Capacities, Attitudes, and Interests," *The Journal of Educational Method,* Vol 3:56-65, October, 1923.

McCLUSKY, F. D., and DOLCH, E. W., *Study Outline Test.* Bloomington, Illinois: Public School Publishing Company, 1926

MORRIS, ELIZABETH H., *Trait Index L.* Bloomington, Illinois: Public School Publishing Company, 1929.

CHAPTER XIV

SUMMARIZING THE RESULTS OF TESTING

Experience in the observation of the work of individual students and in the use of tests in the classroom leads to the conclusion that wide differences in pupil accomplishment may be expected. This means that scores representing objective measures of achievement in the classroom will vary widely. Since the human mind is not able to grasp and hold numerous unlike facts in isolation, it is apparent that some fairly simple and accurate methods of summarizing and describing such widely varying results are necessary. This process of summarizing, analyzing, and compressing data so that they may be given adequate description is the application of statistical methods.

Six statistical techniques are very useful in the analysis and interpretation of educational test results. They are: (1) the classification and tabulation of data; (2) the computation and interpretation of the common measures of central tendency; (3) the computation and interpretation of the more common measures of variability; (4) the expression of the extent and nature of the interrelations of measurable factors; (5) the derivation and use of standards, norms, and various derived scores for the purposes of comparison and interpretation of test results; and (6) the use of simple and effective graphic procedures for the presentation of facts. This chapter summarizes the discussion of these six points.

I. THE TABULATION OF TEST SCORES

104. Need for Grouping of Data.

The physical, mental, moral, and social unlikenesses of people make it impossible to describe them in few words. If all men were of the same height it would be a simple matter to describe the height of men. This need for a method of grouping data for convenience in treating and describing the situation is illustrated in the test scores given in Table 35 on page 188. This table shows the scores made by a group of 27 eighth-grade pupils on the *Newkirk-Stoddard Home Mechanics Test,* Form A. An examination of this table shows that Pupils 7 and 9 made the low and the high scores on this test. The re-

maining 25 pupils made scores between these extremes. Even with this small class, with scores ranging from 1 point to 15 points, it is apparent that it is difficult for the teacher to secure a clear picture of the achievement of the class without some treatment of the scores One of the very easiest of these procedures is the arrangement of the test scores in order of size from the highest to the lowest. This is called *ranking* the scores. These 27 scores have been ranked in descending order of size in Table 36. It enables the teacher to discover readily the highest and lowest scores, and, after some training and experience, to pick the scores which are more or less typical for the group.

The arrangement of test scores in order of size is helpful only when the number of pupils in the class is relatively small, as 10 or less. When more pupils are present it usually becomes necessary to group the scores into the form of a table. This is called *making a frequency distribution,* and the table naturally is called a *frequency table.*

105. Steps in Preparing a Frequency Table.

The three essential steps in the grouping of data in a frequency table are as follows:

1. *The determination of the range of the scores*

The *range* is the difference between the largest score and the smallest score in the array of series of scores. For the test scores given in Table 35, the range is 13—the difference between 15, the highest score, and 2, the lowest score.

2. *The determination of the number and size of the groups in the classification.*

TABLE 35

SCORES IN NUMBER OF JOBS RIGHT MADE IN EIGHTH-GRADE CLASS ON NEWKIRK-STODDARD TEST OF HOME MECHANICS

Pupil Number	Test Score	Pupil Number	Test Score	Pupil Number	Test Score
1	6	10	10	19	8
2	3	11	7	20	7
3	8	12	6	21	5
4	12	13	6	22	10
5	3	14	9	23	9
6	4	15	5	24	5
7	2	16	7	25	8
8	6	17	11	26	6
9	15	18	6	27	7

TABLE 36

SCORES IN TABLE 35 ARRANGED IN DESCENDING ORDER OF SIZE

Test Score	Pupil
15	9
12	4
11	17
10	10, 22
9	14, 23
8	3, 19, 25
7	11, 16, 20, 27
6	1, 8, 12, 13, 18, 26
5	15, 21, 24
4	6
3	2, 5
2	7

The number of groups, or *class intervals* as they are called, in a frequency table depends upon the range of the scores, as well as upon the size of the interval which it seems best to use. No specific rule covering this situation can be stated. In general it seems safe to say that it is usually unwise to group data into fewer than 15 to 18 intervals. On the other hand, the use of 25 or more intervals may introduce an unnecessary amount of labor in making the tabulation, and many less than 15 may introduce a serious *error of grouping*. Some useful suggestions on the relation of the range to the size and number of the class intervals to use in making a frequency table are given in Table 37.

TABLE 37

SUGGESTED RELATION OF RANGE OF SCORES AND SIZE OF CLASS INTERVALS

For a Range of	Use a Class Interval of
25 or less	1
26 to 69	3
70 to 125	5
126 to 175	7
176 or more	15

Error of Grouping. The so-called error of grouping results from the practice of putting into the same group, or interval, scores which are very widely unlike and in which only a few cases are found. It

is greater when the number of scores is small and when they are found at irregular intervals along the scale. For example, the tabulation of two scores of 44 into a class interval of three units (44, 45, and 46) with a mid-point of 45 involves an average error of grouping of 1.0 point, whereas the tabulation of seven scores of 44, 44, 45, 45, 46, 46, 46 into the same class interval introduces a smaller error. In placing these seven scores in the same class interval it is assumed that they will together have an average value approximately the same as the mid-point of the step (in this case 45). In this latter example, the error is not serious, since the average of these seven scores is actually 45.14 instead of 45. In tables with fewer and larger class intervals, it must be obvious that this error due to grouping may be much greater. The underlying idea in grouping scores into 15 to 25 intervals is to organize the scores into a sufficiently small number of classes so that they may be thought about effectively, and yet not place them in so few groups that important differences are covered up or significant errors of grouping are introduced.

3. *Tabulating the scores.*

The tabulation of test scores corresponds in many respects to the filing of letters or cards. The value or size of the score determines the filing compartment into which it is placed. The necessity for this exact classification makes clear to the student why it is so important that the limits of the class intervals be so exactly established in the preparation of the steps for a table. There must be no question as to the intervals in which each specific score is placed.

Undoubtedly the best way to clear up the problems of tabulation is to illustrate by making use of some actual test scores. In Table 35 the scores made by 27 eighth-grade pupils on the *Newkirk-Stoddard Test of Home Mechanics* are given. These test scores cover a range from 1 to 15 points. The real significance of 27 scores with such a range can not be gathered from the form in which they are given in Table 35. A simple form of grouping or compressing these data is used in Table 36 which shows the number of the individual pupil who made each specific score. As a matter of fact this table is turned into a simple frequency table by the process of setting up a scale of class intervals in place of the actual test scores and by substituting check marks or tabulation marks for the individual pupil numbers. Table 37 suggests that a class interval with a step of 1 unit be used in arrays in which the range is 25 points or less Accordingly, in this problem, class intervals of 1 with whole numbered mid-points are set up. Table 38 shows the results of setting up the intervals on this basis. The tabulation of the scores is shown in this table in the third

column. In tabulating test scores the common practice is to make a vertical mark (/) for each score of a given magnitude. When the frequency of any given score reaches 5, the fifth frequency is indicated by a diagonal mark crossing four of the vertical tabulation marks. In this manner, the frequencies are conveniently grouped by 5's, which simplifies the summation of frequencies in large populations.

A further illustration of the tabulation of a series of test scores is given in Table 39. The scores used in this case represent total

TABLE 38

DATA FROM TABLES 35 AND 36 ARRANGED IN FREQUENCY DISTRIBUTION

Class Intervals	Mid-Points	Tabulation Marks	Frequencies (f)
14.5–15.5	15	/	1
13.5–14.5	14		0
12.5–13.5	13		0
11.5–12.5	12	/	1
10.5–11.5	11	/	1
9.5–10.5	10	//	2
8.5– 9.5	9	//	2
7.5– 8.5	8	///	3
6.5– 7.5	7	////	4
5.5– 6.5	6	~~////~~ /	6
4.5– 5.5	5	///	3
3.5– 4.5	4	/	1
2.5– 3.5	3	//	2
1.5– 2.5	2	/	1
		Total, or N =	27

comprehension scores of a ninth-grade class on the *Iowa Silent Reading Test, Advanced Examination.*[1] The test scores of the 71 students comprising this class are as follows: 104, 129, 94, 87, 118, 146, 109, 163, 140, 125, 58, 86, 102, 103, 133, 77, 117, 114, 99, 110, 103, 93, 123, 137, 89, 118, 117, 107, 109, 117, 114, 162, 135, 115, 101, 109, 150, 130, 100, 109, 140, 102, 110, 148, 94, 122, 139, 115, 105, 125, 104, 141, 127, 100, 107, 116, 136, 142, 96, 103, 111, 145, 99, 105, 108, 98, 126, 112, 152, 114, 109

The range of the scores is found by subtracting 58, the smallest

[1] *Iowa Silent Reading Test,* Advanced, Forms A and B, World Book Company, Yonkers, New York

score, from 163, the largest score. The difference is 105. Table 37 suggests class intervals of 5 units for such a range. Accordingly, a class interval large enough to accommodate a score of 163 points is set up at the top of the table. Using a mid-point divisible by the size of the step means that the mid-point of this interval will be 165 and that the limits of the interval will be 162.5 to 167.7 points The

TABLE 39

COMPREHENSION SCORES ON IOWA SILENT READING TEST, ADVANCED EXAMINATION

Class Intervals	Mid-Points	Tabulation Marks	Frequencies (f)
162.5–167.5	165	/	1
157.5–162.5	160	/	1
152.5–157.5	155		0
147.5–152.5	150	///	3
142.5–147.5	145	//	2
137.5–142.5	140	~~////~~	5
132.5–137.5	135	////	4
127.5–132.5	130	//	2
122.5–127.5	125	~~////~~	5
117.5–122.5	120	///	3
112.5–117.5	115	~~////~~ ////	9
107.5–112.5	110	~~////~~ ~~////~~ /	11
102.5–107.5	105	~~////~~ ///	8
97.5–102.5	100	~~////~~ ///	8
92.5– 97.5	95	////	4
87.5– 92.5	90	/	1
82.5– 87.5	85	//	2
77.5– 82.5	80		0
72.5– 77.5	75	/	1
67.5– 72.5	70		0
62.5– 67.5	65		0
57.5– 62.5	60	/	1
			$N = 71$

remainder of the table is developed in a similar way until the complete series of 21 intervals necessary for this range of scores is built up. The table must provide for the entire range of the scores, from the largest to the smallest. The limits of the class interval at the bottom of the table are 57.5 to 62.5, which provides for the score of 58 at the lower end of the range of scores. Table 39 shows the entire

range of the class intervals, the mid-points, the tabulation marks, and the frequencies, based on these 71 reading-test scores.[2]

II. MEASURES OF CENTRAL TENDENCY

The second of the important statistical techniques required in connection with the summary of educational test results deals with the computation and interpretation of the common measures of central tendency This is the process of computing a single measure or term which may be used in describing the complete array of data in the table. The term *central tendency* arises through the fact that these measures are commonly found near the center of the distributions of scores when the scores are arranged in order of size.

Three measures of central tendency are commonly used in the interpretation of educational tests. These are: *the arithmetic mean, the median, and the mode.* In general, these measures are named in the order of their use in present-day test interpretation. As a matter of fact, the mode is considered to be such an unreliable measure that it is rarely used in educational measurements. In this discussion, consideration will be given only to the first two of the measures of central tendency, namely, the arithmetic mean and the median.

106. The Arithmetic Mean.

Almost everyone knows how to find a simple arithmetic mean or average, as it is commonly called, by dividing the sum of a series of measures by the number of measures. However, not everyone knows that there is a rapid and reasonably accurate method of computing the arithmetic mean of large numbers of measures in frequency tables. The speed and the satisfactory accuracy with which this important measure of central tendency may be computed for distributions of large numbers of cases has made it one of the most popular and useful of the measures of central tendency.

The calculation of the arithmetic mean from a frequency distribution requires a somewhat different concept of the measure than that used when it is computed from ungrouped data. For the 27 test scores given in Table 35 the sum of the measures is 191. The arithmetic mean, the result of dividing 191 by 27, is 7.07. When computed in this way the arithmetic mean does not especially require definition. It is easier simply to state how it is found. When computed by the

[2] A much more detailed discussion of the problem of tabulating test scores will be found in Greene's *Work-Book in Educational Measurements* (Longmans) Extensive practice in tabulation of test scores is given in Problems 1, 2, 3, and 4 of Work-Unit I of the above-mentioned *Work-Book*.

so-called shorter method, *the arithmetic mean is defined as a point on the scale such that the sum of the deviations of the values larger exactly equals the sum of the deviations of the values smaller than it is.* For those who think most clearly in concrete terms this arithmetic mean may be considered as the point in a beam of irregular but increasing thickness at which the fulcrum must be placed to bring it into perfect balance.

The actual computation of the arithmetic mean from a frequency table proceeds on the principle of the mathematical determination of the proper position of the fulcrum of such a beam from data resulting from a trial balance. That is, the beam is suspended on the fulcrum as nearly as can be determined by estimation, then the actual amount that the beam is out of balance is measured. Experience shows that the fulcrum must be moved in the direction of the heavy end of the beam in order to bring it into balance. The exact amount of this shift in position depends upon the difference in the forces bearing on the two ends of the beam. If there are 60 units of unbalanced force tending to turn a beam in a certain direction and there are 40 measures (scores) contributing to the distribution, it means that the fulcrum must be moved toward the heavy end of the beam an amount equal to 1 5 scale units of length ($60 \div 40 = 1.5$). This should bring the beam into balance.

107. Steps in Computation of Mean.

The specific steps to be taken in the computation of the arithmetic mean by the shorter method are as follows:

Step 1. Select the mid-point of some central step on the scale as an *assumed mean.* Call this point *zero.* (In computing the arithmetic mean from a frequency distribution the scores in a given step are all assumed to be grouped at the exact center of the step, hence the assumption of the mid-point of the step as the *zero*).

Step 2. Mark off steps of deviation above and below this assumed zero point, maintaining the algebraic signs.

Step 3. Multiply the frequency in each step by the deviation of the step Carry the algebraic signs of these deviations. Those above the zero step should be plus; those below it should be minus.

Step 4. Find the algebraic sum of these deviations, keeping the sign of the result.

Step 5. Divide this value by the number of cases in the distribution, and multiply this result by the number of units in each step. This result is the *correction* (c).

Step 6. Depending upon the sign of this correction (c), increase or

decrease the value of the mid-point of the step taken as the zero by the amount of c. This should give the *arithmetic mean.*

This procedure may be made clear by actually working the mean of the test scores tabulated in Table 38. The work is shown in detail in the accompanying table (Table 40).

TABLE 40

DISTRIBUTION OF SCORES TAKEN FROM TABLE 35 AND THE CALCULATION OF THE ARITHMETIC MEAN OF THE 27 SCORES

Class Intervals	*f*	*d*	*fd*
14.5 (15) 15.5	1	+7	7
13.5 (14) 14.5	0	+6	0
12.5 (13) 13.5	0	+5	0
11.5 (12) 12.5	1	+4	4
10.5 (11) 11.5	1	+3	3
9.5 (10) 10.5	2	+2	4
8.5 (9) 9.5	2	+1	2
			(+20)
7.5 (8) 8.5	3	0	
6.5 (7) 7.5	4	—1	—4
5.5 (6) 6.5	6	—2	—12
4.5 (5) 5.5	3	—3	—9
3.5 (4) 4.5	1	—4	—4
2.5 (3) 3.5	2	—5	—10
1.5 (2) 2.5	1	—6	—6
	$N = 27$		(—45)

Step 1. Assumed mean = 8.0.
Step 2. Lay off deviations
Step 3. Add plus and minus *fd*'s.
Step 4. Find algebraic sum of *fd*'s. $-45 + 20 = -25$
Step 5 Divide this algebraic sum by N $\frac{-25}{27} = -0.926.$
Multiply by size of the step $-0.926 \times 1 = -0.926.$
Step 6 8.000
0.926
7.074 = Arithmetic mean.

108. The Median.

The simplification of the work involved in computing the arithmetic mean has done much to stimulate its general use in the interpretation of educational test results in place of the median. However, the ease with which the median may be obtained, and the fact that it does not give undue weight to extreme scores as does the arithmetic mean, have made it a popular measure for use in educational measurements.

Some confusion has been created in the minds of students and teachers through a lack of consistency in the methods of computing the median. For many years it was common practice to instruct users of tests to arrange the test papers for a class with the scores in descending order of size, and take the score on the middle paper as the score best representing the achievement of the class. For a long time this score was called the *median* As a matter of fact, the measure of central tendency obtained in this way from ungrouped data is a crude median, but in order to distinguish it from the true median computed by data in a frequency distribution there is a tendency to call it the *mid-measure.* The *mid-measure* is a counting median found from ungrouped data. The *median* is always computed from grouped data.

Computing the Mid-Measure. By definition *the mid-measure is the score of the middle paper when the number of test papers is odd, and the average of the two scores nearest the middle when the number is even, assuming that the test papers are arranged in definite order of magnitude.* The method of computing this very simple measure may be illustrated by referring to the data given in Table 35. The 27 test scores given in this table arranged in descending order of size are as follows: 15, 12, 11, 10, 10, 9, 9, 8, 8, 8, 7, 7, 7, 7, 6, 6, 6, 6, 6, 6, 5, 5, 5, 4, 3, 3, 2. The mid-measure is found by counting off the scores until the middle paper is reached. In this case, it will be the score on the fourteenth paper, or 7 points. If there were only 26 papers and the high score of 15 were missing, the average of the thirteenth paper from either end of the scale would be used as the mid-measure.[3] Under these conditions the mid-measure would thus be the average of 6 and 7, or 6.5 points.

Computing the Median. The median is defined as *a point on the scale such that exactly 50 per cent of the cases in the distribution are above it and 50 per cent of the cases are below it.* The median is distinguished from the mid-measure by the fact that the former is a *point* on a scale whereas the latter is an actual *score* on a test paper (or the average of the two scores lying nearest the middle paper). The fact that the score on the middle paper of a series is not the same thing as the middle point in the scale of a frequency table of the same scores makes it important that the two types of measures be defined and distinguished in use. It will be a movement in the direction of uniformity of interpretation of test results if the median is always understood as being computed from data in a frequency distribution.

[3] See Problem 11 in Greene, *Work-Book in Educational Measurements* (Longmans), for additional drill on computing the mid-measure.

In the earlier discussion of methods of tabulation, and particularly in the explanation of the computation of the arithmetic mean, it was pointed out that all the measures falling in a given step are assumed to have the value of the *mid-point* of that step. This is necessary since the computation of the arithmetic mean involves the correction of an assumed mean and this correction may take place in either a positive or negative direction. Now, in computing the median a very different assumption is made, and since this point frequently causes considerable difficulty and confusion, the reasons for making it are explained here in some detail. Since the median is a counting measure and is obtained by counting into the distribution until a point is reached which throws one-half of the frequencies below it, it is necessary to assume that all scores assigned to a given step are distributed *uniformly throughout the step.* When working with the median, or measures of a similar character such as percentiles, all scores are assumed to be scattered through the step in this uniform manner. It may help to think of the steps or class intervals as air-tight compartments, and the scores or frequencies assigned to the steps as a volatile gaseous substance which expands and completely fills the compartment, regardless of how many or how few the frequencies may be. If four scores are assigned to a given step, each one of the cases represents one-fourth of the total area of the step. If there are 20 cases per step, each case is considered to represent one-twentieth of the area of the step in computing the median.

To find the median of a series of scores arranged in a frequency table take the following steps:

Step 1. Divide the total number of cases in the distribution (N) by 2 to determine 50 per cent of the cases. (See Table 38, $N/2$ is 13.5.)

Step 2. Beginning at the bottom of the column of frequencies, count up the frequencies as far as possible without exceeding the half-sum ($N/2$). (In Table 38 the frequencies $1 + 2 + 1 + 3 + 6$ equal 13, which is still less than the half-sum, 13.5.)

Step 3. Take the difference between the half-sum and the subtotal. (In this example the difference between 13.5 and 13 is 0.5 point.) This difference shows the number of cases which must be taken from the step in which the median is located. Since there are four cases in the next step, the step with the limits 6.5 to 7.5, one-half a case out of these four cases must be taken. Thus the median is located 0.5/4 or one-eighth of the way through the step. This shows the proportion of the step which must be passed in counting the fre-

quencies in order to reach a point on the test scale such that exactly one-half of the cases lie below it and one-half lie above it

Step 4. Since the four cases in this step are assumed to be distributed uniformly throughout the step, the fraction 0.5/4, or one-eighth, represents the fraction of the step which must be passed in order to reach the point known as the median. The fraction one-eighth is equivalent to the decimal 0.125. Since this value 0.125 is in steps and the steps in this table are one-point intervals this value must be multiplied by 1. This means that the median is 0.125 unit beyond (above) the lower limit of the step into which this fractional unit is taken.

Step 5 The beginning (lower limit, since the frequencies were counted from the lower end of the distribution) of the step having the four frequencies is 6.5. Therefore the 0.125 unit must be added to the value 6.5. The median thus becomes 6.625. For practical purposes the decimal may be rounded to 6.63.

Step 6. In statistical work of all kinds accuracy is extremely important. It is therefore very desirable to check all computations. The calculation of the median may be conveniently checked by the simple process of adding the frequencies down from the top of the distribution. In this case the interpolation would be 0.875 and would be subtracted from the *top* of the step, or from 7.5.[4]

The actual work of computing the median of the silent-reading scores given in Table 39 is given in detail in Table 41.

109. Uses of the Arithmetic Mean and the Median.

The question which of these very useful measures of central tendency to use in test interpretation frequently arises. In many respects there is not a great deal of choice. Prior to the general adoption of the shorter methods of computing the arithmetic mean the median was very popular. It is simple to compute, and furthermore, is considered especially suitable for test interpretation because of the fact that widely deviating scores do not unduly influence it. On the other hand, the arithmetic mean is now very easily calculated, and for most experimental purposes it appears to be quite important to have each individual score given weight in the results in direct proportion to its magnitude. The greatly increased use of educational tests for ex-

[4] This and a number of other points in the computation of the median are discussed and explained in connection with Illustrations 7, 8, and 9 (pages 35 to 38 inclusive) in the *Work-Book in Educational Measurements* by H. A Greene (Longmans) Problems 12, 13, 14, and 15 in this *Work-Book* also provide extensive drill on the finding of medians from all types of distributions.

TABLE 41

DISTRIBUTION OF TEST SCORES OF 71 NINTH-GRADE PUPILS. TOTAL COMPREHENSION SCORES FROM IOWA SILENT READING TEST; ADVANCED

Class Intervals	f
162.5–167.5	1
157.5–162.5	1
152.5–157.5	0
147.5–152.5	3
142.5–147.5	2
137.5–142.5	5
132.5–137.5	4
127.5–132.5	2
122.5–127.5	5
117.5–122.5	3
112.5–117.5	9
107.5–112.5	11
102.5–107.5	8
97.5–102.5	8
92.5– 97.5	4
87.5– 92.5	1
82.5– 87.5	2
77.5– 82.5	0
72.5– 77.5	1
67.5– 72.5	0
62.5– 67.5	0
57.5– 62.5	1
	$N = 71$

Step 1. $\frac{71}{2} = 35.5 =$ half-sum.

Step 2. $1 + 1 + 2 + 1 + 4 + 8 + 8 = 25.$ Subtotal.

Step 3: $35.5 - 25 = 10.5$

Step 4. $\frac{10.5}{11} = 0.954 \times 5$ (size of step) $= 4.77.$

Step 5: $107.5 + 4.77 = 112.27 =$ median.

Step 6: Check.

$35.5 - 35 = 0.5$

$\frac{0.5}{11} \times 5 = 0.23$

$112.5 - 0.23 = 112.27 =$ median

perimental purposes has thus naturally tended to increase the popularity of the arithmetic mean as a measure of central tendency. In general, and in the absence of any other guiding principle, use the median in all interpretations or comparisons in which the median itself was used in securing the basis for comparison. That is, if test results are to be compared with test norms which are based upon medians, then the medians of the test results should be computed and used. Comparative norms based upon means may well be compared with class means. For most experimental purposes the arithmetic means should be used, particularly where the scores of individuals are compared with their own scores obtained under experimental controls. In most experimental studies it is desirable for all measures to receive consideration, and furthermore, in most such studies other measures, as the standard deviation, are required. Since these additional statistical measures are usually based upon the same processes as those used in calculating the mean, the arithmetic mean is the logical measure to use.

III. MEASURES OF VARIABILITY

The need for measures of variability in the interpretation of test scores arises through the fact that two groups of pupils may earn scores on a test which will have the same medians or arithmetic means and yet represent distinctly different types of instructional situations. At least two types of descriptive measures of a distribution are needed before all its essential features can be revealed. The measures of central tendency reveal the points on the scale where the typical scores are most likely to be found. Some method of expressing variability is required to reveal differences in range of talent.

The two groups of scores presented as Class A and Class B in Table 42 illustrate this situation very clearly. The means of the two

TABLE 42

ILLUSTRATION OF NEED FOR MEASURES OF VARIABILITY

Class A		Class B
122		98
116		96
108		95
101		93
96		90
92		89
89		87
86	Means	86
83		85
80		83
76		82
71		79
64		77
56		76
50		74

series of scores are identical, each being 86. The *range* of the scores for Class A is 72 (122 − 50), which is exactly three times the range (98 − 74 = 24) of the Class B scores. The *quartile deviation* computed from the ungrouped scores is 15 for Class A and 7 for Class B. The *standard deviations* of the scores are 20.16 and 7.3 for the Class A and Class B scores respectively. Even the most inexperienced teacher or student must recognize that very different ranges of ability are present in these two classes and that correspondingly different instructional problems are presented to the teacher.

110. The Range.

Of the three commonly used measures of variability mentioned in the illustration in the previous paragraph the *range* is the easiest to find and the least useful measure. *The range is the scale distance between the lowest and the highest scores in an array.* The very definition of the range makes it apparent that it is one of the least reliable measures, since it is so readily affected by the fluctuation of either of the extreme scores. In arrays of test scores or frequency tables in which the scores fall into line quite regularly the range may be a fairly consistent measure. In the illustration given in Table 30 the range is almost as effective in revealing the spread of ability as the standard deviation, which is usually considered to be one of the most reliable measures of dispersion. This, without doubt, may be traced to the consistency with which the test scores vary above and below the means. It may be sufficient to point out here that the range is rarely used as an evidence of dispersion or variability in the interpretation of educational-test scores since such scores rarely fit into the scale with the consistency shown in the illustration in Table 30.

111. Quartile Deviation.

The particular merit of the *semi-interquartile range* or *quartile deviation* (Q) as a measure of the variability of test scores lies in the fact that it utilizes the range of the middle half of the cases rather than the range of the extremes. In actual practice the range of the middle half of the cases is found by counting off frequencies from the lower end of the distribution until a point cutting off 25 per cent of the cases is located. The method of finding this point is identical with the procedure in computing the median except that only 25 per cent instead of 50 per cent of the cases in the distribution are considered. This point is commonly designated as Q_1. A point on the scale which cuts off 25 per cent of the cases from the top of the distribution is found in a similar way. This is known as Q_3. The remaining cases included between these two points are the middle 50 per cent. The reliability of this measure lies therefore in the fact that it is based upon the portion of the distribution in which the density of the population is greatest.

The quartile deviation (Q) is found by taking one-half of the difference in the scale values of the points Q_3 and Q_1. The formula for this measure of variability is $Q = \frac{Q_3 - Q_1}{2}$. The computation of Q is illustrated in terms of the data presented in Table 41, and since the

procedures are essentially the same as those used in finding the median the steps are summarized very briefly.

Step 1. Find 25 per cent of the cases. In this problem one-fourth of the cases equals 17.75.

Step 2. Summate the frequencies beginning at the bottom until a point not in excess of 17 75 cases is reached. $1 + 1 + 2 + 1 + 4 + 8 = 17$. The difference between this subtotal and 17.75 is 0.75 case.

Step 3. 0.75/8 times 5 equals 0.47 unit.

Step 4. Add 0.47 unit to the beginning of the interval in which the 8 cases are found. Thus, 102.5 + 0.47 equals 102.67, which is Q_1 for this distribution.

Step 5. Summate the frequencies beginning at the top of the distribution. $1 + 1 + 3 + 2 + 5 + 4 = 16$. The difference between $N/4$ or 17.75 is 1.75 cases.

Step 6. 1.75/2 times 5 equals 4.38 units.

Step 7. Since this computation of Q_3 is proceeding from the *top* of the distribution the 4.38 units must be *subtracted* from the *top of the step* into which the interpolation is made. Thus, $132.5 - 4\,38 = 128.12$, which is Q_3 for this distribution.

Step 8. $Q_3 - Q_1$ or $128.12 - 102.67$ equals 25.45, which is twice the value of the semi-interquartile range. Thus 25 45 divided by 2 equals 12.73, or the quartile deviation for this distribution.

The values Q and the median (Q_2) are frequently confused. They are quite different measures, however. The median or fiftieth percentile is a measure of central tendency; Q is a measure of the variation. Q expresses the variability of an array in terms of the average distance from the center of the distribution it is necessary to go in either direction to include the middle half of the cases.

112. Standard Deviation.

Such simple devices as the range and quartile deviation (Q) are sufficiently exact for many ordinary situations involving the interpretation of test results. However, other statistical analyses demand more refined measures of variability. For this type of work the *standard deviation* is generally used. *The standard deviation is the square root of the mean of the square of the deviations from the mean of a distribution.* Expressed in symbols the standard deviation is $S\sqrt{\frac{\Sigma FD^2}{N} - C^2}$ in which ΣFD^2 equals the deviations expressed in the form of the sum of the products of the frequencies at each step by the deviation of each step from the assumed mean; N equals the number of cases in the distribution; c equals the correction used in computing

the arithmetic mean; and s represents the size of the class interval of the distribution in units.

The standard deviation may be computed about any common measure of central tendency, although in common practice it is usually computed about the arithmetic mean. There is at least a theoretical advantage in using the mean as the point around which to determine the standard deviation. The arithmetic mean is the point in a distribution about which the deviations are the least.

113. Meaning of the Standard Deviation.

The likenesses and differences of the quartile deviation (Q) and the standard deviation (σ) are shown in Fig. 21. The quartile deviation, or semi-interquartile range, by definition takes into account the middle

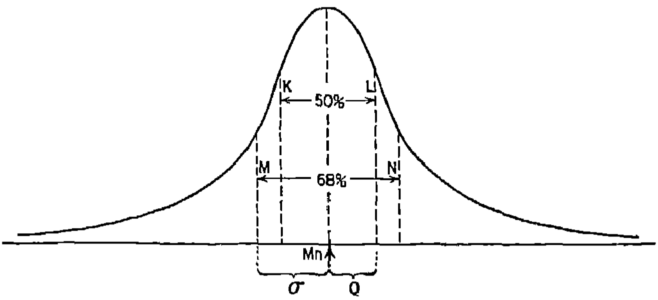


FIG. 21.—Comparison of Standard Deviation and Quarter Deviation (Q).

50 per cent of the cases. That is, the ordinates (lines erected perpendicular to the base line of the curve) erected at a scale distance equal to Q on either side of the mean or median include 50 per cent of the area of the surface between the curve and the base line. In the diagram the lines K and L represent the ordinates erected at a distance equal to Q on either side of the mean. The lines M and N represent ordinates erected at a distance equal to σ on either side of the mean. The standard deviation (σ) takes into account approximately 68 per cent (in a normal distribution 68.26 per cent) of the area of such a distribution.

In a normal distribution the value *sigma* bears a definite relationship to the curve of the distribution itself. When a normal distribution is presented in graphic form the result is a symmetrical bell-shaped curve with many cases in the middle and few at the extremes. Certain types of these characteristic bell-shaped distributions have come to be called *normal* curves. For these normal curves, formulas have been derived from which such typical curves may be computed if certain basic data concerning the curve are given. In these formu-

las *sigma* is one of the values which must be given in order to construct such a curve. Sigma, in the typical formula, represents the distance from the mean at which the curve changes from convex to concave. In Fig. 21 the points where the curve changes its character are indicated by the ordinates lettered *M* and *N*.

Thus, because of this direct mathematical relationship which the standard deviation bears to the curve of the distribution itself, and the reliable expression of variability which it provides due to the fact that every deviation in the distribution is considered, the standard deviation is one of the most useful of the measures of variability.

114. Computing the Standard Deviation (σ) from Ungrouped Data.

In the computation of the standard deviation from ungrouped data, as in the accompanying illustration, the mean of the distribution must be found. When the data are grouped in a frequency table it is not strictly necessary for the arithmetic mean to be computed, although it is necessary to go through all but the last step of the process.

The steps in the computation of the standard deviation from ungrouped data are given in detail in connection with data from Table 42. See Table 43.

TABLE 43

DATA FOR CLASS A FROM TABLE 42

Test Scores	d (Deviation)	d^2 (Deviations Squared)
122	+36	1296
116	+30	900
108	+22	484
101	+15	225
96	+10	100
92	+6	36
89	+3	9
86	0	0
83	−3	9
80	−6	36
76	−10	100
71	−15	225
64	−22	484
56	−30	900
50	−36	1296
Total 1290		$\Sigma d^2 = 6100$
Mean 86		

$$\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma d^2}{N}} = \sqrt{\frac{6100}{15}} = \sqrt{406.67} = 20.17$$

The mean of the scores for Class A in Table 43 is 86. Thus a score of 89 deviates from this mean by 3 points. A score of 96 deviates 10 points, etc. The standard deviation (σ) is the mean of the squares of these deviates from the mean of the array of scores. It is necessary therefore to square each of these deviates. These are given under the column headed d^2. Since each deviation appears only once and the data are ungrouped, the formula may be simplified to read $\sigma = \sqrt{\Sigma d^2/N}$. The sum of the deviations squared (Σd^2) is 6100. The mean of these deviations is therefore 406.67. This value is the mean of the deviations squared. Therefore to turn it into units of the scale the square root of this quantity must be taken. This value is found to be 20.17, which is the standard deviation (σ) of this series of scores. The mean of this distribution is 86. The σ is 20.17. This means that, between scores 20.17 points larger and 20.17 points smaller than this mean, approximately two-thirds (68.26 per cent) of the scores will be found.

115. Computing the Standard Deviation from Grouped Data.

The method of computing the standard deviation from ungrouped data illustrated in Table 43 may be applied with very few changes to the calculation of sigma from grouped data. A slight change in the general formula is required, for, when the scores are grouped in class intervals, the deviations of the scores must be considered by groups having the mid-points of the steps in which they are found. This permits the expression of the deviations in steps rather than in units of the scale. The formula for use in calculating the standard deviation when the data are grouped in a frequency distribution is $s\sqrt{\frac{\Sigma fd^2}{N} - c^2}$. The steps in the application of this formula in the calculation of the standard deviation of the scores originally presented in Table 38 will make clear all the processes involved in finding the sigma of a frequency distribution. The computations themselves are shown in Table 44.

Step 1. Assume a mean as near as possible to the true mean of the distribution in order that the correction (c) may be as small as possible. If the correction is larger than 0.5 step it may be desirable to start the work over and assume a mean nearer the true mean. In Table 44 the step with a mid-point of 7 is taken as the zero step.

Step 2. Lay off deviations above and below the step assumed as zero, and multiply the frequencies in each step by the deviation of the step exactly as in the calculation of the arithmetic mean.

Step 3. Summate plus fd's and the minus fd's algebraically. The

TABLE 44

DATA FROM TABLE 38

Class Intervals	Mid-Points	f	d	fd	fd^2
14.5–15.5	15	1	+8	8	64
13.5–14.5	14	0	+7	0	
12.5–13.5	13	0	+6	0	
11.5–12.5	12	1	+5	5	25
10.5–11.5	11	1	+4	4	16
9.5–10.5	10	2	+3	6	18
8.5– 9.5	9	2	+2	4	8
7.5– 8.5	8	3	+1	3	3
6.5– 7.5	7	4	0	+30	
5.5– 6.5	6	6	−1	6	6
4.5– 5.5	5	3	−2	6	12
3.5– 4.5	4	1	−3	3	9
2.5– 3.5	3	2	−4	8	32
1.5– 2.5	2	1	−5	5	25
	$N = 27$			−28	218

$$c = \frac{30 - 28}{27} = \frac{+2}{27} = +0.074.$$

$c = 0.005.$

$$\frac{\Sigma fd^2}{N} = \frac{218}{27} = 8.037.$$

$8.037 - 0.005 = 8.032.$

$\sigma_{\text{steps}} = 8.032 = 2.83.$

Step of 1 in table, therefore $\sigma = 2.83$.

sum of the fd's in this problem is + 2 units. Divide this by the number of cases in the table ($N = 27$), and the resulting correction (c) is + 0.074. This correction is the same as the one used in computing the mean.

Step 4. Square this correction in order to have it in the same denomination as the values from which it must later be subtracted. The square of c (+ 0.074) is 0.005 in this problem.

Step 5. Multiply the values under the column headed fd by the values under d. This will give a column of values known as fd^2. Summate this column. In this problem the sum of the fd^2 is 218.

Step 6. Divide the sum of the fd^2 by N, the number of cases in the distribution. The result of this division is 8.037.

Step 7. Since this value, 8.037, is always too large in proportion to the amount the true mean deviates from the assumed mean (in this case, the amount represented by the value *c*) it must be reduced an amount equal to the square of *c*. Thus,

$$8.037 - 0.005 = 8.032.$$

Step 8. The sigma of this distribution expressed in steps is next obtained by extracting the square root of the value 8.032. The square root of this value to two decimal places is 2.83. Since the class intervals used in this frequency table are steps of one unit, the standard deviation is therefore 2.83.[5]

116. Using the Standard Deviation.

Assignment of Class Grades. The student or teacher who is interested in the critical analysis of test scores will find the standard deviation a very useful and reliable instrument for the purpose. For example, it offers the basis for a practical plan for turning scores on objective tests into class marks. The importance of this practice is so great that the steps involved in the technique are given in detail. The computations described are based upon the objective test scores from a class of 45 pupils given in Table 45. The student will do well to check all these computations for errors.

Step 1. Prepare a suitable frequency table of the test scores, lay off the deviations from the assumed mean, and find the sum of the *fd*'s and the arithmetic mean. The mean of this distribution is 68.55.

Step 2. Compute the standard deviation (σ) of this distribution by multiplying the *fd*'s by the deviations in steps, summating the fd^2's, dividing this sum of the fd^2's by the number of cases, subtracting from this quotient the square of the *c* used in finding the arithmetic mean, extracting the square root of this remainder, and multiplying this root by the size of the step used in the table. The standard deviation of this distribution found in this manner is 19.40.

Step 3. Since a distance of two and one-half sigma units above and below the mean includes almost 99 per cent of all cases in a distribution this number of sigma units is laid off above and below the mean. This naturally results in placing one of the sigma units in the middle of the distribution in such a way that one-half of the sigma distance of the middle unit extends above the mean and one-half

[5] Problems 19, 20, and 21 in Greene's *Work-Book in Educational Measurements* (Longmans) furnish excellent supplementary practice in the computation of the standard deviation.

TABLE 45

STANDARD DEVIATION TECHNIQUE FOR ASSIGNING CLASS GRADES *

Test Scores		Mid-Points	Class Intervals	f	d	fd	fd^2
109		110	107.5–112.5	1	10	10	100
104		105	102.5–107.5	2	9	18	162
103	A(11.1%)	100	97.5–102.5	2	8	16	128
102		95	92.5– 97.5	4	7	28	196
99		90	87.5– 92.5	0	6	0	0
95		85	82.5– 87.5	2	5	10	50
95		80	77.5– 82.5	2	4	8	32
94		75	72.5– 77.5	3	3	9	27
93		70	67.5– 72.5	3	2	6	12
84	B(17.8%)	65	62.5– 67.5	4	1	4(+109)	4
83		60	57.5– 62.5	7			
79		55	52.5– 57.5	7	−1	−7	7
79		50	47.5– 52.5	4	−2	−8	16
77		45	42.5– 47.5	1	−3	−3	9
76		40	37.5– 42.5	1	−4	−4	16
76		35	32.5– 37.5	2	−5	−10(−32)	50
71				$N=45$		77	809
71							
69							
64							
64	C(35.5%)						
64							
64							
62							
60							
60							
60							
59							
59							
58							
57							
57							
56							
56							
55							
55							
53	D(31.1%)						
52							
52							
51							
51							
47							
41							
37	Fd(4.5%)						
37							

$$\text{A.M.} = 60 + s\frac{\Sigma fd}{N} \qquad\qquad \text{S.D.} = s\sqrt{\frac{\Sigma fd^2}{N} - c^2}.$$

$$= 60 + 5\cdot\frac{77}{45} \qquad\qquad = 5\sqrt{\frac{809}{45} - (1.71)^2}$$

$$= 60 + 5(1.71). \qquad\qquad = 5\sqrt{17.98 - 2.92}$$

$$= 60 + 8.55. \qquad\qquad = 5\sqrt{15.06}.$$

$$= 68.55. \qquad\qquad = 5 \times 3.88 \text{ or } 19.40.$$

Find score limits:

$68.55 + \frac{1}{2}(19.40) = 78.25$ upper limit of C group.

$68.55 + 1\frac{1}{2}(19.40) = 97.65$ upper limit of B group.

$68.55 - \frac{1}{2}(19.40) = 58.85$ upper limit of D group.

$68.55 - 1\frac{1}{2}(19.40) = 39.45$ upper limit of F group.

A = above 97.65. D = 39.45 to 58.85.

B = 78.25 to 97.65. Fd = below 39.45.

C = 58.85 to 78.25.

* For a complete explanation and discussion of the many problems involved in objectifying teachers marks see Bangs, C. W., and Greene, H. A., "Teachers' Marks and the Marking System," University of Iowa Extension Bulletin No. 244, College of Education Series No. 26, May 15, 1930.

below. Accordingly, to the arithmetic mean of 68.55 add one-half of the standard deviation (one-half of 19.40). This gives a value of 78 25, which becomes the upper limit of the group of scores which will be assigned grades of C.

Step 4. The upper limit of the group of scores to be assigned B's is found by adding one and one-half standard deviation units to the arithmetic mean. Thus, $68.55 + 1.5\ (19.40) = 97.65$, which is the upper limit of the B group.

Step 5. The upper limit of the D group is found by subtracting one-half of a standard deviation unit from the mean. $68.55 - 0.5\ (19.40) = 58\ 85$.

Step 6. The upper limit of the Fd group is obtained by subtracting one and one-half sigma units from the mean of the distribution. $68.55 - 1.5\ (19\ 40) = 39.45$.

Step 7. From these values the score limits of this distribution may be set up. Class grades may then be assigned as indicated to the scores within the limits specified.

Grades	Score Limits
A	97.65 and above
B	78.25 to 97 65
C	58.85 to 78 25
D	39 45 to 58 85
Fd	below 39.45

It is readily apparent that practically no subjective factors are involved in the assignment of grades by this method. The objective test scores of the 45 pupils used in the illustration are changed by this treatment into 5 A's, 8 B's, 16 C's, 14 D's, and 2 Fd's. The score limits are determined by the standard deviation units and would be the same no matter who assigned the grades It should be noted, however, that *these limits hold only for this particular distribution and must not be assumed to be true for any other test.* The teacher should also remember that this method of grading does not take into account the absolute level of ability at which a particular class works. The superior pupil in an average or poor class receives an A by this method just as readily as does the superior pupil in a very superior class. This is probably less serious than it sounds, however, for most class groups large enough to warrant the application of this technique average out quite well in this respect.

Basis for T-Scores and Other Derived Scores. The standard deviation also affords the basis for derivation of a number of useful

derived scores in test interpretation. For example, the T-score now commonly used in commensurating test scores depends upon the standard deviation for its basic unit. For many years prior to the development and popularization of the T-score, test scores were expressed in terms of their position in the total distribution. For instance, a pupil's score might be a member of a distribution having a mean of 60 points and standard deviation of 5 points. A score of 50 in the test would be designated by a standard score of -2.0 sigma units, since it lies exactly two standard deviation units below the mean of the distribution. This same procedure is used in assigning T-scores. The formula for the T-score is $T = \frac{(m - x)\ 10}{\sigma} + 50$, in which m is the mean of the distribution, x the deviation of the score, and σ the standard deviation of the distribution. The difference between the mean and any test score is multiplied by 10 in order to remove all decimal points. The 50 points are added in order that there may be no negative scores. The T-score is a very convenient method of interpreting test scores. T-scores of 25, 50, and 75 mean that the individual pupil's scores were right at the lower quartile, the median, and the upper quartiles. This fact makes it easy to attach meaning to the test scores.

Scaling of Test Items. The standard deviation, along with certain other measures of variability, represents a convenient unit in which to evaluate the difficulty of test items. When used under these conditions the standard deviation of a theoretically normal curve of the specified ability is used as the unit in laying off differences in difficulty along a linear scale. As a first step in the procedure, the percentage of pupils failing on each item or exercise must be secured. By means of tables based upon the normal curve these percentages of failure are changed into standard deviation units which express the position of the exercises with respect to the mean ability of an infinite and normal population. Exercises which are answered successfully by 50 per cent of the class are assigned a position at the mean. Exercises missed by 55 or 60 per cent of the class are given sigma values above the mean, etc. A significant feature of this procedure, however, is the fact that a difference in difficulty of 5 per cent near the mean results in a relatively small sigma difference, while a 5 per cent difference near the extremes of the distribution makes a relatively large sigma difference. This is in conformity with the fact that because of the height of the curve near the mean a smaller distance along the linear scale on the base line is required to add a given area of the curve. Thus, the difference in the sigma values assigned to two

test items having percentages of failure of 55 and 60 is 0.13 standard deviation unit (2.74-2.61),[6] while the difference in apparent difficulty of two items failed by 90 and 95 per cent of an experimental group is 0.34 standard deviation unit (4.09-3.75). The net result of this method of item evaluation is to magnify somewhat the simplicity of the very easy items and the difficulty of the very hard ones.

Sigma units are also utilized in the construction of scales for the estimation of the merit or quality of certain classroom products. The use of these units in the derivation of such scales is discussed in detail in Chapter XII of this book.

IV. MEASURES OF RELATIONSHIP

The critical analysis and interpretation of educational test results often make it necessary for the teacher and research student to secure more exacting descriptions of the situation than are afforded by the simple measures of central tendency and variability. For example, the matter of the selection of the test itself is one which cannot be determined wholly on the basis of the arithmetic means and the standard deviations. The most useful information for this purpose is found by determining the relationship which exists between the ability to be measured and the tests or measures under consideration. In the construction and use of informal objective examinations there are occasions when it is necessary to discover exactly how accurately the examination measures, and how much this accuracy would be improved by increasing the length of the examination. This type of analysis also requires the use of the method of correlation, the method which permits the determination of relationships among different measures of the same individuals.

117. The Correlation Coefficient.

In the statistical expression of relationships, as in the other measures, it is desirable that this relation between two series of variables be expressed in a single objective or mathematical value. A number of different ways have been proposed for the derivation of these expressions of relationship, but no one of them has produced a term which is both objective and easily interpreted. Methods of computing relationships in terms of the correspondence between rank positions of scores, and in terms of the percentage of the scores falling within a specified unit of variability of each other, have been pro-

[6] See Table 5 on page 392 of Rugg's *Statistical Methods Applied to Education* (Houghton Mifflin), or any similar table of sigma values.

posed. In general these procedures lack sufficient exactness to warrant their common use in the analysis of test results. The student who is interested in these different methods of revealing relationships will find them discussed in certain of the treatments on statistical methods listed in the references at the end of this chapter. In this discussion, attention is given exclusively to the Pearson product-moment method, which is not only the basic method but also the one most commonly used in educational statistics.

The index expressing the degree of relationship between two series of measures is called a *coefficient of correlation*. The coefficient resulting from the application of the Pearson product-moment method is designated as r. The possible values of r range from perfect positive relationships $(+ 1.0)$ through all the possible decimal values through zero to $- 1.0$ indicating a perfect negative relationship. An r of zero is taken to mean that no relationship exists between the measures or that it is entirely due to chance. Positive relationships may be expected between such factors as barometric readings and atmospheric pressure, or between each of such factors as native capacity, initiative, effort, concentration, interest, and school accomplishment in a given field. Negative relationships are usually found to exist within a given school grade between the chronological age of the pupils and their achievement scores on a reliable achievement test. Many low or zero relationships are found in educational data, but the best illustration of this type of correlation is one in which pure chance operates. If two packs of numbered cards are shuffled carefully and cards are drawn from each pack and paired, the resulting relationship is due to pure chance, and the coefficient of correlation (r) approaches zero. If the same packs of cards are rearranged so that the numbers appear in ascending order in each pack and cards are drawn off the top of each and paired as before, the r obtained should be positive and very high. If one of the packs is inverted and the cards are drawn as before, the result should be a high negative correlation.

The Pearson product-moment method of computing correlations, while involving a large number of rather complicated calculations, really calls for very few skills that the student has not encountered previously in this work. This coefficient of correlation (r) is a single numerical value which expresses the tendency of corresponding pairs of measures of two fields to deviate similarly from their respective means. Modern methods of work permit the computation of this coefficient from data arranged in frequency tables of the double-entry type.

The double-entry or correlation table permits the simultaneous

tabulation of two measures of the same individuals. The class intervals are set up exactly the same as in preparing a simple frequency table. In fact, it is merely an overlapping table with two sets of class intervals, one reading upward along the left-hand margin and one reading to the right along the top. Such a double-entry tabulation is shown in Table 46, which also serves to illustrate the specific steps involved in computing the correlation coefficient.

The data in Table 46 represent the very real problem of determining the reliability of an experimental test by finding the correlation of the scores made on one-half of the test with the scores made on the other half. Let us assume that Pupil A made scores of 25 and 29 on the two halves of the test The position of the score of 25 on the first half is found in the scale for that part of the test. This is in the step with a mid-point of 24. We then move across the table horizontally until the proper space is found for the score of 29 on the second half of the test. This is in the step with a mid-point of 30. A single tabulation mark in that space identifies both scores and at the same time indicates something of their relation to each other. In such a table a tendency for the frequencies to group themselves along the diagonal of the table itself is an indication of a positive relationship. Scores which deviate from the diagonal reduce the relationships. Figure 22 indicates something of the types of relationship which may

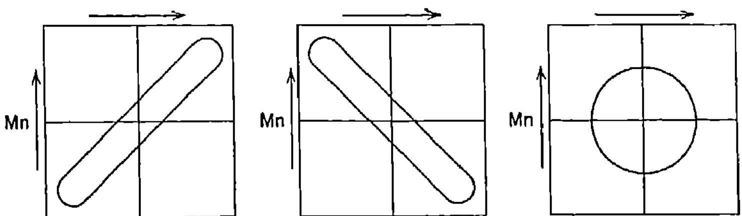


FIG. 22.—Types of Relationship.

be expected from characteristic groupings of data. This interpretation can be made only when the scales of the tables read upward and to the right.

118. Computation of Pearson Coefficient of Correlation.

The Pearson product-moment coefficient of correlation is found by the solution of the following formula:

$$r = \frac{\frac{\Sigma xy}{N} - c_x c_y}{\sigma_x \sigma_y}$$

in which N is the number of cases in the distribution, σ_x the standard deviation of the distribution on the x-axis, σ_y the standard deviation on the y-axis, c_x the correction on the x-axis, c_y the correction on the Σy-axis, and xy the summation of the products of the deviations of each measure from the means of the distributions.

The following steps are involved in the solution of the formula as applied to the data given in Table 46:

Step 1. The data are already tabulated in a double-entry or correlation table, so the first step in the work is to total the frequencies on each axis and cross-check the totals.

Step 2. Assume suitable means for each axis of the table and lay off steps above and below the zero step. Compute the corrections on the x-axis and on the y-axis exactly as in finding the arithmetic mean and the standard deviation. In this work the c_x is $+ 0.307$ and the c_y is $- 0.109$.

Step 3. Multiply the fd column by the d column and summate the resulting fd^2's separately for each distribution. Complete the calculation of the standard deviation for each distribution. *Leave the resulting sigmas in terms of steps.* This will save an extra multiplication and unnecessary division later in the work.

Step 4. Find the sum of the xy products. This constitutes the only absolutely new step in the process up to this point. In the product-moment method each score or frequency is weighted in proportion to the distance it lies away from the means of the distributions. Thus, in the example, the single individual score which lies in the extreme upper right-hand section of the table deviates a distance of $+ 6$ steps from the mean of the y-axis and $+ 7$ steps from the mean of the x-axis. The combined moment of this single case is found by multiplying it by the product of 6 and 7 ($1 \times + 6 \times + 7 = 42$). This case therefore has a moment of 42. The three cases at the intersection of the steps with mid-points of 33 have a combined product of 90 ($+ 5 \times + 6 \times 3 = 90$). All cases in the upper right-hand and lower left-hand quadrants have a positive moment, owing to the algebraic law of signs in multiplication. All frequencies lying in the upper left-hand or the lower right-hand quadrants of the table have negative product-moments since the product of a plus step-deviation by a minus step-deviation results in a negative sign. In this work the xy products are summated algebraically in a column along the right-hand side of the table. The total of the xy products is 1780.

Step 5. The numerator of the fractional equation representing the

TABLE 46

CORRELATION TABLE SHOWING RELATION OF HALF-HALF SCORES ON IOWA PLANE GEOMETRY APTITUDE TEST (1933)

Score on second half of test, → x (columns); Score on first half of test: → y (rows)

Mid-points:	0	3	6	9	12	15	18	21	24	27	30	33	36	f	d	fd	fd^2	xy
36													1 (42)	1	6	6	36	42
33										2 (40)	4 (100)	3 (90)	1 (35)	10	5	50	250	265
30							2 (6)	2 (16)	5 (60)	8 (125)	2 (40)			19	4	76	304	252
27							2 (6)	6 (36)	11 (99)	3 (3()	2 (30)			24	3	72	216	207
24						2	12 (2.)	8 (32)	15 (90)	7 (5()	1 (10)			45	2	90	180	212
21					2 (−2)	9	14 (14)	22 (44)	5 (1.)	1				53	1	53	53	75
18				4	17	23	19	4	3					70	0	347		
15		1 (4)	1 (3)	13 (2()	19 (1.)	24	13 (−1)	4 (−8)						75	−1	75	75	31
12		1 (8)	7 (42)	18 (72)	19 (3.)	16								61	−2	122	244	160
9		2 (24)	14 (126)	11 (6()	8 (2.)	1								36	−3	108	324	240
6		5 (80)	1 (1.)	8 (64)										14	−4	56	224	156
3	2 (50)	3 (60)												5	−5	25	125	110
0	1 (30)													1	−6	6	36	30
																	2067	1780
f	3	12	23	54	65	75	62	46	39	21	9	3	2	414				
d	−5	−4	−3	−2	−1		1	2	3	4	5	6	7					
fd	15	48	69	108	65	305	62	92	117	84	45	18	14	+432				
fd^2	75	192	207	216	65		62	184	351	336	225	108	98	2119				

$c_y = \frac{-302 - 347}{414} = -0.109.$

$c_y^2 = 0.01$

$\frac{\Sigma fd^2}{N} = \frac{2067}{414} = 4.99.$

$4.99 - 0.01 = 4.98.$

$\sigma_y = \sqrt{4.98} = 2.23$

$c_x = \frac{432 - 305}{N} = \frac{+127}{414} = +0.307.$

$c_x^2 = 0.09.$

$\frac{\Sigma fd^2}{N} = \frac{2119}{414} = 5.12 \quad 5.12 - 0.09 = 5.03.$

$\sigma_x = \sqrt{5.03} = 2.24.$

$r = \frac{\frac{\Sigma xy}{N} - c_x c_y}{\sigma_x \sigma_y} = \frac{\frac{+1780}{414} - -0.0335}{4.995}$

$= \frac{+4.33}{4.995} = +.867$

correlation coefficient is $\frac{\Sigma xy}{N} - c_x c_y$. This quantity is found by dividing 1780 by the number of cases in the distribution and subtracting (algebraically) the product of the corrections for the two distributions. The result of dividing 1780 by 414 is 4 2995. The $c_x c_y$ product is -0.0335. Since this $c_x c_y$ product is negative (owing to the negative sign of one of the corrections), the net result is the addition of these two quantities. The numerator of the fractional part of the formula now becomes 4.33.

Step 6. The denominator of the fractional part of the formula comprises the product of the two standard deviations. The $\sigma_x \sigma_y$ product for this correlation table is 4.995.

Step 7. The correlation coefficient (r) is the ratio of the two values found in steps 6 and 7. The r of this distribution is therefore $+.867$, which means that the relationship is positive and significantly high.

119. Meaning of the Correlation Coefficient.

It was suggested earlier in this discussion that the interpretation of the correlation coefficient is probably much more difficult than its computation. There are a few devices which are helpful to the inexperienced worker, but, in general, assurance in the interpretation of these measures comes only through experience. The suggestions given in this section may be useful during the period when this experience is being gained.

One of the important outcomes of the use of correlation methods is that within certain limits it makes possible the estimating of unknown values from known values. The accuracy of this estimate, however, depends directly upon the correlation between the factors measured. For example, if it is known from previous experience that there is a high positive relationship between achievement in a specific manual arts subject and the students' response to certain manual dexterity tests, the probable achievement of a group of prospective students in this manual arts course may be determined within limits by securing their response to the manual dexterity test. A correlation coefficient of $+1.0$ for the two factors would mean that an estimate of accomplishment based on the one factor would be approximately 100 per cent correct. As the amount of the correlation decreases the accuracy of the forecast declines, but not in a direct manner. A correlation of $+1.0$ may mean 100 per cent accuracy in the estimate based on the relationship, but a correlation of $+.50$ does not mean at all that the estimate based on it will be 50 per cent correct. A glance at the accompanying table will demonstrate this interesting fact about the correlation coefficient.

The percentages of forecasting accuracy for different values of r given in Table 47 are obtained by applying Kelley's proposed formula for the *coefficient of alienation* ($k = \sqrt{1 - r^2}$) and then deducting the resulting values expressed as percentages from 100 per cent. If estimates of one variable are to be made from measurements of another related variable, this table will prove to be a useful safeguard.

The following illustrations and practical interpretations of typical correlation coefficients representative of the sort obtained from educational data have been gleaned from a number of sources. They are offered here for whatever guidance they may give to the student or teacher interested in this type of test analysis.

TABLE 47

PERCENTAGE OF FORECASTING ACCURACY FOR SPECIFIC VALUES OF r

Coefficient of Correlation	Percentage of Forecasting Efficiency
1.00	100
.99	86
.98	80
.95	69
.90	56
.866	50
.80	40
.75	34
.70	29
.65	24
.60	20
.50	13
.40	8
.30	5
.20	2
.10	½

r value	Educational Situation	Interpretation
+.96	Relation of two forms of a long, analytical reading test for high-school students	Evidence of unusually high reliability of measurement; treat scores with confidence.
+.80	Repetition of same form of a group test of mental ability after a lapse of one semester.	Evidence of a marked relationship; considerable prognostic power even after lapse of a long interval.
+.65	A composite of three separate estimates by same teacher of the ability of a class of 35 students to respond to an objective test in industrial arts.	Evidence of some relationship but of limited use for prognostic purposes.
+.50	Scores on a good group intelligence test and the class grades of a class in industrial arts.	A very slight relationship of no practical value for forecasting purposes (only 13 per cent effective).
−.24	Chronological ages of pupils in a given grade and achievement scores on an objective test	Negative relationship of an indifferent sort. Merely shows a very slight tendency for younger pupils in a grade to achieve at a higher level than the average.

120. Practical Uses of Correlation Method.

The teacher of industrial arts or the student of measurement in this field will unquestionably find the greatest use for correlation techniques in connection with the analysis of objective tests. The validity of a test may be expressed statistically in terms of the correlation of the instrument with some other criterion, such as another measure of known validity. The determination of the reliability of a test is almost entirely a matter of correlation method. Mastery of these uses of the correlation techniques will make the teacher a better critic of commercial standardized materials as well as a more independent and efficient builder and critic of teacher-made tests for classroom use. Such mastery can come only from extensive practice on problems calling for the use of these skills.[7] Students who are interested in the theory of correlation or in the use of correlation methods in more critical research with tests are referred to the many excellent textbooks on statistical methods now available.

V. ASSIGNMENT OF RELATIVE AND ABSOLUTE RANKS

121. Relative Ranks.

Achievement as expressed in test scores can have meaning only when it is possible to consider it in relation to some other, known level of achievement. In many cases, as when informal objective examinations are used, no definite standards or norms of achievement are available. Some simple method of comparing the accomplishment of each pupil in relation to the other individuals in the class is essential. The process of assigning relative ranks to pupils' scores in terms of their size is one way of doing this. This is accomplished by assigning to the individual making the highest score the first position in the class, the pupil making the second highest score the second position, etc. The assignment of such relative ranks is quite simple where the individual pupils make different scores, or where no tied scores appear. The illustration given in Table 48 shows how all such tied scores are treated in the assignment of relative ranks.

TABLE 48

Pupil	Score	Rank
A	15	1
B	12	2
C	11	3
D	10	4.5
E	10	4.5
F	9	7
G	9	7
H	9	7
I	8	9
J	7	10

Pupil A, with a score of 15 points, is assigned first position. Pupil B, with a score of 12, is given second position. Pupil C, with a score of 11, is given third place. Pupils D and E, both with scores of 10,

[7] See Problems 22, 23, 24, 25, 39, and 40 in Greene's *Work-Book in Educational Measurements* (Longmans).

would normally be assigned fourth or fifth places, but since it is impossible to assign fourth or fifth place to one rather than the other, tied or average rank is assigned to each. In this instance 4.5 position is given to each of the pupils making a score of 10 points. Pupils F, G, and H are also tied with scores of 9 points each, but since they would regularly be assigned sixth, seventh, and eighth positions they are each given the average of these positions, or seventh place. The practice, therefore, in all cases of tied scores is to assign average rank to the tied scores. When the number of tied scores is even, the ranks assigned will lie mid-way between the ranks which would ordinarily be assigned to two middle scores. When the number of tied scores is odd, the position assigned to all is the position which would normally fall to the middle score. In general, the position assigned to the pupil with the lowest score will agree with the number of cases in the series except when the last scores are tied.

122. Absolute Ranks.

The practice of assigning relative positions to pupils on the basis of their test scores, though aiding in the interpretation in some ways, actually covers up something of the actual situation. As a matter of fact, the assignment of relative ranks covers up the true differences in the size of scores. In Table 48 the difference of three score points between Pupils A and B is indicated by only a single position in rank the same as is given to the difference of one point for Pupils B and C. Thus, relative ranks reveal that a pupil is above or below another in achievement, but they do not indicate in any way the magnitude of that difference. Relative ranks also take no account of the actual achievement level at which the accomplishment takes place. A pupil having a rank of 18 in a class of 20 would be considered as having a low ranking in his group. However, if he were found to rank eighteenth among 400 similar individuals his position would indicate a significantly different type of achievement. Percentile ranks, as one form of absolute ranking, take this factor into account by reducing all ranks to a basis of 100 units. A percentile rank of 100 means that the individual making the specified score achieves at a level high enough to exceed 100 per cent of a similar group without regard to the number in the group. In a similar way, a percentile score of 75 means that the individual made a score such that it exceeds that of 75 per cent of the individuals of his group without respect to number.

Percentile scores are easily computed from frequency tables and are very useful in comparing the achievement of pupils taking an informal or non-standardized test. Percentile scores are also used very widely in the interpretation of standard test scores at the secondary-

school and college level. The student will recognize the seventy-fifth percentile as a measure with which he has already had some contact. This percentile is the same as the third or upper quartile (Q_3). It is found by exactly the same methods as are used in finding the median except that 75 per cent of the cases in the distribution are counted out below the point on the scale assigned as the seventy-fifth percentile. The same general methods are applied in the determination of the twenty-fifth, fiftieth, or any other designated percentile. The tenth, twentieth, thirtieth, and fortieth percentiles, etc., are known as the *deciles*. These are very often used in test interpretation.

The computation of the commonly used percentile scores is illustrated in Table 49. Since all the processes involved here have been used in earlier work, the computation is presented without comment.

TABLE 49

COMPUTATION OF PERCENTILE SCORES

Class Interval	*f*	Percentile Score	Interpretation	Test Score
162.5–167.5	1	100	Score equaled or excelled by no student.	167
157.5–162.5	1			
152.5–157.5	0	90	Score equaled or excelled by 10 per cent of students	142
147.5–152.5	3			
142.5–147.5	2	80	Score equaled or excelled by 20 per cent of students.	135
137.5–142.5	5			
132.5–137.5	4	75	Third quartile—score equaled or excelled by 25 per cent of students	128
127.5–132.5	2			
122.5–127.5	5			
117.5–122.5	3	70	Score equaled or excelled by 30 per cent of students.	124
112.5–117.5	9			
107.5–112.5	11	60	Score equaled or excelled by 40 per cent of students.	116
102.5–107.5	8			
97.5–102.5	8	50	Median—score equaled or excelled by 50 per cent of students.	112
92.5– 97.5	4			
87.5– 92.5	1	40	Score equaled or excelled by 60 per cent of students.	109
82.5– 87.5	2			
77.5– 82.5	0	30	Score equaled or excelled by 70 per cent of students.	105
72.5– 77.5	1			
67.5– 72.5	0	25	First quartile—score equaled or excelled by 75 per cent of students.	103
62.5– 67.5	0			
57.5– 62.5	1			
	$N=71$	20	Score equaled or excelled by 80 per cent of students.	101
		10	Score equaled or excelled by 90 per cent of students.	95
		0	Score equaled or excelled by practically all students.	58

The interpretation of percentile scores frequently gives some trouble to the worker inexperienced in their use. Fig. 23 is a graphic presentation of the percentile scores given in Table 49. This figure shows the characteristic curve (ogive) resulting from the use of per-

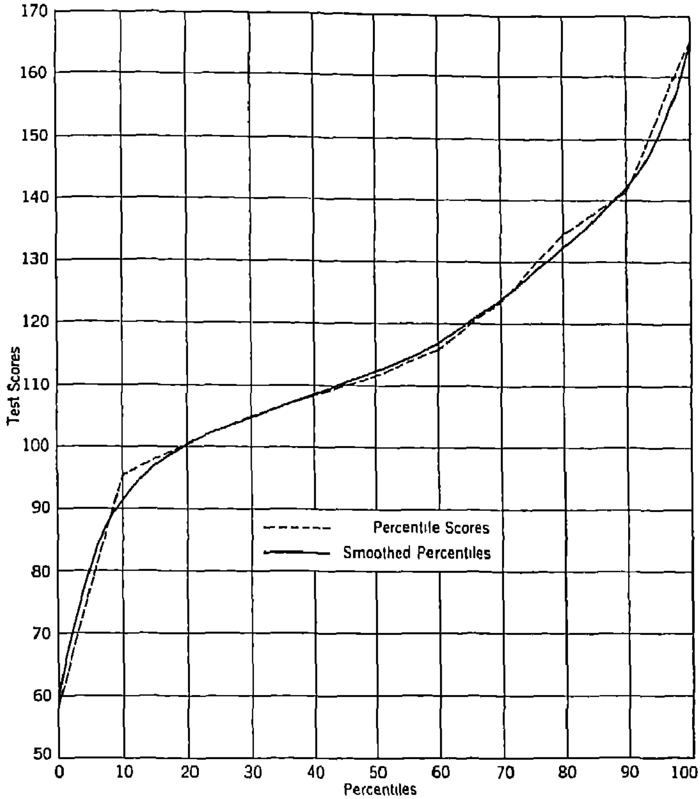


FIG. 23.—Ogive Curve Based on Data in Table 49.

centile scores. The heavy solid line in the figures represents the results of an arbitrary smoothing of these percentile scores. This smoothing process is frequently used when percentile scores are based on fairly large populations and are set up as tentative norms for the interpretation of the tests.

VI. SUMMARY

This chapter presents a non-technical discussion of a few of the common statistical tools which teachers of industrial arts will find useful in the analysis and interpretation of educational test results. Discussions of four of the six major statistical techniques outlined in

the introductory paragraph of this chapter are presented. The fundamental principles of the grouping and tabulating of test scores are stated and illustrated. The need for measures of dispersion is shown. The quartile deviation and the standard deviation are explained in some detail, and practical applications of these measures to problems of test analysis are made. The general meaning and the methods of correlation are given, along with a few definite hints concerning the interpretation of correlation coefficients. The practical uses and meanings of the ranking of test scores on both the relative and the absolute basis are discussed The two remaining problems, dealing with the derivation and interpretation of test norms and standards, and the use of simple graphic methods of presenting the results of statistical analysis, are reserved for treatment in the following chapter.

There has been no attempt to make this chapter a complete discussion of all the interesting or even useful statistical techniques. To do this would require a volume in itself. As a matter of fact, the brevity of the treatment makes it impossible to present an adequate number of examples and illustrations to give the inexperienced worker sufficient experience with statistical problems. Real mastery of these skills can come only through repeated and continuous use. The student who is interested in achieving real skill and understanding in this field will wish to make extensive use of the selected references on page 224.

EXERCISES IN SUMMARIZING RESULTS OF TESTING

Tabulating Test Scores

Problem 1

a. Arrange or rank these scores from an objective examination in woodworking in descending order.

   95, 99, 40, 44, 68, 84, 51, 60, 91, 58, 66, 66, 72, 87, 77, 76, 65, 66, 70, 89, 77, 80, 78, 78, 62, 64, 64, 64, 54, 57, 58, 63, 93, 90, 76, 59, 62, 69, 70, 85, 72, 73, 83, 71

b. What is the largest score made on this test?

c What is the smallest score made on this test?

d. What is the range of the scores?

e If a frequency table with a step of 3 is made, how many steps will be required?

f. What will be the limits of the step required for the largest score?

g. What will be the mid-point of this step?

h. Make a frequency table of these scores using a 3-point step and mid-points divisible by the size of the step. Do your work on the left half of a sheet of paper and preserve it for use in later problem work

i. If your work is right, the frequencies reading from the top will be as follows:

   1, 1, 2, 2, 1, 3, 1, 4, 2, 3, 5, 4, 6, 2, 3, 2, 0, 0, 1, 0, 1 $N = 44$

Computing the Arithmetic Mean

Problem 2

Compute the arithmetic mean from the frequency table prepared in Problem 1. (Answer = 70.4 from frequency table with step of 3.)

Computing the Mid-Measure and the Median

Problem 3

Compute the median from the frequency table in Problem 1 (Answer = 69 7.)

Problem 4

Find the mid-measure for the scores given in Part *a* of Problem 1. (Answer = 70 0.)

Computing Measures of Variability

Problem 5

Find the quartile deviation for the scores tabulated in Problem 1. (Answer = 8.5)

Problem 6

Find the standard deviation of the scores in the table prepared for Problem 1. (Answer = 13.3.)

Computing Measures of Relationship

Problem 7

The following paired scores were obtained by giving the same form of an objective examination two times to the same pupils

Pupil	1st Test	2nd Test	Pupil	1st Test	2nd Test
A	61	67	N	52	55
B	56	60	O	44	49
C	73	76	P	40	41
D	67	70	Q	33	33
E	53	49	R	58	59
F	48	52	S	76	77
G	43	44	T	70	75
H	35	31	U	63	63
I	23	25	V	50	50
J	57	56	W	41	46
K	78	81	X	36	37
L	71	73	Y	34	31
M	65	67	Z	25	27

a. Prepare a correlation table of these 26 pairs of scores. Use a 3-point step on both axes. Compute the coefficient of correlation as a basis for expressing the reliability of the objective examination. (Answer = +.959.)

COMPUTING PERCENTILE RANKS

Problem 8

Use the frequency table for the first test scores tabulated in Problem 7, and compute the percentile scores for each of the deciles as shown in Table 49. Check your own work for accuracy.

SELECTED REFERENCES

GARRETT, H. E., *Statistics in Psychology and Education.* New York: Longmans, Green and Company, 1926.

GOOD, WARREN R., *The Elements of Statistics.* Ann Arbor: The Ann Arbor Press, 1933.

GREENE, H. A., *Work-Book in Educational Measurements.* New York: Longmans, Green and Company, 1930.

GREENE, H. A., and JORGENSEN, A. N., *The Use and Interpretation of Elementary School Tests.* New York: Longmans, Green and Company, 1935

GREGORY, C. A., *Fundamentals of Educational Measurement.* New York. D. Appleton Company, 1922

HOLZINGER, KARL J., *Statistical Methods for Students in Education.* Boston. Ginn and Company, 1928.

HOLZINGER, KARL J., *Statistical Tables for Students in Education and Psychology* Chicago. University of Chicago Press, 1925.

HOLZINGER, KARL J., and MITCHELL, B. C., *Exercise Manual in Statistics.* Boston: Ginn and Company, 1929.

KELLEY, T. L., *Statistical Method.* New York. The Macmillan Company, 1923

KRAMER, EDNA E., *Educational Statistics.* New York: John Wiley and Sons, Inc., 1935

LINDQUIST, E. F., and STODDARD, GEORGE D., *Study Manual in Elementary Statistics.* New York: Longmans, Green and Company, 1929.

ODELL, C. W., *Educational Statistics* New York: The Century Company, 1925.

OTIS, ARTHUR S., *Statistical Method in Educational Measurement.* Yonkers, New York: World Book Company, 1925.

RUGG, HAROLD O., *A Primer of Graphics and Statistics for Teachers.* Boston: Houghton Mifflin Company, 1925

TRABUE, M. R., *Measuring Results in Education.* New York: American Book Company, 1924.

CHAPTER XV

INTERPRETING THE RESULTS OF TESTING

I. THE RESULTS OF TESTING

123. The Meaning of a Test Score.

It is important in this chapter on the interpretation of the results of testing to define clearly what is meant by a *test score.* In order to accomplish this, two or three new concepts may require explanation. In the first place, *a test score is a numerical expression of performance* on the part of an individual. Sometimes the test score is merely the number of exercises responded to correctly. Sometimes it is an arbitrarily defined scale value. But whatever its form, its function is to reveal in a quantitative way the performance of an individual as he responds to stimuli given under certain conditions. This leads to the second concept involved in the meaning of a score. The test score is an evidence of performance. Performance, the response of the individual to the test situation, is the expression of ability operating under certain conditions. The pupil may make a poor score because he does not have the ability to do better—may not know the facts. On the other hand, he may make a low score because of certain physical conditions: illness; discomfort; poor hearing, sight, or illumination; a broken pencil; a dislike for the subject, the teacher, or examiner; a failure to give attention to and to comprehend the directions, etc. Any one of these or a dozen other factors may affect the score. Accordingly, there is the possibility and even likelihood of a serious error in the assumption that a test score is a direct evidence of ability. The conditions under which the performance takes place must be known before it is safe to infer ability from performance.

Ability, as an abstract concept, may be defined as the power to do. Power to do, to respond to stimuli and to situations, is the product of training and experience. This suggests that, unless training and native capacity factors are known, inferences as to abilities may be misleading. This point becomes particularly serious in the interpretation of mental-test results, for it is common practice for users of mental tests to infer innate capacity (mental ability) from performance

scores. The real seriousness of this type of uncritical inference may be seen by comparing the interpretations of an achievement-test score and a mental-test score. Both are basically expressions of performance. Equal abilities may be inferred from equal scores from both types of tests if and when all the conditions under which they are given are definitely under control. Although it is difficult to make sure that all physical and physiological factors are adequately controlled in a testing situation, it is possible to regulate most of the mechanical conditions within reasonable limits.

The significant point to note here, however, is the fact that users of achievement tests stop with an inference of equality of ability from equal performance scores, but users of mental tests are obliged to take a further inference. In the interpretation of mental-test results it is common practice to infer equal native capacity from apparent evidences of equal abilities. The fallacies in this argument and the dangers of this step must be readily apparent. *Equal capacities may be inferred from performance scores only when there is direct and positive evidence of two things: first, that the conditions under which the testing took place were identical and equally well controlled; second, that the training opportunities of the individuals compared have been equal.* The mechanics of testing now make it fairly easy to control testing conditions. The second factor represents a real stumbling-block in the way of an accurate and sane interpretation of the mental-test results. The naïve manner in which some makers and many users of mental tests assume equality of learning opportunity, and hence equal capacity from equal performance scores on mental tests, is one of the things which has made teachers and students skeptical of their value.

It is possible that the foregoing discussion of the meaning of a test score may appear to indicate that it is impossible to give meaning to any kind of a test score. Such is not the intention, even though the purpose here is to emphasize the need for a conservative attitude in test-score interpretation. In the long run, the more that is known about the variables underlying test scores, the more critical must the user become. The greatest damage that has been done to the field of educational measurements in the past has come as a direct result of carelessness and ignorance on the part of users of tests, and their tendency to draw unwarranted conclusions from the results. The industrial arts teacher should be able critically to select suitable tests and scales for classroom and shop use, control the mechanical conditions of their administration, and draw sane and defensible conclusions and inferences from the results.

124. Giving Meaning to Informal Test Scores.

The user of industrial education tests in the classroom is confronted with two types of test data for interpretation. The first type, and undoubtedly the more common of the two, deals with the results of informal, teacher-made tests. The results from these home-made tests in turn are of two types: the subjective scores assigned by teachers to pupils' responses to essay-type tests, and the performance scores resulting from informal objective examinations Although something can be done to improve the interpretation of the relatively unreliable marks assigned to the discussion-type exercise, the performance scores resulting from reasonably long and reliable objective examinations are much more important measures of achievement, and as such deserve complete and accurate interpretation. The second type of educational test data requiring interpretation arises, of course, from the results of using standard tests. Since one of the major functions of the standardization of a test is the establishment of meaning for the test scores, many more types of interpretation are possible for data of this type. Purely for convenience in the organization of this discussion, problems of the interpretation of standard test scores are considered first.

II. NORMS AND STANDARDS

125. The Meaning of Standardization.

Early in the history of objective testing in the classroom practically all that was required for development of a so-called standardized test was to give a few reasonably suitable test exercises to a hundred or more pupils in different school systems. These results were then compiled and submitted as norms. In fact, for many years almost the only real difference between a standardized test and a reasonably good informal objective test was the fact that the former had been tried out in a larger number of different classes. Test standardization as it is now interpreted means much more than the mere derivation of norms, although the existence of norms is still one of the chief distinctive features of the standard tests. There has been much improvement in both the informal test and the more formal standardized test.

In terms of present-day test-construction practices the standardization of a test involves a long period of experimentation with a large body of subject-matter exercises. After the subject-matter field to be tested has been decided upon, there is the very difficult problem of selecting the more important areas of this field to be sampled. Many times experimental evidence must be secured before it is possible to

decide upon the best type of test exercise to use. Even then, many of the exercises prepared in preliminary form for the test are found to be badly stated or to be totally unsuited for the type of test to be constructed. Usually from four to six times as many exercises must be prepared in the preliminary work with a test as will appear in the test itself when in final and standardized form. Special care must be taken to see that a suitable range of difficulty is provided in the items, and that multiple items covering certain of the more important skills are prepared in parallel form so that these items may be adequately sampled in the several forms of the test which must be prepared. After the exercises themselves have been written in preliminary form they must be tried out under experimental conditions in typical classrooms for the purpose of discovering the faulty or ambiguous items and for the additional purpose of discovering the relative difficulty of the several items. From the results of this preliminary use of the exercises two or more roughly scaled forms of the tests may be set up for further experimental use. From the results of this second trial it is usually possible to equate the forms of the tests quite closely by shifting hard and easy items from one form to another until approximate equality is reached. Then the tests are ready for a further trial in a large number of representative classes for the purpose of further equating the forms and establishing norms. It is thus apparent that while standardization is only one of the final steps in the preparation of a carefully made test, it is this extensive sampling of the results of the use of the test in many classrooms which affords the basis for the assignment of meaning to the test scores.

126. Meaning of Norms.

Many of our present-day standardized tests began their existence as informal objective examinations. In fact, many informal examinations of the objective type meet all other criteria of standard tests except that they do not have norms for the evaluation of their scores. Standardized tests are characterized by the fact that they are commonly accompanied by norms representative of the type of accomplishment which may be expected from classes similar to those used in the standardization program. Norms thus furnish the necessary information for the interpretation of the test scores and for the evaluation of achievement of a class. They are obtained by giving the particular test to a large and representative sampling of pupils in the same grades and of a type similar to the group which the teacher wishes to test. To the extent that the sampling is distributed over a large population in typical school situations and the conditions under

which the tests are to be administered are rigidly followed, the norms furnish a reliable and useful basis for interpretation.

127. Standards and Norms.

The use of the term *standardized* in the discussion of tests of the type for which norms are provided has led to the development of a careless tendency to treat the words "standards" and "norms" as being synonymous. The process of securing the data for the critical analysis of tests and the derivation of suitable norms is properly known as *standardizing.* However, *the term standards when used to refer to levels of pupil achievement, implies an ultimate goal to be achieved.* Standards may not actually be reached by any individual, but they are levels of achievement toward which to strive. *Norms are the levels of achievement which typical pupils actually attain.* It is clear that, in the light of these definitions, few tests are accompanied by standards.

128. Specific Uses of Test Norms.

Although the general function of test norms is to provide a basis for the interpretation of test scores, several specific uses should be pointed out at this time. For example, test norms give meaning to the test score There is no way of determining except through comparison with the norm for a test whether a given score is high or low. To be explicit, is a score of 96 points on the *Newkirk-Stoddard Home Mechanics Test* a high, low, or average score for a pupil to make at the end of the year's course in general shop work? A reference to the norms given in Table 50 will give an answer to this question. As a matter of fact, such a score is so good that only 25 pupils in a hundred may be expected to do better than that.

Norms point out to both pupil and teacher the actual levels or goals of achievement which both should attempt to attain. That is, the norms tell all parties concerned *how far* they have to go and approximately *when* they have arrived. Norms provide almost the only objective basis for the analysis of individual pupil weaknesses. Certain of the better achievement tests in special subject fields are made up of a number of different test-parts designed to measure distinct aspects of achievement in the subject. Many of these tests are provided with separate norms for the special parts of the tests making it possible to reveal the pupil's standing in each of the independent test-parts. (See Table 51.)

Norms for achievement tests used in connection with results from mental tests make it possible to determine within practical limits whether the pupil is working up to the real ability he possesses. The

TABLE 50

END-OF-YEAR NORMS FOR NEWKIRK-STODDARD HOME MECHANICS TEST

	Point Scores	
	Form A	Form B
Mean	74.7	74.6
Median	77.9	73 0
Q_3	95 8	96 3
Q_1	60 5	54 5
S. D.	25 1	27.9

TABLE 51

SCORES ON IOWA SILENT READING TEST. ELEMENTARY, BY A NINTH-GRADE PUPIL

Test	Score	
	Part	Test
1. Paragraph meaning		
A. Science	18	40
B History	22	
2 Word meaning		
A. General vocabulary	24	42
B. Subject-matter vocabulary	18	
3 Selection of central idea of paragraph	10	10
4. Sentence meaning	28	28
5. Location of information		
A. Alphabetizing	3	12
B. Use of the index	9	
Total comprehension score		132
6. Rate of silent reading		27

basis for this type of analysis of accomplishment is found in the comparison between the mental ability of the pupil expressed in terms of his mental age and his educational achievement as represented by his educational age.

129. Kinds of Norms.

The kind of norm which accompanies a test depends to a large degree upon the level in the school system at which the test is used The norm is also conditioned somewhat by the nature of the test itself. Tests which are designed for use in the elementary-school grades are usually accompanied by two types of norms, *grade norms, and age norms*. Tests intended for use in the secondary-school grades are usually provided with semester and grade norms only. Age norms do not seem to be particularly useful in the upper grade levels, because so many factors other than age operate to affect achievement. Then, too,

the curve of mental growth flattens out very rapidly in the upper grade levels so that the increments of growth in achievement from age to age at the upper levels are not significant. In place of the age norms for secondary-school and college tests, the common practice today is to provide quite detailed tables of percentile equivalents for the point scores.

In the lower grades, age as well as grade norms are usually provided with achievement tests. In general, the type of norm is determined by the method of grouping the scores when the tabulation for the norms is made. If the pupils are grouped by grades, without respect to age or school progress, the resulting norms are grade norms. If the pupils are classified in accordance with some specific age-scale as the basis for the tabulation, the resulting norms are age norms. In the derivation of grade norms for standard tests it is desirable to have the norms clearly indicate the period they are designed to cover.

III. RESULTS DERIVED FROM NORMS

130. Grade Levels.

Test scores accompanied by a fairly reliable set of grade norms can be expressed in terms of the relative position of these scores with respect to these grade norms. In fact, this is one of the very simple and convenient methods of changing test scores into a form which even the child or his parents can understand. The fact that an individual pupil is in the seventh grade or the eighth grade has come to have some meaning to the average pupil or parent. An isolated test score cannot have this meaning. However, as soon as a test score is identified with a specific grade level of accomplishment it takes on a definite meaning.

TABLE 52

Grade Norms for Haggerty Reading Examination: Sigma 3

Grade ..	5	6	7	8	9	10	11	12
Score .	40	54	68	80	93	104	112	118

The method of deriving the grade levels (so-called G-scores) from grade norms is illustrated from the revised grade norms for the *Haggerty Reading Examination; Sigma 3.* Table 52 shows the scores to be expected at the end of the year for each grade. From this table it is apparent that a score of 93 is the ninth-grade end-of-the-year

norm; a score of 104 is the end of the year norm for the tenth grade, etc. Thus a student making a score of 104 points on this test may be described as achieving at a level equal to an average pupil at the end of the tenth grade This value may be simply expressed as 10^{10}. A pupil making a score of 93 points on this test may be assigned a grade-level position of 9^{10}, meaning that his achievement is comparable to that expected at the end of the ninth grade. Pupils making test scores between 93 and 104 may be assigned grade levels corresponding to the proportion of the distance between the end of the ninth (beginning tenth) grade and the end of the tenth (beginning eleventh) grade work the scores represent. To illustrate, the score-point distance from 93 to 104 is 11 points. A score of 95 would therefore represent a grade-level distance which is two-elevenths of the way past the beginning of the tenth grade. For practical purposes this is two-tenths of a grade. Thus a score of 95 on this test corresponds roughly to a grade position of 10^2.

131. Age Scores.

Since age equivalents as derived scores have been discussed in this chapter in connection with the meaning of norms, and since they are not considered by most test workers to be of very great significance in the junior-high-school and secondary-school grades they are given no extended treatment here.

132. Percentile Ranks.

One of the favorite ways of interpreting test scores in the secondary-school and college field is to use percentile ranks. Percentile ranks are of particular value in the interpretation of informal and non-standardized tests, since they permit the comparison of each individual in the group with the group of which he is part. In contrast with the method of assigning ranks by relative position, the calculation of the percentile rank expresses the absolute position of the individual pupil in his relation to the rest of his group. The calculation of *percentiles* involves the division of the total distribution into 100 equal parts, hence the term percentile. Achievement as represented by a test score is expressed as a position in a population of 100 cases. A score representative of high achievement ranks high in the percentile scale and is excelled by only a small number of cases. For example, in Table 53, which shows the percentile norms for a new plane geometry aptitude test, a score of 72 points or more is assigned a percentile score of 100, meaning that such a score is so high that it almost certainly will not be excelled by any one. Table 53 presents the percentile norms for this test in a convenient form for transferring

each possible test score into percentile equivalents. Since percentile scores represent the position of the individual score in a distribution of infinite population, they are very convenient devices for turning test scores from unlike scales into comparable measures. There are many occasions in the interpretation of educational-test results, particularly in experimental situations, when this is very desirable.

TABLE 53

IOWA PLANE GEOMETRY APTITUDE TEST PERCENTILE EQUIVALENTS OF TEST SCORES

$N = 413$ (girls 199; boys 214)

Score	Percentile Equivalents	Score	Percentile Equivalents
72 or more	100	34	55
65 to 72	99	33	53
63 to 64	98	32	50
60	97	31	46
59	96	30	42
58	95	29	40
57	94	28	36
55 to 56	93	27	33
54	92	26	30
53	91	25	27
51 to 52	90	24	25
50	88	23	23
49	87	22	20
48	85	21	18
47	83	20	16
46	81	19	14
45	80	18	12
44	78	17	10
43	76	16	9
42	75	15	8
41	73	14	7
40	70	13	6
39	68	12	5
38	66	11	4
37	63	9 to 10	3
36	60	7 to 8	2
35	58	6	1
		0 to 5	0

133. Intelligence Quotients.

The discovery and use of the concept of *mental age* made possible the development of the quotient idea. In a general way, all quotients derived from results of measurements express the development of the individual as related to average expectancy for his age or mental level.

Scores on mental tests provide the basis for the derivation of mental ages. Scores from achievement tests, provided the tests are accompanied by age norms, may be expressed as *achievement or subject ages.* The ratio between the mental age of an individual student and his chronological age is called an intelligence quotient. If an achievement age is used, the resulting quotient is an educational quotient.

The intelligence quotient (I.Q.) as found in practice is the result of dividing the mental age (M.A.) of the individual by his chronological age (C.A.), both expressed in months The result of this division is expressed as a whole number by multiplying the quotient by 100. An illustration will make this procedure clear. Let us assume that a pupil who is twelve years and four months of age makes a score on a mental test which gives him a mental-age equivalent of eleven years and three months. At the outset, it is clear that since his mental age is less than his chronological age, he has not made quite normal development in mental ability. That is, his I.Q. will be somewhat less than 100. Actually the I.Q. of this individual is

$$\frac{\text{M. A.}}{\text{C. A.}} = \frac{135}{148} \times 100, \text{ or } 91$$

An intelligence quotient of 100 indicates normal development on the part of the individual. A quotient of less than 100 means that there is more or less retardation in the development, and a quotient of above 100 means more or less accelerated development. It is common practice for examiners in the psychological clinic to consider I.Q.'s of 90 to 110 as average or approximately normal. Quotients above 110 are considered superior in proportion to the extent to which they exceed that value. Similarly, quotients of less than 90 are below average and inferior in proportion to the amount which they fall below that value. I.Q.'s of very high and very low levels are naturally relatively rare. All these interpretations of the intelligence quotient are of course dependent upon the reliability of the measuring instrument on which they are based.

134. Educational Quotients.

Many of the better achievement tests designed for use in the elementary and junior-high-school grades are equipped with age norms which permit the expression of achievement scores as educational ages. These educational-age scores make it possible to derive an educational quotient by following a procedure identical with that used in deriving the intelligence quotient. Since age norms have been found to be impractical for most of the educational achievement tests designed for high school, educational quotients have not been used very widely

in secondary-school measurement. Subjects such as make up the bulk of the industrial arts field do not lend themselves especially well to standardization on an age basis. Hence there is not very great likelihood of using these educational quotients in measurement in industrial education. The same comment appears to hold for the accomplishment quotient (A.Q.), a ratio designed to indicate the relative degree to which an individual student is utilizing his capacity to achieve. The basic idea back of the accomplishment quotient has received some consideration in an earlier section of this chapter.

The various quotients and other measures utilized in the interpretation of educational-test results can be made effective servants of the teacher only through extensive experience in their use. A complete control can be gained only through practice in their calculation and interpretation. Mastery can be retained only through continued use.[1]

IV. RESULTS FROM INFORMAL OBJECTIVE TESTS

135. Objectifying the Marking System.

A critical examination of the marking system and the marks assigned by teachers makes it very apparent that some radical improvements in these phases of educational measurement are needed. As a result of an extensive survey of the problem, and a study of the recommendations of educators who have studied the marking system, the following program for eliminating many of the unsatisfactory features of the present methods of assigning marks is submitted:

1. *Discard the practice of marking pupils in percentages.* Three reasons are advanced for this decision: (*a*) the percentage scale has for its only fixed points 0 and 100. The former means just no ability while the latter means perfect mastery. Yet the complete scale is practically never used in practice. (*b*) The establishment of the limits of the scale fixes the intermediate values. Accordingly, the difference between marks of 75 and 76 should be the same as the difference between marks of 97 and 98. Common observation reveals the absurdity of this assumption. (*c*) The use of the percentage scale presupposes that the teacher is able to distinguish as many as 101 minute differences in accomplishment. Experimental evidence[2] reveals that teachers are able to distinguish from five to seven levels of ability. To use

[1] Extensive opportunity for practice in the derivation of grade equivalents, age scores, percentiles, and quotients of various types is provided in the *Work-Book in Educational Measurements* (Longmans). See particularly Problems 30 to 33.

[2] Ruch, G M, *The Objective or New-Type Examination,* Scott, Foresman and Company, Chicago, 1920, pages 370-374.

a finer scale assumes an exactness of discrimination on the part of teachers which does not exist. (*d*) The use of an arbitrarily selected percentage as a passing mark as is very commonly done results in throwing the marks into a badly skewed distribution with too large a proportion of the marks piled up at or near the passing mark.

2. *Each mark assigned to a pupil should be a symbol designed to indicate his power to do.* This symbol should be defined in exactly worded statements, understood alike by teachers, administrators, and pupils.

The following definitions of letter grades by Hillbrand [3] are given as an illustration of the type of statements that should be prepared by the teacher for the purpose of defining each of the letter steps in the five-point scale.

Grade	Definition
A	1. Consistently does more than is required.
	2. Has wide vocabulary at his command.
	3. Is always alert, takes active part in discussions.
	4. Has unusual dependability in taking assignments.
	5 Is prompt, neat, and thorough in all work, and unusually free from teachers' correction
	6. Knows how to select books, tools, materials, and is a rapid worker.
	7. Has initiative and originality in attacking problems.
	8. Has ability to associate and rethink the problem and can adapt himself to new and changing situations.
	9. Has enthusiasm for and interest in his work.
	10. Has ability to apply ideas gained in study to everyday life.
B	1. Frequently does more than is required.
	2. Has good vocabulary and speaks with conviction.
	3. Unusually alive to the situation at hand.
	4. Careful in complying with assignment.
	5. Eager attack on new problems; profits from criticism.
	6. Prompt, neat, thorough, and unusually accurate in all work.
	7. Has ability to apply general principles of the course.
C	1. Does what is required.
	2. Possesses a moderate vocabulary.
	3. Willing to apply himself during class hour
	4. Does daily preparation with comparative freedom from carelessness.
	5. Attentive to assignments.
	6. Has ability and willingness to comply with instructions and a cheerful response to correction.
	7. Reasonably thorough and prompt in all work.
	8. Has average neatness and accuracy in all work.
	9. Has ability to retain collectively the general principles of the course.

[3] *School and Society*, Vol. 21: 142, January 31, 1925.

Grade	Definition
D	1 Usually does what is required. 2 Attendance often irregular. 3. Tools and equipment sometimes lacking. 4. Frequently "misunderstands" assignment. 5. Willing but slow in complying with instructions and corrections. 6. Careless in preparation of assignments. 7. Lacking in thoroughness and sometimes tardy with work. 8. Careless in presentation of work.
Fd	1 Usually does a little less than is required. 2. Listless and inattentive in class. 3. Tools and equipment for work often lacking. 4 Always tardy with work. 5. Seldom knows anything outside the lesson. 6. Retains only fragments of the general principles of the course. 7. Lacking in qualities of the first three groups to the extent that he cannot or will not do the work.

3. *Each teacher should give objective examinations or quizzes frequently throughout the term, and the scores from these tests should afford the major basis for his marks.* Prior to the assignment of marks for a school period or semester the pupils should be ranked on their test scores and these scores should then be transformed into marks on a five-point letter scale by the use of the standard deviation technique in large sections or classes (thirty or more). In small classes (less than thirty) this may be accomplished somewhat more simply by dividing the distribution of scores into five groups and assigning the designated mark to previously determined percentages of the class.

The letter grades used and the typical percentages of the class assigned each grade under these conditions are as follows:

Letter Grades	A	B	C	D	Fd
Percentage of class . .	4-6	19-21	48-52	19-21	4-6

The essential steps in the assignment of grades by the standard deviation method are outlined in Chapter XIV. The actual solution of a problem utilizing this method in the assignment of marks to objective-test scores from a class of forty-five pupils is shown in Table 45, page 208.

4. *Require teachers to prepare in advance for each six-weeks period carefully worded statements of the objectives of each subject for that period.* Unless this is done, no one can determine whether or not

the pupils are being tested on the points on which they should be tested. This statement of objectives should be the criterion by which the validity of the objective tests is determined.

5. *Work prepared for daily assignments should be treated as a requirement of the course, but marks assigned should be determined by numerous brief objective quizzes or tests upon the work assigned.*

6. *Notebook and laboratory work should be treated as a requirement of the course, and credit should be deducted or withheld for work which is unsatisfactory or incomplete.* However, the marks assigned should be determined by frequent objective tests on the work rather than on the basis of the notebook or laboratory work which may or may not be the pupil's own work.

7. *Assign marks on "accomplishment" or "performance"* rather *than on indefinite subjective factors such as effort, attitude, ability, etc.*

8. *Final grades summarizing all the quiz and test grades for the course can be obtained quite readily by assigning point values to each letter grade, computing the actual average for each pupil, and then re-assigning the class marks on the basis of these averages.* This is a very simple way of assigning final grades for fairly large groups and in courses in which a relatively large number of objective marks are to be summarized in the final grade. It also permits the application of a definite schedule of weighting for certain period and final tests in accordance with the teacher's judgment of their importance.

The accompanying table of point-values (Table 54) corresponding to specific letter grades may be useful to the teacher. Values are suggested for plus and minus values of the letter grades as one means of softening some of the shock from the arbitrariness of letter grades assigned on the basis of the normal curve. Students whose test scores fall just below the point where a superior grade is given sometimes feel that this is a distinct element of unfairness in the system. Assigning the plus and minus letter grades to their quiz scores serves to take care of this problem quite adequately.

V. SUMMARY

This chapter deals with the practical steps in the analysis of test results which make it possible for the classroom teacher to utilize and profit from these results.

The acceptance of the notion that a test score is merely a numerical expression of performance which, subject to the conditions operating at the time, reveals the ability of the individual is essential to a

TABLE 54

Suggested Point Values Corresponding to Letter Grades

Grade	Points
A+	16
A	15
A−	14
B+	12
B	11
B−	10
C+	8
C	7
C−	6
D+	4
D	3
D−	2
Fd	0

safe and sane interpretation of the meaning of test scores. A recognition of the inferences involved in the interpretation of tests of general or mental ability will do much to protect against the over-interpretation of the results of such tests.

The meanings of the terms standardization, standards, and norms are clearly brought out and illustrated in this chapter. The various types of derived scores likely to be useful to the teacher of industrial education are discussed.

Since the major use of tests by the classroom teacher is in the evaluation of achievement, the importance of the informal objective test and other teacher-made measures is emphasized. Present tendencies are distinctly in the direction of the more systematic use of such instruments as the most important single basis for the assignment of teachers' marks. This practical aspect of measurement is so important that considerable attention is given in this chapter to the discussion of possible methods of improving the marking system. After all, the marking system is the one phase of educational measurement with which practically every teacher comes into close contact.

EXERCISES IN INTERPRETING RESULTS OF TESTING

1. Elaborate your interpretation of the basic concepts underlying the meaning of a test score.
2. Show by illustration the real differences between test norms and test standards.
3. By referring to Table 52, compute the grade levels (G-scores) corresponding to scores of 74 and 100.
4. Find the intelligence quotients (I.Q.) for two individuals each 12 years 5 months whose mental ages are 11 years 9 months, and 13 years 11 months, respectively.
5. Criticize the recommendations given for the objectification of the marking system given on pages 235 to 238.
6. In your opinion do the definitions of the meaning of the various letter grades have any place in a program for the objectification of teachers' marks?
7. Show how you would average the following letter grades to secure a term final grade, assuming all grades to count the same except the final examination grade which is allotted triple weight. What final grade would you assign?

First test	— B	Fifth test	— A
Second test	— C	Sixth test	— C
Third test	— B	Final examination	— B
Fourth test	— A		

8. Using the standard deviation technique as illustrated in Table 45, assign letter grades to the objective-test scores secured from the second test given in Problem 7, Chapter XIV.

SELECTED REFERENCES

Bangs, C. W., and Greene, H. A., "Teachers' Marks and the Marking System," *University of Iowa Extension Bulletin,* No. 244, May 15, 1930, Iowa City, Iowa.

Brueckner, Leo J., and Melby, E. O., *Diagnostic and Remedial Teaching* Boston Houghton Mifflin Company, 1931.

Buckingham, B. R., *Research for Teachers.* New York: Silver, Burdett and Company, 1926

Franzen, Raymond, *The Accomplishment Quotient Technique.* New York: Teachers College Contributions to Education, No 125. Columbia University, New York, 1922.

Greene, H. A., *Work-Book in Educational Measurements.* New York. Longmans, Green and Company, 1930.

Greene, H. A., and Jorgensen, A. N., *The Use and Interpretation of Elementary School Tests.* New York. Longmans, Green and Company, 1935

Odell, C W., *Educational Measurement in High School.* New York: The Century Company, 1930.

Ruch, G M., *The Objective or New-Type Examination.* Chicago: Scott, Foresman and Company, 1929.

Rugg, Harold O, "Teachers' Marks and Marking Systems," *Educational Administration and Supervision,* Vol. 1: 117-142, February, 1925.

SMITH, H. L., and WRIGHT, W. W., *Tests and Measurements.* New York: Silver, Burdett and Company, 1928.

TRABUE, M. R., *Measuring Results in Education.* New York: American Book Company, 1925.

WILSON, G. M., and HOKE, K. J., *How to Measure* (Revised). New York: The Macmillan Company, 1928.

WOODY, CLIFFORD, and SANGREN, PAUL V., *Administration of the Testing Program.* Yonkers: World Book Company, 1932.

APPENDIX

This appendix contains two types of material supplementary to the discussions and illustrations in the main body of this volume. The list of publishers and distributors of tests should be useful in making a contact with additional types of test materials likely to interest the industrial education teacher. The glossary of terms used in the discussion will help to clarify the meaning of some of the more technical expressions.

APPENDIX A

PRINCIPAL DISTRIBUTORS AND PUBLISHERS OF TESTS OF INTEREST TO INDUSTRIAL EDUCATION TEACHERS AND SUPERVISORS

This Appendix presents a selected list of distributors and publishers of test material likely to be of interest to industrial education students, teachers, and supervisors. Obviously this list does not include many of the important distributors and publishers of tests of more general interest.

Bruce Publishing Company, Milwaukee, Wisconsin.
Bureau of Educational Research and Service, University of Iowa, Iowa City, Iowa.
Educational Test Bureau, Minneapolis, Minnesota.
Ginn and Company, Boston, Massachusetts.
Gregory Company, The C. A., Cincinnati, Ohio.
Houghton Mifflin Company, Boston, Massachusetts.
Manual Arts Press, Peoria, Illinois.
Marietta Apparatus Company, Marietta, Ohio.
Public School Publishing Company, Bloomington, Illinois.
Scott, Foresman and Company, Chicago, Illinois.
Smith, Turner E., Atlanta, Georgia
Stanford University Press, Stanford University, California.
Stoelting Company, C. H., Chicago, Illinois.
Teachers College Bureau of Publications, Columbia University, New York.
World Book Company, Yonkers, New York.

APPENDIX B

GLOSSARY

This glossary is appended for the convenience of the student or teacher who may find that many of the terms used in this treatment are outside of his experience.

ability. Power to produce; the result of school training and environment operating on capacity.

accomplishment. Used synonymously with achievement or production.

age norms. Typical performance of subjects grouped by age groups. Usually expressed as the average of actual performance of subjects of different age groups.

age scores. The age equivalents assigned to given point scores on tests provided with age norms.

alternate response. Used in describing any objective test exercise in which the subject must choose between two possible answers, one of which is right and the other of which is wrong. *See* true-false

ambiguity. A lack of clearness or definiteness in the statement of a fact or a test item.

analytical test. A test which, by taking cross-sections of abilities related to total accomplishment in a subject, furnishes a basis for an analysis of the underlying skills but does not necessarily reveal their interrelationships or causes of weakness.

aptitude. Predisposition for successful achievement in a given field.

arithmetic mean. A measure of central tendency commonly called the average.

array. A collection of data usually arranged around a particular function

assumed mean. The mid-point of the class interval taken as the zero point in laying off deviations in computing the arithmetic mean from a frequency distribution.

capacity. Power to learn or to profit from training.

character traits. Qualities of the individual such as mentality, honesty, morality, sense of humor, sympathy, etc., which make up personality.

chronological age. The life age of an individual.

classification of pupils. The placement of pupils in a school system in groups by grades or ages for more economical instruction.

coefficient of contingency. A measure of relationship used in the critical analysis of test items. Based upon a comparison of the frequency of cases found in each category with the frequency which we should expect to find if the traits were completely unrelated.

composite score. A single value used to express the results obtained from a number of different measures.

comprehension. The degree of understanding of an exercise or material read.

conditions. Factors causing variations in testing or experimental situations.

correction. A remedy or adjustment. Also in a technical sense in connection with the computation of the arithmetic mean.

correction for chance. In alternate- or multiple-response tests there is a certain opportunity for guessing to enter. The correction for chance is the adjustment for guessing.

corrective. Used synonymously with remedial. Implies the remedying of observed defects or difficulties.

correlation. The relation between two or more series of measures of the same individuals or items.

criterion. The standard by which the validity of measurement may be determined.

diagnosis. Exact identification and location of strengths and weaknesses.

diagnostic test. A test sufficiently reliable and detailed in content to identify and reveal individual pupil weaknesses.

difficulty. When used in reference to test items it implies a large percentage of incorrect responses.

discrimination. The quality in a test or test item which enables it to distinguish adequately between varying levels of ability.

educational guidance. A program designed to direct pupils into school activities in which they are likely to succeed and find most profit, and away from fields in which difficulties and failures are almost certain to be encountered by the child.

error of grouping. A variable error entering into the tabulation of data in frequency distributions. Brought about through the practice of placing together in class intervals measures which may be widely unlike.

error of sampling. The result of using a too limited number of cases as being typical of a large group.

essay-type test. *See* traditional examination.

exercise. A unit of work in a test governed by a specific set of directions. Sometimes used in the sense of a stimulus for drill.

extraversion. The process of being interested in and stimulated by persons and things outside of oneself.

fore exercise. A preliminary or practice exercise for the purpose of giving the pupil experience with the specific test situation.

form. Used to distinguish between two or more closely equivalent arrangements of similar but not identical test items.

frequency. The number of measures in a given interval or tabulation. Frequently indicated by the symbol *f*.

frequency table. A distribution showing the number of measures assigned to successive class intervals.

fulcrum. The axis upon which a lever is supported and rotated.

general ability. Same as general intelligence. A test of general capacity. Contrasted with achievement.

grade equivalent. The grade or fraction of a grade nearest which a pupil's test score places him when compared with the grade norms for the test.

grouping. The process of classifying data into certain categories.

group test. A test designed for administration to a number of individuals at the same time.

home mechanics. A term used to describe manual tasks arising from the maintenance and repair of household articles and equipment.

individual differences. Observed or measured unlikenesses in pupils in capacity, ability, etc.

informal test. A teacher-made instrument as contrasted with a standardized test.

intelligence. The power to learn, or to profit from training.

I.Q. Intelligence quotient. An index expressing relative brightness as the ratio of mental age to chronological age.

interpolation. The process of locating an intermediate point between two known points in accordance with the operation of laws conditioning the case at hand.

interpretation. The explanation of results and the application of same to a concrete situation.

interval. Used interchangeably with step in preparing a frequency table.

introversion. The process of having one's interests turned in oneself.

manipulative tests. Performance tests in which the subject turns out an objective product as a result of planning and tool operation.

matching-type test. A type of test item in which the stimulus and response forms are presented in parallel columns for convenience in recording the identification.

mean. The arithmetic mean. The point on a scale of values about which the deviations are least.

median. A common measure of central tendency. *See* definition in the text.

mental ability. The power to learn.

mental age. The mental ability of an individual expressed in terms of the age of an average individual having that ability.

mid-point. The exact middle of a step in a frequency table.

multiple-choice test. A type of objective test made up of exercises arranged in such a way that the subject must select one or more correct responses from a group of possible responses.

N. A symbol used to indicate the number of cases in an array.

negative correlation. A relationship in which large values of the one variable are always accompanied by small values in the other.

normal. Typical; making regular progress or development.

norms. Representations of the typical or average performance of subjects of different age or grade groups. Usually based on a large number of cases.

objective. A term used in describing tests in which no opportunity for disagreement as to correctness of response exists.

objectives. Used in the discussion of curriculum construction as synonymous with outcomes.

percentile. The points which divide the total number of cases in a given frequency distribution into 100 equal parts.

performance. Achievement. Also used to distinguish test scores as such from ability or capacity.

personality inventory. A personal rating device from the results of which certain personality characteristics are revealed.

power tests. Tests which express achievement in terms of the difficulty of the task which the subject is just able to perform

practice effect. Increase in a test score due to previous experience with the test.

product scale. A measuring device listing variable characteristics on which judgments are to be based.

prognostic test. A test designed to predict probable future achievement on the basis of present performance.

quality scale. A device which measures by comparison with a set of standard specimens the result of applying some specific skill.

quartiles. The result of dividing a distribution into quarters

random sampling. A selection of cases on a purely chance basis.

range. Scale difference between extremes of an array.

rank. Position assigned to a score in a series.

rate test. A device which measures achievement in terms of the number of tasks of uniform difficulty which can be performed in a specified time.

rating scales. Measuring devices which set up levels of qualities or products for the guidance of judges in evaluating such qualities or products in the classroom or shop

recall test. A test or exercise which calls for the subject to state the answer rather than to recognize it among several possible responses.

recognition test. A test or exercise in which the student merely identifies the correct form of response from several possibilities.

relative rank. Position assigned to scores in a limited array.

reliability. A technical expression of the consistency with which a measuring instrument performs.

reliability coefficient. An index found by the process of correlation indicating the relation which may be expected between successive administrations of the same measuring instrument.

remedial. Material and devices which are designed to correct existing weaknesses in learning or mastery.

retarded. Used to imply school progress or mental or educational development which is slower than is expected of the normal subject.

scores. A description of the performance of a subject.

sigma. Synonymous with standard deviation

standard deviation. A common measure of variability of scores.

standardization. The process of refining a test and setting up objective goals of performance.

standards. Ultimate goals of achievement. Mistakenly used synonymously with norms which imply actual levels of accomplishment.

subjectivity. The degree to which measurement results are affected by personal factors or judgments.

survey tests. Tests which have for their main purposes the measurement of abilities in terms of broad general functions

tabulation. The process of classifying data in tables for condensation and interpretation.

teacher's marks. The personal evalution of the pupil's accomplishment in a specific field of activity assigned by the classroom or shop teacher.

technique. Skill in executing tool or machine operations.

test. Any type of measuring device by which a numerical expression of the pupil's performance is secured.

traditional examination. Examinations or tests of the non-objective or discussion type.

training. The learning opportunity afforded through school, shop, or other life contacts.

true-false test. A recognition-type test in which the individual is called upon to determine the truth or falsity of items

T-scores. A derived test score based on the standard deviation unit.

unit of measurement. The quantity or quality used as the basis for expressing differences.

validity. A term used to express the degree to which a measuring instrument measures the thing it purports to measure.

vocational guidance. A program designed to direct individuals into vocational activities for which they are suited and away from activities for which they are not suited.

zero point of a scale. The point of origin of the instrument.

INDEX